Centre for Distance & Online Education
(CDOE)

Bachelor of Arts
(B.A.) SEM. V

POLS-301

Comparative Politics
(Option-I)

Guru Jambheshwar University of Science &
Technology, HISAR-125001

CONTENTS

No.	Title	Author	Page
1.	तुलनात्मक राजनीति-परिभाषा,क्षेत्र,पारंपरिक और आधुनिक दृष्टिकोण Comparative Politics-Definition,Scope,Traditional and Modern Approaches	Dr.Parveen Sharma	3
2	तुलनात्मक पद्धतियाँ (Comparative Methods)	Dr.Parveen Sharma	48
3	तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण: इनपुट-आउट (डेविड ईस्टन), Approaches to the Study of Comparative Politics: Input-Out (David Easton)	Dr.Parveen Sharma	72
4	**राजनीतिक विकास (लुसियन डब्ल्यू. पाई),** **राजनीतिक संस्कृति (जी. आलमंड)** Political Development(Lucian W. Pye) Political Culture (G. Almond).	Dr.Parveen Sharma	92
5	**संविधानवाद: आधुनिक समय में इतिहास, प्रकृति, प्रकार और आधुनिक समय में समस्या** Constitutionalism: History, Nature, Type and Problem in Modern Times	Dr.Parveen Sharma	123
6	**संवैधानिक संरचना: -कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका** Constitutional Structure: -Executive, Legislation and Judiciary.	Dr.Parveen Sharma	150
7.	**अनौपचारिक संरचनाएं-राजनीतिक दल और दबाव समूह** Informal Structures–Political Parties and Pressure Groups	Dr.Parveen Sharma	180

Subject : Political Science(Comparative politics)	
Course Code : POLS 301	**Autor : Dr. Parveen Sharma**
Lesson No. 1	**Vetter:**
तुलनात्मक राजनीति-परिभाषा,क्षेत्र,पारंपरिक और आधुनिक दृष्टिकोण **Comparative Politics-Definition,Scope,Traditional and Modern Approaches**	

अध्ययन की सरंचना

1.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

1.2.प्रस्तावना (Introduction)

1.3.अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Points of Text)

1.3.1.तुलनात्मक राजनीति का अर्थ व परिभाषाएं (Meaning and definitions of comparative politics)

1.3.2.तुलनात्मक राजनीति का स्वरूप और क्षेत्र (Nature and Scope of Comparative Politics)

1.3.3.तुलनात्मक राजनीति का विकास (Development of comparative politics)

1.3.4तुलनात्मक राजनीति व तुलनात्मक सरकार (Comparative politics and comparative government)

1.3.5.तुलनात्मक पद्वति और तुलनात्मक राजनीति (Comparative method and comparative politics)

1.3.6.तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता (Unility of Comparative Method)

1.3.7.तुलनात्मक राजनीति अध्ययन की कठिनाइयाँ (Difficulties of comparative politics studies)

1.3.8.तुलनात्मक राजनीति का महत्व (Importance of comparative politics)

1.4. पाठ के आगे का मुख्य भाग (Further main body of the text)

1.4.1.तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए दृष्टिकोण (Approach to the study of comparative politics)

1.5.अपनी प्रगति जांचें (Check your progress)

1.6.सारांश (Summary)

1.7.सूचक शब्द (Key Words)

1.8.सन्दर्भ ग्रन्थध्रिर्देशित पुस्तकें (Self Assessment Questions)

1.9.सन्दर्भ ग्रन्थध्रिर्देशित पुस्तकें (Answer- check your progress)

1.10.सन्दर्भ ग्रन्थध्रिर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

1.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी-

- तुलनात्मक राजनीति का अर्थ तथा परिभाषाएँ के बारे में समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति के बारे में समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक राजनीति के विषय-क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे।
- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए दृष्टिकोणों के बारे में जान सकेंगे।

1.2.प्रस्तावना(Introduction)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तृतीय विश्व के अभ्युदय ने तुलनात्मक राजनीति को व्यापक आधार प्रदान किया है। अब

इसका सम्बन्ध पश्चिम के देशों व संस्थागत राजनीतिक संरचनाओं से न होकर गैर-राजनीतिक संरचनाओं व इन्हें प्रभावित करने वाले गैर-राजनीतिक व्यवहार तथा तृतीय विश्व के देशों की राजनीति से भी है। आज राजनीति विज्ञान में सदियों से प्रचलित राज्य, सरकार, संस्था, शक्तियों व जनमत के स्थान पर नई अवधारणाएं राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संचार, राजनीतिक आधुनिकीकरण, राजनीतिक विकास, राजनीतिक व्यवस्था आदि प्रमुख अवधारणाएं मानी जाती है, क्योंकि अन्य सभी अवधारणाएं इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती हैं। आज नई तकनीक, पद्धति व दृष्टिकोणों ने तुलनात्मक अध्ययन को वैज्ञानिक व व्यवहारिक बना दिया है। आज इसमें समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि का भी अध्ययन शामिल होने के कारण यह एक अन्तर-अनुशासीय विषय के रूप में स्थान पा चुकी है। आज तुलनात्मक राजनीति का अर्थ किन्हीं दो देशों की सरकारों या संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन से नहीं है। आज इसमें सम्पूर्ण विश्व की राजनीतिक व गैर-राजनीतिक संस्थाओं, उनका व्यवहार तथा व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्वों का अध्ययन भी शामिल है।

1.3.अध्ययन के मुख्य बिन्दु (Main Points of Text)

1.3.1.तुलनात्मक राजनीति का अर्थ व परिभाषाएं (Meaning and definitions of comparative politics)

तुलनात्मक राजनीति, राजनीति विज्ञान की एक शाखा एवं विधि है जो तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। तुलनात्मक राजनीति में दो या अधिक देशों की राजनीति की तुलना की जाती है या एक ही देश की अलग-अलग समय की राजनीति की तुलना की जाती है और देखा जाता है कि इनमें समानता क्या है और अन्तर क्या है।

तुलनात्मक राजनीति के बारे में विभिन्न परिभाषाएं दी गई हैं-

ब्रायबन्ती (Braibanti) ने लिखा है-"तुलनात्मक राजनीति सामाजिक व्यवस्था में उन तत्वों की पहचान और व्याख्या है जो राजनीतिक कार्यों तथा उनके संस्थागत प्रकाशन को प्रभावित करते हैं।"

एडवर्ड ए0 फ्रीमैन (Edward A- Freeman) ने तुलनात्मक राजनीति के बारे में लिखा है-"तुलनात्मक राजनीति राजनीतिक संस्थाओं तथा सरकारों के विविध प्रकारों का एक तुलनात्मक विवेचन व विश्लेषण है।"

राय सी0 मैक्रिडीस (Roy C- Macridis) के अनुसार-"हैरोडोटस तथा अरस्तु के समय से ही राजनीतिक मूल्यों, विश्वासों, संस्थाओं,सरकारों और राजनीतिक व्यवस्थाओं में विविधताएं जीवन्त रही हैं और इन विविधताओं में समान तत्वों की छानबीन करने के प्रयासको तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण कहा जाना चाहिए।"

एम0 कर्टिस (M- Curtis)के अनुसार-"तुलनात्मक राजनीति, राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक व्यवहार की कार्य-प्रणाली में महत्वपूर्ण नियमितताओं, समानताओं और असमानताओं में तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति तुलनात्मक सरकारों , गैर-शासकीय राजनीतिक संस्थाओं, कबीलों, समुदायों व उनकी प्रक्रियाओं व व्यवहारों का अध्ययन है।

1.3.2.तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति और क्षेत्र (Nature and Scope of Comparative Politics)

(अ). तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति (Nature of Comparative Politics)

आज तुलनात्मक राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में अपना स्थान प्राप्त कर चुकी है। प्राचीन काल में तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध केवल विभिन्न सरकारों की तुलना मात्र से ही माना जाता था। अरस्तु ने वैज्ञानिक पद्धति का आरम्भ करके तुलनात्मक अध्ययन को नई दिशा देने का प्रयास किया। उसके बाद हैरोडोटस ने भी तुलनात्मक राजनीति का विकास किया। लेकिन उनका अध्ययन केवल राजनीतिक संस्थाओं, उनके ढांचे, सरकारों तक ही सीमित रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तुलनात्मक राजनीति का प्रकृति में काफी बदलाव आया। अब इसमें राजनीतिक संस्थाओं के ढांचे व कार्यों के साथ साथ गैर राजनीतिक समुदायों, तथा निजी संस्थाओं व उनके व्यवहार का भी अध्ययन आवश्यक हो गया। इसलिए आज तुलनात्मक राजनीति में केवल शासन के ढांचों का ही अध्ययन न करके, बल्कि सभी राजनीतिक सिद्धान्तों, आदर्शों तथा व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। इसलिए आज तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति भी बदल चुकी है। इसलिए आज तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति को लेकर विद्वानों में मतभेदों का उभरना भी स्वाभाविक ही है। तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी दो मत प्रचलित हैं:-

I.तुलनात्मक राजनीति एक लम्बात्मक या अनुलम्बात्मक तुलनात्मक अध्ययन है (Comparative Politics is a Vertical Comparative Study)

II.तुलनात्मक राजनीति एक अनुप्रस्थ या क्षैतिज तुलनात्मक अध्ययन है (Comparative Politics is a Horizontal Comparative Study)

I.तुलनात्मक राजनीति एक लम्बात्मक या अनुलम्बात्मक तुलनात्मक अध्ययन है (Comparative Politics is a Vertical Comparative Study)-

इस धारणा के समर्थकों का मानना है कि तुलनात्मक राजनीति एक ही देश में विभिन्न स्तरों पर स्थापित सरकारों (राष्ट्रीय एवं स्थानीय) और इनको प्रभावित करने वाले राजनीतिक व्यवहारों का तुलनात्मक विश्लेषण का अध्ययन है। इस विचारधारा को मानने वालों का कहना है कि चूंकि क्षेत्रीय सरकारें अनेक होती हैं, इसलिए राष्ट्रीय सरकारों की उनसे राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं के सन्दर्भ में तुलना करके उपयोगी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इस धारणा के समर्थकों का कहना है कि तुलनात्मक राजनीति एक ही देश की विभिन्न सरकारों की अनुलम्ब तुलना है, इसलिए वे एक ही देश की विभिन्न सरकारों की तुलना विभिन्न स्तरों पर करने पर जोर देते हैं। लेकिन गहराई से देखा जाए तो उनकी यह तुलना सतही स्तर पर ही ठीक प्रतीत होती है। अधिक व्यापक अध्ययन व विश्लेषण से राष्ट्रीय व प्रादेशिक सरकारों में समानताओं की बजाय असमानताएं अधिक दिखाई देती हैं। तुलना करने पर इनमें आर्थिक साधनों,नियमों व शक्ति की समानता ही प्रतीत होती है, लेकिन व्यवहार में राष्ट्रीय सरकार के पास आर्थिक साधन अधिक होते हैं। इसलिए आर्थिक साधनों की समानता मात्रात्मक होती है, गुणात्मक नहीं। इसी तरह नियमों में भी समानता की अपेक्षा असमानता ही अधिक होती है, क्योंकि राष्ट्रीय सरकार के नियमों के पीछे शक्ति का तत्व प्रभावी रहता है। राष्ट्रीय सरकार सम्प्रभु होने के नाते स्थानीय सरकार से अधिक शक्तिशाली होती है। इसलिए राष्ट्रीय सरकार व स्थानीय सरकार के नियमों में समानता की बजाय असमानता ही अधिक होती है। इसी प्रकार शक्ति के कारण राष्ट्रीय सरकार के पास उत्पीड़न का तत्व होने के कारण, वह स्थानीय सरकार से अधिक प्रभावशाली होती है। इस प्रकार इन तीनों समानताओं की अपेक्षा असमानताएं ही अधिक हैं। राष्ट्रीय व स्थानीय सरकारों में पाई जाने वाली समानताएं सतही हैं। इनकी सहायता से इनकी प्रकृति तो समझी जा सकती है, लेकिन कोई सामान्यीकरण नहीं निकाला जा सकता। यह लम्बात्मक तुलना संस्थाओं के औपचारिक अध्ययन के लिए तो

सहायक हो सकती है, लेकिन राजनीतिक व्यवहार की वास्तविकता का ज्ञान इससे नहीं हो सकता। अतः लम्बात्मक तुलना से तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति को वास्तविक रूप में समझना असम्भव है। इसलिए लम्बात्मक तुलना की धारणा आज मान्य नहीं हो सकती।

II.अनुप्रस्थ या क्षैतिज तुलनात्मक अध्ययन के रूप में (Comparative Politics is a Vertical Comparative Study)- इस धारणा के समर्थकों का कहना है कि तुलनात्मक राजनीति तो राष्ट्रीय सरकारों की क्षैतिज तुलना है। ऐसी तुलना ही वास्तविक अध्ययन की आधार है और राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार की तुलना एक देश की राष्ट्रीय सरकारों में भी हो सकती है और दूसरे देश की राष्ट्रीय सरकारों के साथ भी। यह तुलना समय और भौगोलिक सीमाओं से परे है। इसके द्वारा एक देश की राजनीतिक व्यवस्था का राजनीतिक व्यवहार भी समझा जा सकता है और दूसरे देशों को राजनीतिक व्यवस्था के राजनीतिक व्यवहार से उसकी तुलना भी की जा सकती है। यही धारणा तुलनात्मक राजनीति की वास्तविक प्रकृति को समझने में मददगार साबित होती है। इसमें तुलना एक राष्ट्र की केन्द्रीय सरकारों के बीच ऐतिहासिक आधार पर भी हो सकती है और समसामयिक आधार पर एक देश की राष्ट्रीय सरकार की तुलना दूसरे देशों की राष्ट्रीय सरकारों के साथ भी हो सकती है। ऐतिहासिक आधार पर एक देश की राष्ट्रीय सरकार की इसी देश की भूतकालीन राष्ट्रीय सरकारों के साथ तुलना की जा सकती इस प्रकार की तुलना वर्तमान राजनीतिक व्यवहार की प्रकृति को समझने में सहायक होती है। प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था के राजनीतिक व्यवहार की जड़ें भूतकाल में होती हैं। उदाहरण के लिए भारत की राजनीतिक व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवहार की जड़ें प्राचीन, मध्य व ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ढूंढ़ी जा सकती है। भारतीय राजनीति व्यवस्था में आज भी ब्रिटिश शासनकाल के अनेक तत्व मौजूद हैं, जो वर्तमान में राजनीतिक व्यवस्था और राजनीतिक व्यवहार के महत्वपूर्ण अंग हैं। इस प्रकार की तुलना समान संस्कृति व सभ्यता वाले राज्यों की शासन व्यवस्था व राजनीतिक व्यवहार को समझने में तो ठीक है, लेकिन अलग प्रकार की सभ्यता व संस्कृति वाले राज्यों की शासन व्यवस्था व राजनीतिक व्यवहार को समझने में परेशानी पैदा करती है। इसलिए इस प्रकार की तुलना का सीमित महत्व है। समसामयिक आधार पर एक देश की राष्ट्रीय सरकार की दूसरे देशों की राष्ट्रीय सरकारों से तुलना करना बहुत उपयोगी व प्रामाणिक होता है। ब्लैंडेल ने इसे तुलनात्मक अध्ययन में सबसे उपयोगी व प्रामाणिक माना है। उसने लिखा है-"हमारे पास तुलनात्मक सरकारों के अध्ययन का

केवल एक ही दृष्टिकोण शेष रहता है और वह है-समकालीन विश्व की राजनीतिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित राष्ट्रीय सरकारों का राष्ट्रीय सीमाओं से आर-पार अध्ययन करना।" इस प्रकार की तुलनाएं सामान्यीकरण का आधार होती हैं। इसके द्वारा राजनीतिक व्यवहार के सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण भी किया जा सकता है। इससे राजनीतिक संस्थाओं और उनके राजनीतिक व्यवहार को सरलता से समझा जा सकता है। इस प्रकार की तुलनाएं ही सर्वश्रेष्ठ व प्रामाणिक होती हैं।

इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति सम्बन्धी अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ये एक दूसरे की पूरक हैं और राजनीतिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली व उनके व्यवहार को समझने में सहायक हैं। इनके द्वारा राजनीतिक व्यवहार में समानताएं व असमानताओं को समझकर तुलनात्मक राजनीति के बारे में सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सकता है। यही राजनीतिक विश्लेषण की वैज्ञानिकता व विश्वसनीयता का आधार है। आज सीमाओं के आर-पार तुलनात्मक अध्ययन से तुलनात्मक राजनीति एक स्वतंत्र अनुशासन का स्थान प्राप्त कर चुकी है। यह राजनीति विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा होने के बावजूद भी राजनीतिक संस्थाओं के साथ-साथ गैर-राजनीतिक संस्थाओं व उनके राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्वों का भी अध्ययन किया जाता है। यही तुलनात्मक राजनीति की वास्तविक प्रकृति है।

(ब).तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र (Scope of Comparative Politics)-तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र आज एक विवादास्पद विषय है। आज तुलनात्मक राजनीति संक्रमणकालीन दौर मे है। हैरी एकसटीन ने इसी बात की पुष्टि करते हुए लिखा है-"तुलनात्मक राजनीति के बारे में महत्वपूर्ण व विवादास्पद बात यह है कि वह संक्रमण की स्थिति में है-एक प्रकार की विश्लेषण शैली, दूसरे प्रकार की विश्लेषण शैली की ओर प्रस्थान कर रही है।" आज तुलनात्मक राजनीति की सीमा व मानकों तथा व्यवहारों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में काफी विवाद है। तुलनात्मक राजनीति की सीमाओं के बारे में परम्पराओं तथा आधुनिक राजनीतिक विश्लेषक एकमत नहीं हैं। आज तुलनात्मक राजनीति के सामने यह समस्या है कि इसमें क्या शामिल किया जाए या क्या नहीं तथा शामिल करने या न करने का आधार क्या हो ? सीमा सम्बन्धी विवाद के बारे में सभी राजनीतिशास्त्री इस बात से तो सहमत हैं कि तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राष्ट्रीय सरकारों से है और इसमें सरकारी ढांचे के साथ-साथ सरकारों की कार्यप्रणाली तथा गैर-राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक कार्य व व्यवहार शामिल हैं। लेकिन उनमें राजनीतिक क्रियाकलापों का सरकार की क्रिया-कलापों की व्याख्या को

लेकर मतभेद हैं। इस बारे में उनके दो दृष्टिकोण हैं-कानूनी या संस्थागत दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी दृष्टिकोण। इन दृष्टिकोणों की उपयोगिता को लेकर भी राजनीति शास्त्रियों में परस्पर विवाद हैं। कानूनी या संस्थागत दृष्टिकोण के समर्थकों का कहना है कि तुलनात्मक राजनीति में केवल संविधान द्वारा निर्धारित राजनीतिक व्यवहार तथा सरकारी ढांचे व संरचनाओं का ही अध्ययन किया जाए। इसके विपरीत किसी अन्य आधार पर राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करना बेईमानी होगी। इसलिए इस दृष्टिकोण के समर्थक राजनीतिक संस्थाओं व राजनीतिक व्यवहार के औपचारिक अध्ययन पर ही बल देते हैं। लेकिन कानूनी दृष्टिकोण के आलोचकों का कहना है कि इस प्रकार का अध्ययन सतही व दिखावटी होगा। इससे राजनीतिक प्रक्रियाओं व व्यवहार की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। चीन और रूस की संवैधानिक विधि से वहां की राजनीतिक व्यवस्था व उसके व्यवहार का सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इसी तरह ब्रिटेन व भारत में भी संविधान के ढांचे के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहार का सही आंकलन नहीं किया जा सकता। भारत में लम्बे समय से केन्द्र व राज्यों में कांग्रेस पार्टी के शासन ने संविधान का संघात्मक रूप एकात्मक बनाकर रख दिया। इसी तरह ब्रिटेन में संवैधानिक राजनीतिक तन्त्र के स्थान पर निरंकुश राजतन्त्र का होना संविधान के आधार पर राजनीतिक व्यवहार को समझने की चुनौती देता है। इसलिए व्यवहारवादी विचारक तुलनात्मक राजनीति को कानूनी सीमाओं के पाश से मुक्त करके व्यवहारवादी अध्ययन पर जोर देते हैं ताकि राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मकता को समझा जा सके। उनका कहना है कि संस्थागत अध्ययन की बजाय अनौपचारिक तत्वों को भी तुलनात्मक राजनीति में स्थान मिलना चाहिए।व्यवहारवादी दृष्टिकोण के समर्थक तुलनात्मक राजनीति में राजनीति की व्यावहारिकता पर भी बल देते हैं। उनका कहना है कि तुलनात्मक राजनीति में केवल कानूनी व्यवस्था का औपचारिक अध्ययन व तुलना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार व्यावहारिक बनती है तथा राजनीतिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार कैसा है, इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इसलिए तुलनात्मक राजनीति में राष्ट्रीय संस्थाओं व गैर-राजनीतिक संस्थाओं के राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित तथ्यों को भी शामिल करना चाहिए। व्यवहारवादियों का मानना है कि हर राजनीतिक समाज में राजनीतिक गतिविधि हर तरह से शासन तन्त्र के आस-पास ही चक्कर काटती रहती है और इसी से हर राजनीतिक व्यवहार का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जीन ब्लौंडेल ने लिखा है-"तुलनात्मक सरकार या तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में उन तरीकों का, जो समाज में मूल्यों

का अधिकृत विवरण होते हैं, परीक्षण किया जाता है।" यह परीक्षण मूल्यों के नियमन, रूपान्तरण तथा क्रियान्वयन से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति में मूल्यों की त्रिमुखी प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है। इस तरह व्यवहारवादी विचारक तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र मूल्यों के नियमण, रूपान्तरण तथा कार्यान्वयन तक ही सीमित मानते हैं। तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र से सम्बन्धित दूसरा विवाद मानकों तथा व्यवहारों का विवाद है। मानकों का आधार कानून व नियम होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि राजनीतिक व्यवहार कानूनों व नियमों के अनुकूल ही हों। इसकी प्रतिकूलता तुलनात्मक अध्ययन में कठिनाईयां उत्पन्न करती हैं। यदि मानकों के अनुसार ही राजनीतिक व्यवहार रहे तो तुलना करना आसान होता है। बाह्यकारी शक्ति के प्रयोग से कानून व नियमों पर आधारित मानक अशुद्ध होते हैं। इसलिए राजनीतिक व्यवहार के बारे में यह देखना भी आवश्यक होता है कि वह मानकों के अनुकूल है या प्रतिकूल। यद्यपि राजनीतिक व्यवहार व मानकों की प्रकृति परिवर्तनशील होती है। ये दोनों गत्यात्मक हैं। जो मानक व व्यवहार आज हैं, आगे भी उनका वैसा ही होना अधिक सम्भव नहीं है। इसलिए इन दोनों में साम्य व गतिरोध का होना स्वाभाविक ही है। मानको यछवतउेद्ध में परिवर्तन व्यवहार में परिवर्तन का कारण बन सकता है और व्यवहार भी नए मानकों की स्थापना का कारण हो सकता है। इसलिए राजनीतिक व्यवहार व मानकों के राजनीतिक पहलुओं का अध्ययन भी तुलनात्मक राजनीति में महत्वपूर्ण होता है। यदि इनकी उपेक्षा की जाएगी तो राजनीतिक व्यवस्था के वास्तविक व्यवहार के अध्ययन से हम दूर हो जायेंगे, क्योंकि मानक व व्यवहार सरकार की जीवित संरचना का महत्वपूर्ण अंग है। तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र इस प्रकार हैः-

- **राजनीतिक समाजीकरण का अध्ययनः-**राजनीतिक समाजीकरण तुलनात्मक राजनीति का एक महत्वपूर्ण अध्ययन विषय है। राजनीतिक समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक मूल्यों तथा दृष्टिकोणों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। राजनीतिक समाजीकरण एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के जीवन से प्रारम्भ होकर उसकी मृत्यु तक चलती रहती है। व्यक्ति अपने बचपन से ही विभिन्न राजनीतिक विषयों में रूचि ले ने लगता है और जीवन पर्यन्त वह इससे जुड़ा रहता है। राजनीतिक समाजीकरण को तुलनात्मक राजनीति मे इसलिए शामिल किया जाता है क्योंकि राजनीतिक समाजीकरण पर ही किसी राजनीतिक प्रणाली की सफलता या असफलता निर्भर करती है। प्रायः विकसित देशों में

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया तीव्र होती है। इसके विपरीत पिछड़े व विकासशील देशों में यह प्रक्रिया बहुत धीमी होती है।

- **राजनीतिक संस्कृति का अध्ययनः-** राजनीतिक संकृति से अभिप्राय एक राजनीतिक व्यवस्था के नागरिकों के उस व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण, विश्वास, भावनाओं तथा मूल्यों से है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था की अपनीविशिष्ट राजनीतिक संस्कृति होती है। राजनीतिक संस्कृति ही यह स्पष्ट करती है कि लोग राजनीतिक व्यवस्था को कितना महत्व देते हैं। वास्तव में किसी राजनीतिक व्यवस्था की सफलता या असफलता राजनीतिक संस्कृति पर ही निर्भर करती है। अतः तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन किया जाता है।
- **विभिन्न राज्यों का संस्थागत व्यापक विवरणः-** तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत विद्वानों ने विधान मंडल, कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा नौकरशाही को ही राजनीतिक विषय क्षेत्र माना। यद्यपि आजकल संस्थाओं के स्थान पर कार्यद्पद्धति और व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है, तथापि राजनीतिक सरंचना को बिल्कुल छोड़ा नहीं जा सकता। साधारणतया यह माना जाता है कि अन्तिम निर्णय लेने की संसद की शक्ति दिनद्प्रतिदिन कम होती जा रही है और यह शक्ति कार्यपालिका के हाथों में आ गई है। इस सरकार के निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि हम अधिक से अधिक देशों की कार्यपालिका और विधानमंडलों का अध्ययन करें।
- **राजनीतिक विशिष्टजन, राजनीतिक हिंसा और राजनीतिक भ्रष्टाचारः-** तुलनात्मक राजनीति के विद्वान् इस बात का भी अध्ययन करते हैं कि वे व्यक्ति जो राजसत्ता का प्रयोग करते हैं, समाज के किन वर्गों से सम्बन्धित हैं और उनकी सत्ता का क्या आधार है। प्रत्येक राज्य मे शासन की शक्ति कुछ विशिष्ट लोगों या एक विशिष्ट वर्ग के हाथों में होती है। जिन देशों मे स्वस्थ दलीय प्रणाली है, वही शासकों की भर्ती का मुख्य स्रोत राजनीतिक दल होते हैं। आर्थिक असमानता और राजनीतिक शासकों की भर्ती के ढ़ंग का राजनीतिक हिंसा और आन्तरिक कलह से गहरा सम्बन्ध है। क्रीसिस तथा वार्ड के शब्दों में, ''जिन देशों में यत्नपूर्वक समाज में किन्ही विशेष वर्गों को 'राजनीतिक सत्ता' से वंचित रखा जाता है, वहाँ ये वर्ग हिंसक साधनों से सत्ता हथियाने का प्रयास करते हैं।''

- **विश्लेषणात्मक तथा आनुभाविक खोजः-** तुलनात्मक राजनीति में आनुभाविक अध्ययन पर अधिक बल दिया गया है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक संस्थाओं, उनकी संरचनाओ की अपेक्षा इसके क्रियाशील कार्यकर्त्ताओं अथवा तत्वों के व्यवहार का अध्ययन होता है।
- **राजनीतिक दल तथा हित समूहः-** आधुनिक युग लोकतन्त्र का युग है और लोकतंत्र में दलों का अनिवार्य है। प्रायः सभी देशों में राजनीतिक दल पाये जाते हैं। अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया व जर्मनी में द्विद्दलीय प्रणाली पायी जाती है, जबकि फ्रांस, इटली, नार्वे, भारत इत्यादि देशो में बहुदलीय पद्धति पायी जाती है। साम्यवादी चीन, क्यूबा, उत्तरी कोरिया, वियतनाम आदि मे एकदलीय पद्धति विद्यमान है। तुलनात्मक राजनीति का विद्यार्थी राजनीतिक दलों के संगठन, कार्यक्रम तथा कार्यों का अध्ययन करता है। राजनीति दल ही नहीं, बल्कि हितद्दसमूह भी राजनीतिक सक्रियता के महत्वपूर्ण पहलू हैं। हितसमूह (इन्टरेस्ट ग्रुप्स) दलों और सरकार की नीतियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मजदूर संघ, रेलवे यूनियनों, व्यापारियों के संघ, व्यावसायिक संघ इत्यादि सभी दबाव गुटों की श्रेणी में आते हैं अमरीका, ब्रिटे न, फ्रांस, इत्यादि लोकतंत्रीय राज्यों में दबाव समूह सरकारी निर्णयो को काफी प्रभावित करते हैं, जबकि चीन, इत्यादि साम्यवादी दे शों में इनका महत्व बहुत कम है।
- **राजनीतिक आधुनिकीकरण और नगरीकरण की समस्याएँ:-**तुलनात्मक राजनीति के विद्वान इन प्रश्नों पर भी विचार करते हैं कि द्द शिक्षा के प्रसार का नागरिकों के राजनीतिक आचरण और उनकी राजनीतिक संस्थाओं पर क्या प्रभाव पडता है ‘, एक ही समाज के अन्तर्गत रहने वालो विभिन्न जातियों और धार्मिक निष्ठाओं में क्या परिवर्तन आ जातें हैं? क्या आर्थिक विकास द्वारा यह संभव है कि एशिया और अफ्रीका के नागरिकों को अपने परिवार, कुल, गांव, कबीले, धर्म और जाति के प्रति जो निष्ठाऐ हैं, धीरेद्दधीरे समाप्त हो जाएँ ओर उनके स्थान पर उनमें राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो सके?
- **विकासशील समाजों का अध्ययनः-** तुलनात्मक राजनीति में न केवल विकसित पश्चिमी देशों की शासन प्रणालियों का अध्ययन किया जाता है, बल्कि इसमें एशिया और अफ्रीका के पिछड़े और विकासशील देशों की शासन प्रणालियों का भी अध्ययन किया जाता है।.
- **राजनीतिक सहभागिताः-**राजनीतिक सहभागिता से अभिप्राय नागरिकों की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने से है। सभी राजनीतिक प्रणालियों में राजनीतिक सहभागिता का स्तर एक समान नहीं होता।

उदार लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में नागरिक राजनीतिक गतिविधियों में अधिक भाग लेते हैं जबकि पिछड़ी हुई तथा सर्वसत्तावादी राजनीतिक व्यवस्था को राजनीतिक भागीदारी के अधिक अवसर नहीं मिलते। वास्तव में राजनीतिक भागीदारी ही किसी व्यवस्था के औचित्य की कसौटी मानी जाती है। तुलनात्मक राजनीति में भागीदारी का महत्व है।

- **राजनीति प्रक्रियाएँ:-**प्रत्येक राजनीति प्रणाली में अनेक राजनीतिक प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय निर्माण की प्रक्रिया, न्यायिक प्रक्रिया इत्यादि अनेक प्रक्रियाएँ अनवरत रूप में चलती रहती हैं। इन राजनीतिक प्रक्रियाओं का राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
- **प्रतियोगी राज्यों के बीच शक्ति सन्तुलनः-**तुलनात्मक राजनीति मे 'युद्ध और शान्ति' तथा शक्ति सन्तुलन की समस्याओं पर विचार किया जाता है।
- **अन्तःअनुशासनात्मक दृष्टिकोणः-**आधुनिक युग में तुलनात्मक राजनीति का विषय क्षेत्र केवल मात्र राजनीति शास्त्र के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें राजनीतिक व्यवस्था के व्यावहारिक राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन होने के कारण इसके विषय क्षेत्र में काफी वृद्धि हु ई है। इसी कारण तुलनात्मक राजनीति एक अन्तःअनुशासनात्मक दृष्टिकोण बन गया है। अब तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक शास्त्र के अलावा अन्य सामाजिक विज्ञानों जैसे कि समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, रसायन विज्ञान इत्यादि का भी अध्याय किया जाता है। आधुनिक विद्वानों की मान्यता है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलताओं को सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में ही भली प्रकार से समझा जा सकता है। इस प्रकार तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र बहुत कुछ स्पष्ट, सुनिश्चित और निर्धारित हो गया है। जी. के .रॉबटर्स का कथन सही लगता है कि, इस प्रकार यह बात कि तुलनात्मक राजनीति 'कुछ भी नहीं है'गलत साबित हो गया है और इसका प्रतिपक्षी दावा कि यह 'सब कुछ है ' संशोधित हो गया है। अर्थात् तुलनात्मक राजनीति का अपना स्वयं का विषय क्षेत्र बन गया है। परन्तु इसका अभिप्राय नही है कि तुलनात्मक राजनीति का एक ऐसा स्वतन्त्र शास्त्र बन गया है जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। उपरोक्त विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति में न केवल विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं, उनके कार्यों का ही अध्ययन शामिल नहीं है, बल्कि इसमें गैर-राजकीय संस्थाओं के राजनीतिक

कार्य व व्यवहार भी शामिल हैं। आज तुलनात्मक राजनीति में शासन प्रणाली व उसके राजनीतिक व्यवहार के समान व असमान दोनों तत्व ही शामिल हैं। मुनरो, हस्रम फाइनर, लास्की जैसे विद्वानों के प्रयासों ने अरस्तु के तुलनात्मक अध्ययन को बहुत व्यापक बना दिया है। आज तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र पश्चिमी देशों की सरकारों या राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका प्रसार तृतीय विश्व तक हो चुका है। अब राज्य से सम्बन्धित संस्थाओं व संगठनों की बजाय गैर-राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है। आज तुलनात्मक राजनीति अन्धकार में भटकने की बजाय निश्चित कारणों को प्राप्त करने के लिए राजनीतिक संस्थाओं व राजनीतिक व्यवहार की महत्वपूर्ण नियमितताओं, समानताओं व असमानताओं पर अधिक ध्यान दे रही है। आज तुलनात्मक राजनीति में सजग तुलनाओं का विशेष महत्त्व है। आज राजनीतिक विद्वान तुलनात्मक अध्ययन को निरर्थक व बोझिल बनाना नहीं चाहते। आज तुलनात्मक राजनीति में नए-नए विषयों व नई-नई तकनीकों को महत्व दिया जा रहा है तथा तुलनात्मक राजनीति अन्य सामाजिक शास्त्रों से भी काफी कुछ ग्रहण कर रही है। इसलिए तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन कानून-निर्माण, कानून प्रयोग, विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगों से सम्बन्धित निर्णयों, राजनीतिक दलों, दबाव समूहों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि इसमें समस्त व्यक्तियों, संस्थाओं और समुदायों के सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन भी शामिल है। आज तुलनात्मक राजनीति में राज्यों की संस्थागत संरचनाएं, राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक दल व दबाव समूह, राजनीतिक अभिजन, राजनीतिक हिंसा व राजनीतिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण, प्रतियोगी राज्यों के बीच शक्ति सम्बन्ध, जनमत, तुलनात्मक विश्लेषण आदि का अध्ययन शामिल है। लेकिन तुलनात्मक राजनीति अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर चुकी है, बल्कि यह संक्रमणकाल के दौर से गुजर रही है। राजनीतिक विद्वान अभी भी इस अनिश्चय की स्थिति में हैं कि तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र क्या हो।

1.3.3.तुलनात्मक राजनीति का विकास (Development of comparative politics)

राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन क्रान्तिकारी और नया नहीं है। राजनीति में प्रारम्भ से ही तुलनात्मक अध्ययन का प्रयोग किया जाता रहा है। इसीलिए ब्लौंडेल ने कहा है कि ''तुलनात्मक सरकारों का अध्ययन प्राचीनतम, अत्यन्त कठिन और अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा शुरू से ही मनुष्य के ध्यान के आकर्षण का केन्द्र

रहा है।'' किन्तु तुलनात्मक राजनीतिक के व्यवस्थित अध्ययन का श्रेय अरस्तू को है। अरस्तू ने ही सबसे पहले तत्कालीन राजनीतिक की व्यवस्थाओं में उपस्थित निरंकुश तंत्रों, श्रेणी तंत्रों और प्रजातंत्र की विशेषताओं और अन्तरों का तुलनात्मक दृष्टि से विशद् विवेचन किया था। अरस्तू से लेकर आधुनिक राजनीतिशास्त्र के विद्वानों तक ने राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन, विश्लेषण और वर्गीकरण किया है और नयेद्दनये शोध उपकरणो के माध्यम से नये दृष्टिकोणों की व्याख्या की है।

राजनीति और शासन के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा हम अरस्तू और उसके पहले भी पाते हैं। बाद में मेकियावेली, मान्टेस्क्यू, ब्राइस, लास्की, फाइनर आदि विचारकों ने इस पद्धति को अपनाया। दूसरे महायुद्ध के पहले तक इसका विकास छोटे स्तर पर ही होता रहा। लेकिन, उसके बाद तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी विकास हुए और इसे एक नये अनुशासन के रूप में विकसित किया जाने लगा। आज सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से राजनीतिशास्त्र का यह एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है और इसके अन्तर्गत अनेकों सिद्धांतों व अवधारणाओं को जन्म दिया गया है। पुराने विचारों मे अरस्तू पहला राजनीतिक दार्शनिक था जिसने राजनीति को विज्ञान का दर्जा देना चाहा। उसने इस प्रकार की समस्याओं का चिन्तन तथा ऐसी विधियों का प्रयोग किया जो आज भी राजनीतिक के अध्ययन के क्षेत्र में बहुत कुछ मान्य है। उसने 158 संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन कर वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया। अरस्तू ने ही पहली बार राजनीतिशास्त्र में आगमनात्मक पद्धति को अपनाया।

तुलनात्मक राजनीति के विकास का दूसरा चिन्ह मैकयावली और पुनर्जागरण के युग में मिलता है। राज्य की उत्पत्ति, राजनीतिक व्यवस्था शासन कला के विषय में निगमनात्मक पद्धति का परित्याग कर दिया गया तथा मैकयावली जैसे विचारकों ने वैज्ञानिक तटस्थता की नीति को अपनाते हुए उन दिनों की परिस्थितियों का गंभीरता से अध्ययन किया। अपने युग की समस्याओं को समझा और फिर निष्कर्ष पर पहुंचे। इस तरह उन्होंने अपनीअध्ययन पद्धति मे अनुभववाद और इतिहास वाद का समन्वय किया। उसने राजनीति के अध्ययन में इतिहास और तर्क का सहारा लिया। मॉण्टेस्क्यू और इतिहासवादी युग के कुछ लेखकों में हम राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन का उदय होते देखते है। हेरी एक्सटीन का तो निष्कर्ष है कि आधुनिक तुलनात्मक राजनीति से सम्बन्धित कोई भी पाठक सरलता से अनुमान लगा सकता है कि माण्टेस्क्यू द्वारा विचार किये गये विषय उसके अध्ययन क्षेत्र में आते है। मॉण्टेस्क्यू के विचारों में राजनीतिशास्त्र का सम्पूर्ण

मानवीय संबधों के साथ अध्ययन किया जाना चाहिए जिसमें धर्मशास्त्र, भूगोल, इतिहास, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र आदि सभी विषय का अध्ययन शामिल है।

इतिहासवादी विचारकों के कई प्रमुख उदाहरण हमारे सामने हैं, जैसे विवेक और प्रजातन्त्र के साथद्दसाथ विकास में विश्वास करने वाला काण्ट, विवेक और स्वतन्त्रता को बुनियादी मानते वाला हीगेल, वैज्ञानिक प्रवृति को बुनियादी मानने वाला काम्टे और वर्गद्दसंघर्ष के माध्यम से स्वतंत्रता की प्राप्ति में विश्वास करने वाला मार्क्स। इन इतिहासवादियों की सबसे बडी देन यह थी कि उन्होंने सामाजिक गतिशीलता में, खास कर विकासवादी सिद्धान्त में, राजनीतिक इतिहासकारों की रूचि जाग्रत की, जिसके कारण राजनीति के विस्तृत सिद्धान्तों का जन्म हुआ। उन्होंने उन समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया जो राजनीति और आर्थिक विकास, राजनीति और शिक्षा, सामाजिक संस्कृति और राजनीति के बीच सम्बंध जैसी समस्याओं से सम्बन्धित है। दूसरे महायुद्ध के बाद तुलनात्मक राजनीतिक के क्षेत्र में सही दिशा का विकास हु आ। पहले तो मंथर गति से विकास हुआ, फिर तेजी से नयी प्रवृतियाँ उभरने लगीं। पहले तुलनात्मक अध्ययन के महत्व को समझते हुए नये तकनीक की खोज की, फिर नई अवधारणाओं जैसे राजनीतिक विश्लेषण, राजनीतिक समाजशास्त्र आदि का विकास हुआ। पिछले दो दशकों में राजनीति के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन का विकास विशेष रूप से और बडी तेजी से हुआ। ईस्टन. आमंड, कार्ल डॉ° एच., कोलमन आदि ने व्यवस्था सिद्धान्त के अन्तर्गत तुलनात्मक विश्लेषण को नयी दिशा दी। व्यवस्था के सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुए। सिद्धान्त के द्वारा राज्य और राज्य से परे सभी प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं की तुलना संभव हुई। लगभग सभी विद्वानों ने अपनीद्दअपनीविशेष शब्दावली और भाषा का विकास किया। ‘इनपुट‘, ‘आउटपुट‘, ‘फीडबैक‘, ‘साईबरनेटिक्स‘, आदि इसका उदाहरण है। तुलनात्मक राजनीति के शोध के लिए कई नयी पद्धतियाँ अपनायी गयीं, जैसे ‘बोटिंग स्टडी‘, ‘स्केलिंग टेकनीक‘, ‘कन्टेन्ट एनालायसिस’ आदि। तुलनात्मक राजनीति के विकास में हाल के वर्षों में डेल, एट्टर रोस्टो, लुसियन पाई, सिडनी वर्बा, मायरन विनर आदि के योगदान अपना विशेष महत्व रखते हैं। उन्होंने केवल पश्चिमी देशों का ही अध्ययन नहीं किया, बल्कि नवोदित राष्ट्रों और तीसरे विश्व के अध्ययन को ही विशेष महत्व दिया।

दूसरे महायुद्ध के बाद तुलनात्मक राजनीति के क्षेत्र में जिन नयी प्रवृत्तियों का समावेश हुआ वे निम्नलिखित हैं:-

- तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र बहुत अधिक बढ गया है। उसमें न केवल पश्चिमी देशों का बल्कि अपाश्चात्य व्यवस्थाओं का गहन अध्ययन किया जाने लगा है।
- राज्य व शासन की संस्थाओं से अधिक सामाजिक समूहों के राजनीतिक कार्यों तथा सामाजिक संस्थाओं के राजनीतिक मूल्यों को ढालने में अदा की गयी भूमिका के अध्ययन पर अधिक से अधिक बल दिया जा रहा है।
- तुलनात्मक विश्लेषण के लिए दूसरे विषयों से नयी अवधारणात्मक योजनाएँ ली जा रही हैं और नये प्रतिमानों का निर्माण किया जा रहा है। संरचनात्मकद्दप्रकारात्मक विश्लेषण, आधुनिकीकरण तथा राजनीतिक विकास के ढांचे और राजनीतिक संस्कृति का दृष्टिकोण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
- राजनीति के क्षेत्र को अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास जाने लगा।

1.3.4. तुलनात्मक राजनीति व तुलनात्मक सरकार (Comparative politics and comparative government)

तुलनात्मक सरकार का कार्यक्षेत्र तुलनात्मक राजनीति की तुलना में काफी संकुचित है। प्रायः इन दोनों को समानार्थी माना जाता है। लेकिन इनमें मौलिक व आधारभूत अन्तर है। इनके अन्तर को स्पष्ट करते हुए जी0 के0 राबर्टस् ने लिखा है-"तुलनात्मक सरकार या शासन का प्रयोग राज्यों, उनकी संस्थाओं और उनके कार्यों से सम्बन्धित कुछ समूहों जैसे-राजनीतिक दल, दबाव समूह आदि के अध्ययन के लिए उपयुक्त लगता है, लेकिन तुलनात्मक राजनीति का क्षेत्र व्यापक है, जिसमें तुलनात्मक शासन तथा गैर राज्यीय राजनीति जैसे कबीले, निजी संस्थाएं आदि का भी अध्ययन किया जाता है।" तुलनात्मक सरकार के बारे में जीन ब्लौंडेल ने लिखा है-"तुलनात्मक सरकार विश्व की राष्ट्रीय सरकारों के विभिन्न प्रतिमानों का अध्ययन है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि तुलनात्मक राजनीति तुलनात्मक शासन का विकसित रूप है। तुलनात्मक शासन या सरकार का प्रयोग द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले तो ठीक लगता था, आज नहीं। आज तुलनात्मक राजनीति का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवहार की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली से जुड़ गया है। नवोदित राष्ट्रों के रूप में तृतीय विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भूमिका के कारण तुलनात्मक अध्ययन अपनी परम्परागत सीमाएं छोड़कर तृतीय विश्व की ओर प्रस्थान कर चुका है। अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्र में आए व्यापक परिवर्तनों ने राजनीति विज्ञान को नए सिरे से सोचने पर मजबूर कर दिया है। 1979 के बाद उत्तर'व्यवहारवादी क्रान्ति ने राजनीति

विज्ञान को व्यक्ति की राजनीतिक व गैर-राजनीतिक गतिविधियों का विश्लेषण करने के लिए बाध्य कर दिया है। सिडनी वर्बा ने केवल पश्चिमी देशों का अध्ययन न करके, एशिया, अफ्रीका एवं लेटिन अमेरिका के नए राष्ट्रों का अध्ययन करने पर जोर दिया है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि तुलनात्मक राजनीति का कार्यक्षेत्र व्यापक हो चुका है। यह अपना परम्परागत रूप छोड़कर आधुनिकता की तरफ अग्रसर हो रही है। इसलिए तुलनात्मक सरकार से यह न केवल भिन्न है, बल्कि तुलनात्मक सरकारों को भी अपने में समेट लेती है। जहां तुलनात्मक सरकार राजनीतिक संस्थाओं व उनके कार्यों से सम्बन्धित है, वहीं तुलनात्मक राजनीति संस्थाओं व कार्यों के साथ साथ गैर-राजनीतिक संस्थाओं, कार्यों व उनके व्यवहार को भी समेट लेती है। अतः तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन क्षेत्र तुलनात्मक सरकार से व्यापक है और तुलनात्मक सरकार का अध्ययन भी तुलनात्मक राजनीति के अन्तर्गत आता है।

1.3.5.तुलनात्मक पद्धति और तुलनात्मक राजनीति (Comparative Method and Comparative Politics)

अब तुलनात्मक पद्धति, किसी राजनीतिक व्यवस्था को किसी अन्य राजनीतिक व्यवस्था से यान्त्रिकी तुलना **(mechanicak comparidon)** मात्र नही मानी जाती है। अब इसका प्रयोग सर्जनात्मक प्रक्रिय**(creative process)** के रूप में इस प्रकसा सक होता है जिसकी तुलनाएँ अधिक अर्थपूर्ण बनाई जा सकें। सामाजिक विज्ञानों में यान्त्रिकी मुलनाएँ किसी अर्थपूर्ण निष्कर्ष तक नहीं पहुंच सकती है। जैसे भारत के प्रधानमन्त्री की, भारम के किसी गांव की पंचायत के सरपंच से तुलना की जाए तो यह तुलना केवल यान्त्रिकी ही हों सकती है और ऐसी तुलनार से न तो प्रधानमन्त्री के बारे में बौर न ही सरपंच के बारे में कोई अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है। अब तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग विशेष अर्थो में होने लगा है। यह एक सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में देखी जाने लगी है।पर इस नये अर्थ में इसका प्रयोग बहुत कठिन बन गया है। क्योंकि सामाजिक विज्ञानों में तुल्य घटनाओं की अपजी इच्छा व 'मानस होता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में इस पद्धति का उपयोग अधिक प्रेरक, चुनौती वाला पर साथ ही फलदायक बन गया हैं। अरेण्ड लिजफार्ट ने इस पद्धति की परिभाषा करते हुए लिखा है कि तुलनात्मक पद्धति, अन्य सभी परिवत्यों को स्थिर रखते हुए, दो या अधिक परिवत्यसें के बीच सामान्य आनुभविक सम्बन्ध की स्थापना करने की विधि हैं अर्थात तुलनात्मक पद्धति सामान्य आनुभविक प्रस्थापनाए स्थापित करने की आधारभूत पद्धतियों में से एक हैं। आर्थर एल. कालबर्ग के

इस पद्धति की संक्षिप्त परिभाषा की है। वह तुलनात्मक पद्धतिको तापन के एक रूप (form of measurement) मात्र मानता है। लासवेल और आमण्ड ने तुलनात्मक पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति कहकर परिभाषा किया है। लासवेल के अनुसार तुलनात्मक पद्धति वैज्ञानिक पद्धति से भ्सिन्न हो ही नही सकती है। उनकी मान्यता है कि राजनीतिक घटनाओ पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए एक स्वतन्त्र व पृथक तुलनात्मक पद्धति अनावश्यक है। अतः इसके अनूसार तुलनात्मक पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति की तरह ही सामान्य नियमों की खोज के लक्ष्य की प्राप्ति की विधी है। कालबर्ग, लासवेल व आमण्ड द्वारा किया गया तुलनात्मक पद्धति का अर्थ, इस पद्धति की प्रकृति का सही चित्रण नहीं करता है। यह मापन का एक रूप मात्र नही कहा जा सकता है। मापन से ही तुलनाए नही हो जाती है। यद्यपि यह सही है कि मापन में तुलना अन्तर्निहित है, पर मापन एक घटना के बारे में सामान्य निष्कर्ष से आगे नही ले जा सकता है। उदाहरण के लिए, यह मापक का निष्कर्ष कि किसी देश में संसदीय लोकतन्त्र सफल है, अवश्य ही किसी अन्य संसदीय लोकतन्त्र के आरे में सामान्यीकरणन ही निकाले जा सकते हैं। इससे यह तो बताया जा सकता है कि संसदीय लोकतन्त्र ऐसा है पर इसके बारे में यह स्पष्ट नही किया जा सकता कि ऐसा क्यो हैं इसलिए कालबर्ग की परिभाषा, कि तुलनात्मक पद्धति मापन का एक रूप है, सही नही माना जा सकता है। लासवेल व आमण्ड द्वारा इसे वैज्ञानिक पद्धति मान लेना भी ठीक नही है। वैज्ञानिक पद्धति तो एक मनोवृत्ति है। यह व्यवस्थित पर्यवेक्षण, वर्गीकरण और आंकडों क व्यवस्था है जिसकी तुलना भी होती हो यह आवश्यक नही है। जैसं, किसी देश की व्यवस्थापिका का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन सम्भव नही है। इस पद्धति के द्वारा अध्ययन तभी होगा जब किसी अन्य देश की व्यवस्थापिका से इसकी तुलना की जाए। अतः तुलनात्मक पद्धति व वैज्ञानिक पद्धति को एक ही नहीं माना जा सकता है।

निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि तुलनात्मक पद्धति किसी राजनीतिक व्यवस्था, संस्था, प्रक्रिया व राजनीतिक व्यवहार से सम्बन्धित दो या अधिक परिवत्यों में परस्पर आनुभविक सम्बन्ध स्थापित करने की ऐसी विधि है जिसमें तुलना की सभी इकाईयों से सम्बन्धित अन्य सभी परिवत्यों को स्थिर रखा जाता है। तुलनात्मक पद्धति की निम्नलिखित विषेशताएँ होती हैं-

- वह निश्चित रूप एक पद्धति है।
- यह वैज्ञानिक पद्धतियों में एक है, स्वयं वैज्ञानिक पद्धति नहीं है।

- यह परिवत्यों के बीच आनुभविक सम्बन्ध-सूत्रता की खोज करने की विधि है।
- यह तुलनात्मक विश्लेषण की विधि है, प्रविधि प्रक्रिया या तुलना का दष्टिकोण नहीं है।

तुलनात्मक पद्धति किसी भी एक वस्तु की किसी अन्य वस्तु से तुलना करना नहीं है। यह सर्जनात्मक प्रक्रिया है। इसका तुलनाओं में प्रयोग तभी किया जा सकता है जबकि तुलना की इकाईयों में कुछ लक्षण अनिवार्यतः विद्यमान हों अर्थात तुलनात्मक पद्धति की तुलना करने की कुछ पूर्व शर्तें संक्षेप में यह पूर्व शर्तें इस प्रकार हैः-

(क) तुलना की इकाई चयन के कारण के रूप में प्रत्ययी ढांचा या विचारबन्ध (Conceptual framework as a factor in unit selection)- तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में तुलना की इकाईयों का प्रत्ययी ढांचा एक-सा होना आवश्यक है। एक-से प्रत्ययी ढ़ांचे से यहां यह तात्पर्य है कि सभी इकाईयाँ एक ही प्रत्यय से सम्बन्धित हों। उदाहरण के लिए, भारत की संसद की तुलना, ब्रिटेन की संसद से करने पर, तुलना की दोनों इकाइयाँ-भारत व ब्रिटेन की संसदें समान प्रत्ययी ढांचे वाली इकाईयां कही जाएंगी। दोनो ही राष्ट्रीय संसद हैं, पर अगर राजस्थान की विधान सभा की अमेरिका की कांग्रेस (व्यवस्थापिका) से तुलना की जाए तो दोनों इकाइयों का प्रत्ययी ढांचा अलग-अलग हो जाएगा तो तुलना तो की जा सकेगी, प यह सर्जनात्मक नही हो सकेगी।

(ख) अन्वेषण के केन्द्र के रूप में तुल्य प्रत्ययी विषय (Comparable conceptual issue as focus of enquiry)-अन्वेषण के केन्द्र के रूप में तुलना योग्य व समान प्रत्ययों के विषय की तुलनात्मक अध्ययनों के लिए चुने जाएँ अन्यथा अध्ययन के सम्बन्ध में परिकल्पना करना ही कठिन हो जाएगा।

(ग) तुलना की प्रत्ययी इकाइयों की परिभाषितता(Definationally conceptual units of comparison)- तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में केवल ऐसी ही पत्ययी इकाइयों का चयन करना चाहिए जिनकी परिभाषा की जा सके। अनके सम्बन्धित प्रत्यय सयम, स्थान और सांस्कृति के बन्धनों से मुक्म हों तथा अवस्थाओं व परिस्थितियों में लागू होने वाले हों।

(घ) शोध के केन्द्र की सुनिश्चितता(Definitieness of the focus of enquiry)-तुलनात्मक विश्लेषणों में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग उपयोगी बनाने के लिए अध्ययन का सुनिश्चित ध्येय या मन्तव्य होना चाहिए।

(च) प्रत्ययी इकाई के कम से कम उदाहरणों की अनिवार्यता (Necessity of atleast two cases of conceptual units)-तुलना करने का तात्पर्य ही यह है कि कम से कम दो उदाहरण तो उपलब्ध हो। अगर दो या दो से अधिक उदाहरण नही होगे तो तुलना सम्भव ही नही होगी। जहाँ केवल एक ही घटना या उदाहरण है वहां तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग नही किया जा सकता है।

सामान्ययता इस पद्धति के प्रयोग के निम्नलिखित चरणों का पालन होने पर ही यह पद्धति क्रियात्मक रूप ले सकती है।

(क).प्रत्ययी ढांचे के आधार पर तुलना की इकाइयों का चयन (Selection of units of comparison on the basis of conceptual framework)

(ख).तुलना की इकाइयों का वर्गीकरण(Classification of the units of comparison)- तुलना के लिए चुनी गई प्रत्ययी इकाइयों का वर्गीकरण करके ही तलनात्मकता की अवस्था में पहुँचा जा सकता है। वर्गीकरण से तुलना का क्षेत्र व इकाइयों के वर्ग का सीमांकन हो जाता है। इससे तुलना का क्षेत्र सुनिश्चित व सुस्पष्ट हो जाता है।

(ग).तुलना की सभी इकाइयों के सम्बन्ध में परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं की स्थापना (Formulation of hypothetical propositions about all the units under comparison)-परिकल्पानात्मक प्रस्थापनाओं की स्थापना परिरकल्पना बिना आधार के नहीं की जा सकती है। इकाई का चयन पहले होना चाहिए। इकाइयों के चयन के बाद प्रस्थापनाओं की स्थापना मे अधिक छूट मिल जाती है। चुनी गई इकाइयों को लेकर हर सम्भव परिकल्पना की जा सकती है और उनमें से एक या कुछ या सभी की तुलनात्मक ढंग से परख की जा सकती है।

(घ). तुलना ही हर इकाई को लेकर परिकल्पनात्मक प्रस्थापना की वैधता की परख (Testing the validity of hypothetical proposition about each instace of comparison)- परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं की वैधता की परख इकाइयों कसे सम्बन्धित आंकड़ों के संकलन के द्वारा की जाती है।

(ड़).परिणामों के अनुसा प्रस्थापना का सत्यापन त्याग अथवा पमिार्जन-संशोधन करना (Confirming abandoning or refining the proposition according to results)-प्रस्थांपनाओ को आंकड़े द्वारा

परख करके सत्यापन, त्याग या परिमार्जन किया जाता है। अगर संकलित आंकड़े प्रस्थापना की दष्ट्रि करते हों तो प्रस्थापना स्थापित हो जाती है। विपरित आंकड़े होने पर इसका त्याग या पमिार्जन करके उसको आंकड़ों क अनुसार संशोधित कर लिया जाता है।

(च).अमूर्तीकरण या सिद्धान्त निर्माण (Abstraction or theory building)-जब एक अध्ययन के सामान्य निष्कर्ष प्राप्त हो जाते हैं तो उनकी तुलना अन्य अध्ययनों क निष्कर्षों से की जाती है और अगर अनेक उदाहरणों में एक ही प्रकार के निष्कर्ष निकलते हैं तो इस आधा पर सामान्यीकरण किए जा सकते हैं। इन सामान्यीकरणों के द्वारा सिद्धान्त निर्माण में सहायता मिलती है।

1.3.6.तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता (Unility of Comparative Method)

राजनीतिक अध्ययनों व विशेषकर तुलनात्मक राजनीति में तुलनात्मक पद्धति की बहुत उपयोगिता है।

- राजनीतिक व्यवहा को समझने में सहायक है।
- राजनीति को वैज्ञानिक अध्ययन बनाने में सहायक है।
- राजनीति में सिद्धान्त निर्माण करने में सहायक है।
- प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की पुनःप्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायक है।

1.3.7.तुलनात्मक अध्ययन की कठिनाइयाँ (Difficulties of comparative politics studies)

- तुलनात्मक पद्धति अभी 'प्रवाह की स्थिति' में है। यह निर्णायक या अंतिम स्थिति में नहीं पहुंच पाया है। अतएव, इसके रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ पायी जाती है। तुलना करने के लिए अनेक बातों की आवश्यकता पड़ती है।
- दूसरी समस्या की ओर संकेत करते हुए सरटोरी ने लिखा है कि जब तक वृहत स्तर पर कुछ ऐसे प्रत्ययों का निर्माण नहीं हो जिनके बारे में अधिक से अधिक जानकारी हो और जो तुलनीय हो, तब तक राजनीति में तुलनात्मकता संभव नहीं है। इसके लिए तुलना के विषयों में समानता का कुछ न कुछ अंश आवश्यक है और उनके बारे में अध्ययनकर्ता को पूरी जानकारी होनी चाहिए।
- तीसरी समस्या विभिन्न राष्ट्रों की संस्कृतियों के अध्ययन और विदेशी भाषाओं के प्रयोग के सम्बन्ध में पैदा होता है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए विभिन्न राष्ट्रों की सुकृतियों और विदेशी भाषाओं की जानकारी

जरूरी है। किसी भी शोधकर्त्ता के लिए सभी भाषाओं की जानकारी प्राप्त करना संभव नहीं है और ना तो विभिन्न देशों की संस्कृति के बारे में सही और पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना ही संभव है।

- चौथी कठिनाई आँकडे जमा करने और राजीतिशारत्र में वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से सम्बधित है। मनुष्य का स्वभाव उसका व्यवहार, उसके क्रियाकलाप और उसकी संस्थाओं की प्रकृति इतनी जटिल, व्यापक परिवर्तनशील है कि उसके बारे में पूरे आँकडे जमा कर लेना आसान नहीं है।

इन कठिनाइयों के बावजूद राजनीतिशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन काफी लोकप्रिय हो गया है। दिन-प्रतिदिन इसकी कमियों को दूर किया जा रहा है और इसे अधिक से अधिक पूर्ण बनाने की कोशिश की जा रही है।

1.3.8.तुलनात्मक राजनीति का महत्व(Importance of Comparative Politics) तुलनात्मक राजनीति, राजनीति विज्ञान का नया तत्व नहीं है। इसका अध्ययन भी उस समय से होता आ रहा है, जब से राजनीति व राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन आरम्भ हुआ। तुलनात्मक अध्ययन प्रारम्भ से ही मानव के ध्यान का केन्द्र रहा है। अरस्तु से लेकर आज तक तुलनात्मक अध्ययन का काफी प्रचलन बढ़ा है। आज राजनीतिक व्यवहार को तुलनात्मक आधार पर समझने के लिए नए नए दृष्टिकोण का उपागम विकसित हो रहे हैं। तुलनात्मक अध्ययन या राजनीति का महत्त्व इन बातों से दृष्टिगोचर होता है:-

- **राजनीतिक व्यवहार को समझना (Understanding political behavior)**-तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन देश-विदेश की राजनीति व राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक होता है। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन द्वारा विभिन्न राजनीतिक प्रक्रियाओं की समानताओं व असमानताओं का ज्ञान कराता है। इससे राजनीतिक घटनाचक्रों का भी ज्ञान होता है। तुलनात्मक अध्ययन राजनीतिक अभिजनों को भी महत्वपूर्ण जानकारी देता है। इसी के आधार पर वे राजनीतिक व्यवहारों व दृष्टिकोणों की जाँच-परख करके उनकी प्रासंगिकता जांचते हैं। तुलनात्मक अध्ययन राजनेताओं के लिए मार्गदर्शक का कार्य करता है। इसके द्वारा वे जनता के लिए योग्य सुझाव प्रस्तुत करते हैं और बदलते राजनीतिक व्यवहार के मानकों की जानकारी भी ग्रहण करते हैं। उदाहरण के लिए-राजनेता मतदान व्यवहार के विभिन्न तत्वों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष तुलनात्मक आधार पर ही निकाल सकते हैं कि मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में सबसे अधिक भूमिका किस तत्व की है। तुलनात्मक राजनीति का महत्व विद्यार्थी, शिक्षक व नागरिकों के साथ-साथ जनसाधारण के लिए भी होता है। इससे हम यह भली-भाँति जान सकते हैं कि

विभिन्न राजनीतिक समाज के लोगों का राजनीतिक व्यवहार परस्पर अलग क्यों होता है, उसके मूल्य और विधियां कौन सी हैं, जो वे एक दूसरे को समझने के लिए प्रयोग करते हैं। इसके द्वारा राजनीतिक व्यवहार की जटिलताओं को सरलता से समझा जा सकता है। मैक्रीडिस तथा वार्ड के अनुसार, तुलनात्मक राजनीति एक ऐसा मार्गदर्शक है जो घर बैठे-बिठाए ही देश-विदेश की सैर करा देता है। इस द्वारा इस बात का पता आसानी से लगाया जा सकता है कि एक ही प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था एक समाज में सफल तथा दूसरे में असफल क्यों होती है ? लोकतन्त्र का सफल संचालन भारत में क्यों हो रहा है, पाकिस्तान में क्यों नहीं। चीन में साम्यवाद सफल है-रूस में असफल क्यों हुआ। इस प्रकार के राजनीतिक प्रश्नों का हल तलाश करने के लिए तुलनात्मक अध्ययन ही उपयोगी रहता है। राजनीतिक व्यवहार की जटिलताओं को समझे बिना इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए जा सकते।

- **राजनीति को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करना(Giving a scientific form to politics)-**अरस्तु के समय से ही तुलनात्मक अध्ययन द्वारा राजनीति के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। 1955 के बाद व्यवहारवादी क्रान्ति ने राजनीति को तुलनात्मक आधार पर एक विज्ञान का रूप देने का प्रयास किया है। व्यवहारवादियों ने राजनीतिक व्यवहार की निरन्तरताओं या नियमितताओं का पता लगाकर सामान्यीकरण के आधार पर सिद्धान्त विकसित करने के प्रयास किए हैं, क्योंकि यहीं सामान्यीकरण वैज्ञानिकता का आधार है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही राजनीतिक व्यवहार की नियमितताओं का पता लगाकर उनके कारणों का भी पता लगाया जा सकता है। इस तरह व्यवहारवादियों के प्रयासों से ही आज राजनीति विज्ञान राजनीति का विज्ञान बनने की ओर अग्रसर है।
- **राजनीति में सिद्धान्त निर्माण(Theory building in politics)-**तुलनात्मक अऋध्ययन द्वारा राजनीतिक व्यवहार की नियमितताओं का पता चलने से सिद्धान्त निर्माण करना आसान हो जाता है। राजनीति शास्त्र में ऐसे सिद्धान्तों की तलाश की जा रही है जो सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिक व्यवहार को समझने में सहायक हों। तुलनात्मक राजनीति आनुमाविक सिद्धान्तों तक पहुंचने में सहायता करती है। ये आनुभाविक सिद्धान्त ही राजनीतिक व्यवहार के वास्तविक तथ्यों को समझने में मदद करते हैं। इसमें राजनीति शास्त्री स्वयं तथ्यों का संकलन करने के लिए राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र में जाकर राजनीतिक व्यवहार का अवलोकन करता है। आदश्री सिद्धान्त की कल्पना पर आधारित होने के कारण सिद्धान्त

निर्माण ठोस तथ्यों के अभाव में नहीं हो सकता। इसलिए आनुभाविक सिद्धान्त ही राजनीतिक वास्तविकताओं से सीधा सम्बन्ध रखता है। इसी कारण से तुलनात्मक राजनीति आदश्री सिद्धान्तों की बजाय आनुभाविक सिद्धान्तों के अधिक समीप होती है। यथार्थ राजनीतिक व्यवहार की तुलना करना ही आनुभाविक सिद्धान्तों का निर्माण करना है। इस तरह तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का महत्व राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में सिद्धान्त निर्माण में है।

- **प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता परखना(To test the authenticity of prevalent political theories)**-तुलनात्मक अध्ययन द्वारा राजनीतिक सिद्धान्तों का पुनः परीक्षण करके, उनकी प्रामाणिकता की जांच की जा सकती है। प्रचलित सिद्धान्तों या अतीत में स्थापित सिद्धान्तों की समसामयिक प्रासांगिकता की जाँच तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही की जा सकती है। तुलनात्मक राजनीति राजनीतिक सिद्धान्तों की जांच-परख के लिए नवीन उपकरण व तकनीक उपलब्ध कराती है। किसी भी शास्त्र में परम सिद्धान्त नहीं हो सकते, इसलिए राजनीतिक सिद्धान्त भी परम सिद्धान्त नहीं हो सकते। मानव व्यवहार एक परिवर्तनशील वस्तु है। इसलिए मानव व्यवहार पर आधारिक राजनीतिक सिद्धान्तों की बदलती परिस्थितियों में जांच करना आवश्यक हो जाता है। इस कार्य में तुलनात्मक राजनीति ही सहायक होती है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही यह निष्कर्ष निकाला हा सकता है कि प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्त वर्तमान सन्दर्भ में कितने प्रासंगिक हैं या कितने अप्रासंगिक। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलनात्मक अध्ययन से हम अपने देश की संस्थाओं को अधिक गहराई से समझकर उपस्थित समस्याओं का निराकरण कर सकते हैं। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा छात्रों, शिक्षकों, राजनीतिक विद्वानों सभी को उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। इसके द्वारा हम अपने देश की शासन पद्धति का दूसरे देशों की शा ासन-पद्धतियों से तुलनात्मक अध्ययन करके उपयोगी निष्कर्ष निकाल सकते हैं। इससे राजनीतिक व्यवहार को समझने, राजनीति-शास्त्र को विज्ञान बनाने, आनुभाविक अध्ययनों के आधार पर सिद्धान्त निर्माण करने तथा प्रचलित सिद्धान्तों की औचित्यता व प्रामाणिकता जांचने में सहायता मिलती है। आज की लोक कल्याणकारी राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक व्यवहार के बारे में सामान्य नियमों का निर्धारण करना बहुत आवश्यक हो गया हैं ताकि सामान्य राजनीतिक सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके और राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व का गुण प्रदान किया जा सके।

1.4. पाठ के आगे का मुख्य भाग (Further main body of the text)

1.4.1.तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए दृष्टिकोण (Approach to the study of comparative politics)

जैसे-जैसे राजनीतिक व्यवस्थाएं जटिल बनती गई, वैसे-वैसे तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के सामने नई चुनौतियां उभरने लगी तथा समयानुसार अध्ययन के तरीकों व तुलना के उपकरणों मे परिवर्तन आता गया। द्वितीय विश्व युद्ध तक तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन परम्परागत तरीकों पर आधारित रहा और उसके बाद यह व्यवहारवादी क्रान्ति का आगमन के साथ ही आधुनिक बन गया। इसी आधार पर तुलनात्मक राजनीति में परम्परागत व आधुनिक उपागर्मी का आविष्कार हुआ। जहाँ परम्परागत उपागम हमें तुलनात्मक राजनीति के ऐतिहासिक, कानूनी और संस्थात्मक पक्षों को गहराई से समझने की मदद करता है।

(I).परम्परागत उपागम (Traditional Approaches)

(II).आधुनिक उपागम (Modern approach)

(I). परम्परागत दृष्टिकोण या उपागम (Traditional Approaches)

व्यवहारवादी क्रान्ति से पूर्व सरकार तथा राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन को ही परम्परागत अध्ययन कहा जाता है। प्रायः अरस्तु को ही परम्परागत दृष्टिकोण का जनक मान लिया जाता है

(अ). परम्परागत उपागम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

- **अतुलनात्मक(incomparable):-** तुलनात्मक अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोण में अनेक देशों की संविधानिक व्यवस्थाओं की व्याख्या की गई है। एक देश की राजनीतिक संस्था को आधार मानकर दूसरे देशों में अध्ययन करना किसी भी दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो सकता। परम्परागत दृष्टिकोण के समर्थक किसी भी लेखक ने विभिन्न राजनीतिक प्रणालियों में चुनाव करने और उनमें सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। इस दृष्टिकोण के द्वारा राज्य के ढांचे का विश्लेषण, प्रभुसत्ता निवास, चुनाव प्रणाली आदि का अतुलनात्मक अध्ययन ही किया जा सकता है। अतः परम्परागत दृष्टिकोण प्रमुखतः अतुलनात्मक ही है, तुलनात्मक नहीं।

- **वर्णनात्मक (Descriptive):-**परम्परागत दृष्टिकोण के लेखकों द्वारा लिखित रचनाएं केवल राजनीतिक संस्थाओं के वर्णन तथा व्याख्या तक ही सीमित है। इस दृष्टिकोण में लेखकों ने विभिन्न राज्यों के संविधानों की विस्तृत व्याख्या तो की है लेकिन उनमें समानताओं अथवा असमानताओं के लिए उत्तरदायी तत्वों व परिस्थितियों का अध्ययन नहीं किया। इन विद्वानों ने ऐतिहासिक और कानूनी पद्धति का प्रयोग करके राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तथा विकास की परिस्थितियों का गहन अध्ययन नहीं करके केवल शासन के संगठन तथा कार्यों के वर्णन पर ही अधिक ध्यान दिया। इस दृष्टिकोण में न तो वैज्ञानिकता न ही सामान्यीकरण के कोई प्रयास किए गए हैं। अतः परम्परागत दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक या व्याख्यात्मक है, विश्लेषणात्मक नहीं।
- **सीमित या संकुचित दृष्टिकोण (Parochial Approach):-** इस उपागम से सम्बन्धित लेखकों ने विदेशी सरकारों का अध्ययन केवल यूरोप और अमेरिका तक ही सीमित रखा। अधिकांश विद्वानों ने अपने मन में यह धारणा बनाए रखी कि प्रजातन्त्र तो केवल यूरोप में ही सम्भव है। इसी गलत धारणा के कारण ये विचारक कोई सामान्य सिद्धान्त विकसित नहीं कर पाए। अतः प्रजातन्त्र तो केवल यूरोप में ही सम्भव है। इसी गलत धारणा के कारण ये विचारक कोई सामान्य सिद्धान्त विकसित नहीं कर पाए। अतः प्रजातन्त्र के प्रति पूर्वाग्रह की भावना के कारण इन विद्वानों ने अपश्चिमी, औपनिवेशिक, अविकसित तथा अप्रजातान्त्रिक व्यवस्थाओं की उपेक्षा की ओर परम्परागत दृष्टिकोण सीमित या संकुचित ही रखा।
- **प्रबन्धातमक-**तुलनात्मक शासन व राजनीति पर लिखे गये अधिकतर रचनाएं परम्परागत उपागम के दौरान निबन्ध रूप में ही लिखी गई है। ये रचनाएं किसी राजनीतिक व्यवस्था की सरंनाओं या संस्था विशेष तक ही सीमित रही। इसलिए प्रबन्धात्मक होने के कारण ये अध्ययन किसी राजनीतिक व्यवस्था के अराजनीतिक तत्वों को नहीं देख सके।
- **स्थिर या गतिहीन (Static)**-परम्परागत दृष्टिकोण मे राजनीतिक संस्थाओं का कानूनों व ऐतिहासिक दृष्टि से ही अध्ययन करने के प्रयास हुए हैं। इसने राजनीतिक संस्थाओं की कार्यप्रणाली और राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्वों - दबाव समूहों, चुनाव, जनमत आदि की उपेक्षा की है। वास्तव में राजनीतिक व्यवहार के गैर-राजनीतिक तत्व ही तुलनात्मक विश्लेषण का उपयोगी आधार होते हैं। इनके बिना किसी भी उपयोगी निष्कर्ष व सामान्यकरण तक पहुंचना कठिन कार्य है। गतिशील कारकों का

अध्ययन किए बिना राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास को समझना असम्भव है। इससे स्पष्ट है कि परिवर्तनशील परिस्थितियों को समझे बिना सिद्धान्त निर्माण का काम कभी भी फलदायी नहीं हो सकता। अतः परम्परागत दृष्टिकोण मुख्यतः स्थिर व गतिहीन ही रहा।

- **मुख्यतः औपचारिक-संस्थागत अध्ययन (Primarily Legalistic Institutional Study**)- परम्परागत दृष्टिकोण का सम्बन्ध मुख्य रूप् से औपचारिक संस्थाओं तक ही रहा। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत यह जानने का किसी भी विद्वान ने प्रयास नहीं किया कि राजनीतिक संस्थाओं का वास्तविक व्यवहार कैसा है।
- **मुख्यतःअवैज्ञानिक अध्ययन (Primarily Unscientific Study)-**परम्परागत सिद्धान्त व दृष्टिकोण के विचारकों ने पद्धति विज्ञान की आवश्यकताओं तथा सत्यापनीयता को ध्यान में रखकर नहीं लिखा है। न उसमें तथ्य संग्रह तथा उनकी तकनीक ध्यान दिया गया है और न प्राक्कल्पनाओं के निर्माण एवं परीक्षण पर। अतः परम्परागत दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है।
- **मुख्यतःआदर्श या मानकीय अध्ययन (Primarily Normative Study)-**परम्परागत विश्लेषण के विद्वानों ने शासन के सर्वश्रेष्ठ प्रकार की स्थापना के प्रयास किए हैं। इन विद्वानों ने अपनीमान्यताओं व पूर्व धारणाओं के आधार पर ही राजनीतिक संस्थाओं का वर्णन किया है और इन्हीं मान्यताओं व पूर्वधारणाओं की कसौटी पर राजनीतिक व्यवस्थाओं को परखा है।
- **विशेष समस्या पर आधारित अध्ययन (Study based on Specific Problem)-** इस दृष्टिकोण के विचारकों व विद्वानों ने अपनी रचनाओं में देश-विशेष की विशेष समस्या या समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

(आ).परम्परागत दृष्टिकोण का महत्व (Importance of Traditional Approaches)- इस दृष्टिकोण ने लम्बे समय तक राजनीतिक संस्थाओं का कानूनी-औपचारिक अध्ययन करके राजनीति के अध्ययन को नई दिशा प्रदान की है। जब तुलनात्मक अध्ययन अपनीप्रारम्भिक अवस्था में था और उसका कानूनी और ऐतिहासिक पद्धति के अलावा अध्ययन करने का कोई अन्य विकल्प नहीं था तो इस दृष्टिकोण ने अपना उत्तरदायित्व बखूबी निभाया है। आज तुलनात्मक अध्ययन जिस उसमें परम्परागत दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आधुनिक दृष्टिकोण में जिन तथ्यों का प्रयोग होता है, वे परम्परागत दृष्टिकोण के रास्ते से

होकर ही यहां तक पहुंचे हैं। राजनीतिक व्यवहार की जटिलताओं का प्रारम्भिक हल परम्परागत दृष्टिकोण के सैद्धान्तिक प्रयासों में ही ढूंढा जा सकता है। परम्परागत दृष्टिकोण ने राजनीति-विज्ञान के क्षेत्र में जिन प्रवृत्तियों का विकास किया था, आज वे ही तुलनात्मक अध्ययन का आधार बनी हुई है। अतः परम्परागत दृष्टिकोण ने ही आधुनिक दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण तथ्य सामग्री व सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया है।

(इ).प्रमुख परम्परागत दृष्टिकोण या उपागम (TheMajorTraditional Approaches)- तुलनात्मक अध्ययन के परम्परागत उपागमों में ऐतिहासिक, कानूनी-औपचारिक, संरचात्मक को ही प्रमुख माना है।

(I).ऐतिहासिक दृष्टिकोण (Historical Approach)-राजनीति-विज्ञान में ऐतिहासिक उपागम एक अत्यन्त प्राचीन, मान्य व महत्वपूर्ण उपागम माना जाता है। इस उपागम के अन्तर्गत राज्यों की शासन प्रणालियों का ऐतिहासिक आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस उपागम का प्रयोग अरस्तु, मैकियावेली, मान्टेस्क्यू, हीगल, मार्क्स, मैक्स वेबर, वालटर बेजहॉट तथा सर हेनरी जेन आदि राजनीतिक विचारकों व दार्शनिकों ने किया है। किसी भी देश की राजनीतिक संस्कृति की जड़ें इतिहास के गर्भ में पोषित होती हैं। उसका वर्तमान स्वरूप ही उसके अतीत का सुन्दर इतिहास समेटे हुए होता है। इसलिए उनके वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए उनके अस्तित्व में आने तथा विकास सम्बन्धी कारणों, उनका दूसरों पर तथा उन पर दूसरों के पड़ने वाले प्रभाव को जानना अपरिहार्य है। उन्हीं के भूतकालीन स्वरूप से ही न्यूनाधिक रूप से आधुनिक राजनीति प्रभावित रहती है। इसी कारण इतिहास को राजनीति की जड़ और राजनीति को इतिहास का फल कहा जाता है। इस तरह राजनीति को इतिहास द्वारा अथवा अतीत के सन्दर्भ में समझना ही इतिहासवादी या ऐतिहासिक उपागम कहलाता है। ऐतिहासिक उपागम के अन्तर्गत भूतकाल में घटित महत्वपूर्ण तथ्यों और घटनाओं का विश्लेषण किया जाता है। यह उपागम मूल्य निरपंक्ष रहकर विभिन्न संस्थाओं, ऐतिहासिक चरित्रों, सभाओं, प्रक्रियाओं और मूल्यों का चित्रण करता है। समकालीन सन्दर्भ में अनुभवमूलक पद्धति का प्रयोग करके तुलनात्मक राजनीति के अन्तर्गत जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनकी पुष्टि के लिये यह उपागम काफी सहायक सिद्ध होता है। गिलक्राइस्ट ने कहा है - " इतिहास न केवल संस्थाओं की व्याख्या करता है, बल्कि यह भविष्य के पथ-प्रदर्शन हेतु निष्कर्ष प्राप्त करने में भी सहायक होता है। यह वह धुरी है, जिसके चारों और राजनीति-विज्ञान की आगमनात्मक और निगमनात्मक दोनों ही प्रक्रियाएं कार्य करती हैं।" इसी कारण आधुनिक समय में तुलनात्मक अध्ययन के लिए इसको काफी महत्व दिया जाता है।

ऐतिहासिक उपागम की आलोचना (Criticisms of Historical Approach) विद्वानों का मानना है कि इतिहासवादिता के साथ नाता रखने के कारण ही राजनीतिक सिद्धान्त युगानुकूल एवं भविष्यदर्शी मूल्यों के पुननिर्माण में असफल रहा और उसका पतन हो गया। यह उपागम मूल्य-निरपेक्ष होने की दुहाई देता है, लेकिन किसी न किसी रूप में इतिहासवेता के व्यक्तिनिष्ठ परिप्रेक्ष्य से प्रभावित भी होता रहता है। इसलिए ऐतिहासिक उपागम का मूल्य-निरपेक्षता का दावा बिल्कुल गलत है।

(II).कानूनी-औपचारिक उपागम (Legal-Formal Approach)इस उपागम के अन्तर्गत राजनीति के अध्ययन को किसी देश में प्रचलित संविधान के आधार पर वहां की शासन-प्रणालियों के संगठनात्मक ढांचे, शासन के अंगों की कानूनी शक्तियों और उनके परस्पर सम्बन्धों के आधार पर ही समझा जाता है। यह उपागम राजनीति-विज्ञान को संविधान, कानूनी संहिता व विधि के रूप में ही देखता है। इसके अन्तर्गत कानूनी आधार पर ही संस्थाओं का पृथक्करण किया जाता है। इस उपागम का प्रयोग करते समय राजनीतिक-वैज्ञानिकों को यह स्वतन्त्रता रहती है कि कानूनी व्यवस्था का विश्लेषण करने के साथ-साथ किसी घटना या राजनीतिक संस्था का भी कानूनी अध्ययन कर सकते हैं। इस उपागम के अन्तर्गत न्यायिक संस्थाओं के संगठन, अधिकारक्षेत्र और स्वतन्त्रता जैसे विषय आवश्यक तौर पर राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्रियों की चिन्ता का विषय बन जाते हैं।

कानूनी-औपचारिक उपागम का महत्व (Importance of Legal-Formal Approach) विधि का शासन, न्यायपालिका की सर्वोच्चता आदि के अध्ययन के रूप में यह उपागम बराबर महत्व देता रहा है। किसी देश का संविधान ही वहां की राजनीति का औपचारिक ढांचा पेश करता है। इसलिए संविधानों के निर्माण, संशोधन और व्याख्या के क्षेत्र में यह उपागम बहुत महत्व रखता है। सरकार के तीनों अंगों की शक्तियां, उनके पारम्परिक सम्बन्ध आदि सभी बातें कानून का ही विषय है। अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि किसी देश की राजनीति का कानूनी तरीके से अध्ययन इसी दृष्टिकोण की मदद से ही सम्भव है क्योंकि संविधान ही किसी देश का सर्वोच्च कानून होता है और इसी बात को यह उपागम प्रमुखता देता है। **कानूनी-औपचारिक उपागम की आलोचना(Criticisms of Legal-Formal Approach)-** इसका परिप्रेक्ष्य अत्यन्त संकीर्ण है, क्योंकि यह दृष्टिकोण लोगों को जीवन के केवल कानूनी पहलू का ही अध्ययन करता है,

राजनीतिक जीवन के समस्त व्यवहार का नहीं। यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था को कानूनी दृष्टि से ही देखकर एक पक्षीय विचार का पोषण करता है।

(III).संस्थागत उपागम (Institutional Approach)

इस उपागम का मुख्य गुण यह है कि समान शासन प्रणाली वाले देशों के शासकीय अंगों की तुलना करके उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त करने में यह उपागम काफी महत्वपूर्ण रहता है। इस उपागम की मदद से वर्तमान संस्थाओं के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकता है। यद्यपि इस उपागम के प्रयोग करने में कुछ जटिलताएं अवश्य आती हैं, लेकिन यदि उन समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित कर दिया जाये तो यह उपागम राजनीतिक संस्थाओं के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर सकता है।

संस्थागत उपागम की आलोचना (Criticisms of Institutional Approach) %& आलोचकों का कहना है कि यह दृष्टिकोण किसी देश की राजनीतिक मनोदशा का सही चित्रण नहीं कर सकता। यह उपागम मुक्त समाजों के लिए तो ठीक हो सकता है, लेकिन कठोर राजनीतिक नियन्त्रण वाले समाजों में नहीं। जहां जनसहभागिता का सीमित दायरा दो और नागरिक स्वतन्त्रताओं और अधिकारों को कर्तव्यों के रूप में देखा जाता हो, वहां यह दृष्टिकोण काम नहीं कर सकता। राजनीतिक अस्थिरता वाले देशों की राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन भी इसकी मदद से कारगार सिद्ध नहीं हो सकता। अन्य उपागमों की तरह इस उपागम की भी यह आलोचना की जाती है कि यह बहुत संकीर्ण है। यह व्यक्तियों की अनदेखी कर देता है जो राजनीतिक व्यवस्था की औपचारिक और अनौपचारिक संस्थाओं व उप-संस्थाओं का निर्माण एवं उनका संचालन करते हैं। लेकिन आधुनिक समय में इस उपागम ने अनौपचारिक संस्थाओं को भी अपने अध्ययन की परिधि में लाकर अपने को उन दोनों से मुक्त करने का प्रयास किया है जो इस पर लगते आ रहे थे। आज इस उपागम में सरकार के तीनों अंगों व अन्य औपचारिक राजनीतिक संस्थाओं के साथ-साथ राजनीतिक दलों, दबाव व हित समूहों, सम्भ्रान्त वर्ग आदि का भी अध्ययन किया जाता है। अतः संस्थागत उपागम दिन-प्रतिदिन तुलनात्मक राजनीति व राजनीति विज्ञान दोनों के लिए महत्वपूर्ण बनता जा रहा है लेकिन फिर भी इसे आधुनिक उपागम की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

(II)) आधुनिक उपागम या दृष्टिकोण (Modern Approaches)

ऑमण्ड व पावेल ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उत्पन्न जटिल राजनीतिक व्यवहार के घटनाक्रम का विश्लेषण किया और उसने बताया कि आधुनिक उपागमों को अपनाए जाने के पीछे तीन प्रमुख कारण हैं:- (i) एशिया, अफ्रीका तथा मध्यपूर्व में नए प्रभुसत्तासम्पन्न राष्ट्रों का उदय (ii) अटलांटिक समुदाय के राष्ट्रों का अन्त और अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति व प्रभाव का उपनिवेशों व अर्द्ध-उपनिवेशी क्षेत्रों में प्रसार व विस्तार तथा (iii) साम्यवाद का राष्ट्रीय राजनीति व्यवस्था की सरंचना व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बदलने के संघर्ष में एक शक्तिशाली प्रतियोगी के रूप में उभरना। इन बदली हुई परिस्थितियों को समझने में परम्परागत दृष्टिकोण अधिक उपयोगी नहीं रहा और तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को अधिक वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए नवीन उपागमों की आवश्यकता अनुभव हुई। विश्व में सैनिक शासनों, साम्यवादी व पूंजीवादी विचारधाराओं ने परम्परागत दृष्टिकोण को चुनौती देकर उसे अनावश्यक बना दिया। अब तुलनात्मक अध्ययन के लिए गैर-राजनीतिक तत्वों- हित व दबाव समूहों, मतदान व्यवहार, लोकमत आदि तथा गैर-लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं और गैर-पाश्चात्य देशों की राज-व्यवस्थाओं को भी आवश्यक समझा जाने लगा। इसी प्रवृति के चलते आधुनिक उपागमों का विकास हुआ।

(अ). आधुनिक उपागम या दृष्टिकोण की विशेषताएं (Features of Moder Approaches)- आधुनिक उपागम की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

- **विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक(Analytical and Explanatory)-**आधुनिक दृष्टिकोण परम्परागत दृष्टिकोण की तरह वर्णनात्मक न होकर व्याख्यात्मक है। इन विचारकों ने औपचारिक संस्थाओं की बजाय राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा मनुष्यों के राजनीतिक व्यवहार के विश्लेषण पर ही अधिक जोर दिया है। इन विद्वानों ने जो अवधारणाएं प्रस्तुत की हैं उनके आधार पर ही कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण करके उनको सत्य सिद्ध करने के लिए परीक्षण किए जाते हैं, आंकड़े एकत्रित किए जाते हैं और उनका विश्लेषण करके सामान्यीकरण किए जाते हैं।
- **अनुभववादी (Empirical)-**आधुनिक उपागम के अन्तर्गत राजनीतिक विद्वानों ने कुछ ऐसी अवधारणाएं विकसित की हैं कि उनके आधार पर राजनीतिक व्यवहार का अनुभवात्मक विश्लेषण किया जा सकता है।

- **वैज्ञानिक व व्यवस्थित अध्ययन(Scientific and Systematic Study)**-आधुनिक उपागम के अन्तर्गत प्रत्येक राजनीतिक घटना के कारणों पर व्यापकता से विचार विमर्श किया जा सकता है। इसमें इस बात पर जोर दिया जाता है कि राजनीतिक व्यवहार ऐसा क्यों होता है। इसलिए इसमें कार्य-कारण और क्रिया-प्रक्रिया का सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। इसमें सामान्यीकरण की तह तक पहुंचने के लिए परिकल्पनाओं का निर्माण करके, उनकी सत्यता जांचने के लिए तथ्यों व आंकड़ों का संग्रह किया जाता है और उनका विश्लेषण करके सामान्यीकरण के लिए तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इसके लिए व्यवस्थित रूप में आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है।
- **आधुनिक दृष्टिकोण का क्षेत्र व्याप्क है (Scope of Modern Approach is Extensive)**-आधुनिक दृष्टिकोण के अनतर्गत राज्य व सरकार के औपचारिक संगठनों के साथ-साथ उन सभी अनौपचारिक तत्वों व अनौपचारिक संगठनों का भी अध्ययन किया जाता है जो राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार को प्रभावित करते हैं।
- **अन्तर्विषेयक अध्ययन (Inter-Disciplinary Study)**- राजनीतिक क्रियाओं पर सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक तत्वों व परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी कारण आधुनिक उपयोंग के विद्वानों ने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि समाज विद्वानों से काफी कुछ ग्रहण किया है। आज तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य सामाजिक विद्वानों की पद्धतियों का खुला प्रयोग हो रहा है। इसी कारण तुलनात्मक राजनीति अन्तर-अनुशासनात्मक अध्ययन पद्धति की तरफ अग्रसर है।
- **व्यवस्थामूलक अध्ययन(System-Oriented Study)**-आधुनिक दृष्टिकोण संविधानतन्त्र की अपेक्षा सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को ही अपने अध्ययन का केन्द्र बनाता है। इसमें व्यवस्था को ही आधार मानकर राजनीतिक प्रक्रियाओं और संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इस दृष्टिकोण के विद्वान राजनीतिक व्यवस्था के मूल में राज्य सत्ता, शक्ति का एकाधिकार तथा शक्ति-तन्त्र को ही व्यवस्था की शक्ति मानते हैं। इन्हीं शक्तियों के आधार पर ही कोई भी राजनैतिक व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं से भिन्न होती है और इसी से राजनीतिक व्यवस्था की वैधता की परीक्षा होती है। इसी आधार पर ही राज-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण किया जाता है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं की समानताओं व असमानताओं को समझने में मदद करता है। इसी से तुलनात्मक अध्ययन को गति व दिशा मिलती है।

- **सरंचनात्मक कार्यात्मक अध्ययन पर जोर (Emphasis on Structural Functional Study)-** आधुनिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन उसकी सरंचना व प्रकार्यों के सन्दर्भ में ही किया जाता है। इसमें गहरा सम्बन्ध होता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्थाएं निरंकुश व सर्वसत्ताधिकारवादी व्यवस्थाओं से संरचना में ही भिन्न होती है। इसी कारण उनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति में भी अन्तर आ जाता है। इसलिए आधुनिक दृष्टिकोण में राजनीतिक संस्थाओं व उनके व्यवहार की वास्तविक प्रकृति को जानने के लिए संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक अध्ययन पर जोर दिया जाता है।
- **सामाजिक सन्दर्भी अनुष्ठित अध्ययन पर जोर (Emphasis on Social Context-Oriented Study)-**आधुनिक दृष्टिकोण राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं के प्रति भी संवेदनशील है। इसलिए यह राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन सामाजिक शक्तियों की अन्तर्क्रिया के साथ मिलाकर ही करता है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि राजनीतिक व्यवहार सामाजिक क्रियाओं, रीति-रिवाजों और परम्पराओं पर ही आधारित होता है। राजनीतिक संस्थाओं का कार्य संचालन भी सामाजिक शक्तियों से अवश्य प्रभावित होता है। इसी कारण तुलनात्मक राजनीति अन्तर-अनुशासनात्मक दिशा में आगे बढ़ रही है और सामाजिक सन्दर्भी अनुष्ठित अध्ययन को बल मिल रहा है।
- आधुनिक उपागम ने तुलनात्मक अध्ययन को जो व्यवस्थित व वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है, वह उसका महत्वपूर्ण योगदान है। इसी उपागम ने राजनीतिक व्यवहार के निर्धारक गैर-राजनीतिक तत्वों को भी तुलनात्मक अध्ययन में शामिल करके सामान्य सिद्धान्त निर्माण की दिशा में उन्नति की है। इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयुक्त नवीन अध्ययन विधियों व अवधारणाओं ने तुलनात्मक राजनीति को व्यापक आधार प्रदान किया है। इसउपागम के आगमन से तुलनात्मक राजनीति को परम्परागत उपागम की कमियों से छुटकारा मिला है।

(आ).प्रमुख आधुनिक उपागम (The Major Moder Approaches)

तुलनात्मक राजनीति के प्रमुख आधुनिक उपागम निम्नलिखित हैं:-

(I). व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण

(II). सरंचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण

(III). मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण

(I) व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण (System Analysis Approach)-

राजनीति विज्ञान में इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम प्रयोग डेविड ईस्टन ने किया। ईस्टन ने अपने इस सिद्धान्त को जिस पुस्तक में प्रतिपादित किया है। ईस्टन ने अपने इस सिद्धान्त को 'व्यवस्था ' की अवधारणा पर आधारित किया और बाद में इसी आधार पर आगत-निर्गत उपागम का विकास किया। इस सिद्धान्त के आगमन से तुलनात्मक राजनीति को न केवल वैज्ञानिक बनाने में सहायता मिली बल्कि राजनीतिक व्यवहार के बारे में मध्य-स्तरीय सिद्धान्तों के निर्माण का मार्ग अवश्य प्रशस्त हुआ। राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण राजनीतिक व्यवस्था की धारणा पर आधारित है। कुछ विद्वानों ने 'व्यवस्था' शब्द के स्थान पर पद्धति या प्रणाली शब्दों का भी प्रयोग किया है। राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण के आगमन से पहले राजनीतिक व्यवस्था का सीमित अर्थो में ही प्रयोग होता था। इसके लिए राष्ट्र, सरकार या राज्य जैसे शब्दों का प्रचलन था। लेकिन इस सिद्धान्त के आगमन से अब शासन की संरचनाओं, राजनीतिक प्रक्रियाओं, गैर-राजनीतिक तत्वों - राजनीतिक दलों, लोकमत, दबाव व हित समूह आदि का अलग-अलग अध्ययन न करके सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता है।

(अ).राजनीतिक व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Political System)

राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त की संकल्पना से सम्बन्धित है। सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त विभिन्न व्यवस्थाओं में कुछ मौलिक समानताएं तलाश कर अपना आधार कायम करता है। यद्यपि कई बार सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त और व्यवस्था विश्लेषण को एक ही मान लिया जाता है, लेकिन दोनों में परस्पर सम्बन्ध होते हुए भी अन्तर है। सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त से निकलने के बाद भी यह सामाजिक विज्ञानों के लिए बहुत विस्तृत व महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसमें प्रयुक्त 'व्यवस्था' शब्द विशिष्टता का बोध कराता है और एक राजनीतिक व्यवस्था को दूसरे से पृथक करता है। यहां 'व्यवस्था' उस अवस्था का बोध कराती है जिसमें अलग-अलग प्रकार की अन्तःक्रियाएं घटित होती हैं। राजनीतिक व्यवस्था को सर्वप्रथम डेविड ईस्टन ने ही परिभाषित करने का प्रयास किया है। राजनीतिक व्यवस्था स्वयं मे परिपूर्ण सत्ता है जो इस वातावरण या

परिवेश, जिसमें यह घिरी हुई होती है और जिसके अन्तर्गत यह परिचालित होती है, स्पष्ट तौर पर अलग रहती है। ऑमण्ड व पॉविल ने राजनीतिक व्यवस्था को परिभाषित करते हुए लिखा है - ''राजनीतिक व्यवस्था से इसके अंगों की अन्तनिर्भरता और इसके पर्यावरण में किसी न किसी प्रकार की सीमा का बोध होता है।''

राजनीतिक व्यवस्था के बारे में दी गई परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि राजनीतिक व्यवस्था का सम्बन्ध न्यायसंगत शारीरिक उत्पीड़न से है। ऑमण्ड व पावेल के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था को केवल सरकार के तीनों अंगों का ही बोध नहीं कराती बल्कि इसमें समस्त प्रकार की संरचनाएं शामिल होती हैं। ऑमण्ड व पावेल की दृष्टि में न्यायसंगत शक्ति ही वह डोर है जो राजनीतिक व्यवस्था को सम्पूर्ण ताने बाने में बांधे रहती है। राजनीतिक व्यवस्था को एक ऐसी उपव्यवस्था माना जा सकता है जिसके सारे भाग आपस में एक माला की तरह गुंधे हुए हैं। यह पर्यावरण से प्रभावित भी होती है, लेकिन फिर भी उसकी दास नहीं होती। यह प्रत्येक स्वतन्त्र समाज के कार्यों की वह व्यवस्था है जो शक्ति के न्यायसंगत प्रयोग द्वारा समाज में कानून व्यवस्था बनाए रखने तथा समाज को बदलने की शक्ति रखती है।

(ब). राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताएं (Features of Political Systems)

- **राजनीतिक स्त्रोतों का असमान वितरण (Uneven Control of Political Resources)-** राजनीतिक स्त्रोत वह साधन है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। धन, भोजन, शक्ति की धमकी, सामाजिक स्तर, विधि-निर्माण के अधिकार, मताधिकार आदि ऐसे ही स्त्रोत हैं। इन सभी स्त्रोतों का प्रत्येक राजनीतिक समाज में असमान वितरण होता है।
- **राजनीतिक प्रभाव की खोज (The Quest for Political Influence)-**प्रत्येक व्यक्ति की सदैव यह इच्छा रहती है कि उसका समाज में राजनीतिक प्रभाव बढे। इसलिए वह अपनीस्वार्थपूर्ति के लिए सरकारी नीतियों, नियमों और निर्णयों को प्रभावित करने के प्रयास करता रहता है।
- **राजनीतिक प्रभाव का असमान वितरण (Uneven Distribution of Political Influence)-**लोगों के पास राजनीतिक संसाधनों की मात्रा भिन्न होने के कारण राजनीतिक प्रभाव का वितरण भी असमान हो जाता है। जिस व्यक्ति की राजनीति के प्रति रूचि अधिक होती है और उसके पास पर्याप्त आर्थिक साधन होते हैं तो उसका राजनीतिक प्रभाव अवश्य ही अन्य से अधिक होता है।

- **संघर्षपूर्ण उद्देश्यों का हल (Resolution of Conflicting Aims)**-प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने लोगों के उद्देश्यों व हितों में संतुलन कायम रखने का प्रयास करती है ताकि वह स्वयं को संघर्ष तथा अराजकता की स्थिति से बचा सके। इसके लिये वह समाज की मांगों में अधिकाधिक संतुलन पैदा करने के लिए न्यायपूर्ण वितरण व्यवस्था कायम करती है और यदि आवश्यकता पड़े तो बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग भी करती है।
- **औचित्यपूर्णता की प्राप्ति (The Acquisition of Legitimacy)**-प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपनीनीतियों व निर्णयों को वैधता प्रदान करने के लिए परस्पर विरोधी हितों में सामंजस्य पैदा करती है और आवश्यकता पड़ने पर शक्ति का न्यायपूर्ण प्रयोग भी करती है। दण्ड-शक्ति का भय या कर्त्तव्य पालन ही औचित्यपूर्णता का आधार होता है।
- **विचारधारा का विकास (The Development of Ideology)**-प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने कार्यों के प्रति जनता का विश्वास प्राप्त करने तथा जनता में विश्वास पैदा करने के लिये अपने विचारधारा रूपी शस्त्र का प्रयोग करते हैं। यह विचारधारा ही वह विचारधारा है जो राजनीतिक व्यवस्था को सम्पूर्ण रूप में बांधे रखता है। कोई भी देश और कोई भी समाज आज एक दूसरे से अपरिचित और अप्रभावित नहीं है। आज अन्तर्राष्ट्रवाद की भावना का विकास होना एक आम बात है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था दूसरी व्यवस्थाओं से प्रभावित भी होती है और उन्हें प्रभावित भी करती है।

(II) सरंचनात्मक कार्यात्मक द्दष्टिकोण (Structural-Functional Approach)

व्यवस्था विश्लेषण की कमियों पर विचार करके आमण्ड ने अपना संरचनात्मक प्रकार्यात्मक मॉडल तैयार किया। इसे विकसित करने में पारसन्स, मर्टन तथा लेदी ने भी अपना योगदान दिया है। राजनीति विज्ञान में इसका सर्वप्रथम बार प्रयोग आमण्ड एवं कालमैन ने विकासशील देशों की राजनीति का अध्ययन करने के लिए किया। ऑमण्ड का यह उपागम असमान विशेषताओं वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करने में भी सहायक है। इस उपागम में ऑमण्ड ने उन कृत्यों की पहचान की है जो समाज-व्यवस्था को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस द्दष्टिकोण के आगमन से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक व्यवस्था को अधिक स्पष्ट रूप से समझना आसान हो गया और राजनीतिक व्यवस्था की अन्तर्वस्तु ने उनके कार्यात्मक

पक्ष को अलग करके देखा जाने लगा। इस उपागम ने समाज को सम्पूर्ण रूप में देखकर सामान्य सिद्धान्त का निर्माण करने की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है और तुलनात्मक राजनीति की नई दिशा मिली है।

(अ). संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक (Structural-Functional)

सरंचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण के अन्तर्गत दो प्रत्यय या संकल्पनाएं निहित हैं। इसमें एक संकल्पना सरंचना की है और दूसरी प्रकार्य को। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों को सम्पादित करने वाली व्यवस्था ही संरचना कहलाती है। संरचना को प्रकार्यों के आधार पर ही परिभाषित किया जा सकता है। ऑमण्ड ने स्पष्ट किया है कि प्रत्येक संगठन संरचना नहीं हो सकता। जो संगठन नियमित रूप से प्रकार्यों को सम्पादित करता है, वही संरचना हो सकता है। ऑमण्ड के रूप से प्रकार्यों को सम्पादित करता है, वही संरचना हो सकता है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को बनाए रखने व उसे विकसित करने के लिए प्रकार्य का होना अनिवार्य है। तुलनात्मक राजनीति में प्रकार्य उसी क्रिया प्रतिमान को ही कहा जाता है जो राजनीतिक व्यवस्था का अनुरक्षक हो, उसे विकसित करने वाला हो तथा नियमितता का गुण भी रखता है।

(ब).संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की व्याख्या (Explanation of Structural-Functional Approach)

ऑमण्ड तथा कोलमैन ने इस उपागम की विस्तृत व्याख्या करते समय सबसे पहले व्यवस्था की धारणा को स्पष्ट किया है। व्यवस्था से उनका अर्थ है- सीमाओं के साथ अन्योन्याश्रय तथा व्याप्कता के लक्षणों से युक्त अन्तर्क्रियाओं का विशेष सेट। ऑमण्ड तथा कोलमैन ने कहा है कि राजनीतिक व्यवस्था अनेक संरचनाओं से मिलकर बनती है और वह भिन्न-भिन्न कार्य करती है। राजनीतिक व्यवस्था न्यूनाधिक रूप से समाज के अन्तर्गत एक औचित्यपूर्ण, सुव्यवस्था सन्धारक या रूपान्तरकारी व्यवस्था होती है जो अपना कार्य औचित्यपूर्ण भौतिक दबावों के माध्यम से करती है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक गतिविधियों के संचालन के लिए एक अलग ढांचा होता है। यह ढांचा या संरचना एक गतिशील मशीन की तरह कार्य करता है। इस ढांचे के अनेक अंग-प्रत्यंग होते हैं जो अपने-अपने कार्यों का निष्पादन करके व्यवस्था रूपी मशीन को गतिशील बनाए रखते हैं। जिस तरह शरीर रूपी मशीन को संचालित करने में शरीर के अंग अपना योगदान देते हैं, उसी तरह सामूहिक अन्तनिर्भरता के आधार पर भी कार्य करके संरचनात्मक ढांचे को गति प्रदान करते हैं।

यह संगठनात्मक, मशीन की अपने अलग-अलग अंगों को आगत सम्बन्धी कार्य सौंपकर उन्हें निर्गतों के रूप में पूरा करती है।

(स).संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण की विशेषताएं (Features of Structural Functional Approach)

राजनीतिक व्यवस्था का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक आधार पर समझा जाए तो इस उपागम की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं-

विश्लेषण की इकाई के रूप में यह दृष्टिकोण सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है।

यह दृष्टिकोण राजनीतिक व्यवस्था के अनुरक्षण (Maintenance) के लिए व्यवस्था की संरचनाओं द्वारा कुछ कार्यों व विकायों का होना अनिवार्य मानता है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं की विभिन्न संरचनाओं के कार्यों में अन्तनिर्भरता पाई जाती है। इसलिए यह संरचनाओं को प्रकार्यों के सन्दर्भ में ही परिभाषित करता है।

इस दृष्टिकोण में संरचनात्मक स्थानापन्नता को स्वीकार किया जाता है। ऑमण्ड का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्था में सांस्कृतिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं। इसलिए एक समान कार्यों के निष्पादन के लिए समान संरचनाओं का होना आवश्यक नहीं है।

यह दृष्टिकोण विकार्य को भी प्रकार्यों के समान ही महत्व देता है। ऑमण्ड का मानना है कि विशेष परिस्थितियों में निकाय प्रकार्य की जगह लेकर व्यवस्था का अनुरक्षण कर सकता है।

(III) मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण (Marxist-Leninist Approach)

पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्रस्तुत संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल तथा व्यवस्था विश्लेषण दृष्टिकोण साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले देशों की राजनीति का तुलनात्मक अध्ययन नहीं कर सकते। विश्व में साम्यवाद के बढते दौर से राजनीतिक विशेषकों ेक सामने सबसे प्रमुख समस्या यही रही है कि साम्यवादी व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए कौन सा उपागम अपनाया जाए क्योंकि इन देशों में राजनीतिक नेताओं, राजनीतिक दलों और समूहों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाएं पाश्चात्य राजनीतिक व्यवस्थाओं से भिन्न है। इसी समस्या से

निजात पाने के लिए मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम का जन्म हुआ। स्टीफेन तथा कलार्कसन ने मार्क्स व लेनिन के सिद्धानतों को ही आधार बनाकर इस उपागम का विकास किया।

(अ). मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारणा का अर्थ (Meaning of Concept of Marxist-Leninist)

मार्क्सवादी-लेनिनवादी धारणा मार्क्स और लेनिन के विचारों पर आधारित है। दोनो के विचार द्वन्द्ववाद पर आधारित है। दोनों का मानना है कि समाज के विकास में द्वन्द्ववादी शक्तियों की प्रमुख भूमिका होती है। इनका मानना है कि प्रत्येक युग की व्यवस्था के निर्माण में उत्पादन शक्तियों का विशेष हाथ रहा है। वर्ग-संघर्ष का प्रत्यय एक स्थाई प्रत्यय है। इसके आधार पर किसी भी युग की कैसी भी व्यवस्था का विश्लेषण किया जा सकता है। मार्क्स का विचार था कि समस्त ऐतिहासिक घटनाओं पर आर्थिक घटनाओं का ही प्रभाव पड़ता है। समस्त सामाजिक ढांचा आर्थिक ढांचे के अनुसार ही बदलता रहता है। समस्त ऐतिहासिक घटनाएं भौतिकवादी परिस्थितियों के ही निष्कर्ष हैं। समाज में हर युग में दो विरोधी वर्ग रहे हैं। कभी ये वर्ग दास और स्वामी, कभी अमीर-गरीब, कभी शोषक-पोषित, कभी पूंजीपति और श्रमिक के रूप आर्थिक सम्बन्धों के नियामक रहे हैं। जिस वर्ग के पास आर्थिक शक्ति रही है, उसने सदैव दूसरे का शोषण किया है इस व्यवस्था में राज्य भी एक वर्ग है जो पूंजीपतियों या साधन सम्पन्न व्यक्तियों के हितों का पोषक है। राज्य कोई स्थायी संस्था नहीं है। मार्क्सवादी क्रान्ति के सफल हो जाने पर वर्ग विहीन समाज की स्थापना के बाद राज्य समाप्त हो जाएगा। इसका अस्तित्व संक्रमणकालीन दौर में ही रहेगा। जब पूंजीवादी वर्ग का सर्वहारा वर्ग नाश कर देगा और उत्पादन के साधनों पर अपना वर्चस्व कायम कर लेगा तो राज्य अनावश्यक हो जाएगा। उस समय राज्य का स्थान ऐसे समुदाय ले लेंगे जो व्यक्तियों द्वारा स्वतन्त्रता और स्वेच्छा से बनाए जायेंगे। ऐसी व्यवस्था प्रत्येक पूंजीवादी देश में स्थापित हो जाएगी। लेनिन ने भी मार्क्स के विचारों से सहमति दिखाते हुए अपने साम्यवादी सिद्धान्तों के अन्त मंे वर्ग-संघर्ष द्वारा समाजवाद की स्थापना की बात स्वीकार की है। उसने कहा है कि राज्य का स्वरूप चाहे कैसा भी हो, वह वर्ह संघर्ष का अस्तित्व ही प्रकट करता है।

(ब).मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की व्याख्या(Explanation of Marxist-Leninist Approach)

यह दृष्टिकोण ऐतिहासिक गभ्यात्मकता तथा सामाजिक प्रासंगिकता में विश्वास रखता है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि औपचारिक संरचनाओं व संस्थाओं के द्वारा राजनीतिक प्रक्रियाओं को आधार मिलता है कि सामाजिक विज्ञानों का अन्तःशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करना चाहिए ताकि तुलनात्मक अध्ययन को

उपयोगी बनाया जा सके। समर्थकों का दावा है कि राज्यशक्ति, वर्ग, उद्योगों आदि की धारणाएं आज भी वहीं है जो सैंकड़ों वर्ष पहले थी। इन धारणाओं का विकासशील देशों की धारणाओं से भी साम्य है। आज मार्क्सवादी.लेनिनवादी दृष्टिकोण में जो प्रत्यय व अवधारणाएं प्रयुक्त होती हैं, वे विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या करने में सक्षम हैं।

मार्क्सवादी विचारक राजनीति को कोई स्वतन्त्र गतिविधि न मानकर उसे आर्थिक गतिविधियों से जुड़ी हुई मानते हैं। इस दृष्टिकोण का मानना है कि समाज के सभी सदस्य अपने हित साधन के उद्देश्य से ही नागरिक समाज का गठन करते हैं। नागरिक समाज उनके स्वार्थों को पूरा कर सकता है। नागरिक समाज की उत्पादन शक्तियां ही राजनीतिक जीवन की नियामक होती हैं। इसी कारण सभी समाजों की राजनीति में मौलिक अन्तर आ जाता है और अलग-अलग संरचनाएं व उप-संरचनाएं जन्म लेने लगी हैं। इसलिए राज्य की औपचारिक संस्थाओं और संरचनाओं का अध्ययन ही उपयुक्त रहता है। इसलिए अलग-अलग प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं व संरचनाओं के राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए समग्रवादी दृष्टिकोण ही अपनाया जाना चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण ही है, क्योंकि इसकी अवधारणाएं, मान्यताएं, प्रविवियाएं व प्रत्यय स्थाई हैं। इस दृष्टिकोण द्वारा किसी भी युग की किसी भी प्रकार की व्यवस्था का सयमवादी अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन में शक्ति के आर्थिक पहलू को ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिए क्योंकि यही राजनीतिक गतिविधियों के संचालन का आधार है **(I) (स).मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण की विशेषताएंCharacteristics of Marxist-Leninist Approach)**

यह दृष्टिकोण तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

- **प्रत्ययी स्थायित्व (The Conceptional Stability)** %& इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयुक्त प्रत्यय व अवधारणाएं शाश्वत महत्व की हैं। इस दृष्टिकोण द्वारा प्रयुक्त राज्य, सरकार, वर्ग-संघर्ष आदि प्रत्ययों का आज भी वही अर्थ जो सैंकड़ों वर्ष पहले था। इस प्रत्ययी स्थायित्व के कारण राजनीतिक व्यवस्थाओं की ऐतिहासिक व सामसामयिक दोनों आधारों पर तुलना करना आसान हो जाता है और प्रत्ययों को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे शोध के सामान्य व विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी रहती है। इससे अध्ययन में सरलता का गुण पैदा हो जाता है।

- **संघटित या समग्रवादी पद्धति (Integrated or Wholistic Methodology)-** इस दृष्टिकोण में समग्रवादी पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसमें निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए सभी परिवादों और तत्वों का ध्यान रखना व उनको शामिल करना आवश्यक है।
- **ऐतिहासिम गत्यात्मकता पर आधारित (Based on Historical Dynamicism)**-इस दृष्टिकोण में ऐतिहासिक विकास की प्रेरक शक्तियों को विशेष महत्व दिया है। इस दृष्टिकोण में मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष की अवधारणा द्वारा समाजों की गत्यात्मकता को समझने पर बल दिया है। अतः यह उपागम ऐतिहासिक दृष्टि से गत्यात्मकता पर आधारित है।
- **सामाजिक दृष्टि से प्रासांगिक दृष्टिकोण (Socially relevant Approach)-**यह दृष्टिकोण आदर्शवादिता से दूर रहकर ठोस सामाजिक समस्याओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का ध्येय केवल सिद्धान्त निर्माण करना ही नहीं था, बल्कि उन्होंने एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया है जो सामाजिक उपयोगिता रखता हो। इस दृष्टिकोण का सामाजिक समस्याओं से गहरा सम्बन्ध है। समाज में विद्यमान आर्थिक असमानता पर दृष्टि डालना इसका प्रमुख लक्ष्य है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण एक विहंगतम दृष्टिकोण है। यह अध्ययन के यथार्थवादी रूप पर जोर देता है। इसका प्रमुख जोर व्यवहारिक ज्ञान पर है और यह विकासशील देशों की राज-व्यवस्थाओं का अस्थायित्व के दौर में भी विश्लेषण करने में सक्षम है।

(द). मार्क्सवादी लेनिनवादी दृष्टिकोण का महत्व (Importance of Marxist-Leninist Approach)

इस दृष्टिकोण का महत्व निम्न कारणों से है:-

इस दृष्टिकोण द्वारा राजनीतिक व्यवस्था की गत्यात्मक शक्तियों को समझना आसान है। प्रत्ययी स्थायित्व के कारण यह दृष्टिकोण किसी भी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को समझने में सक्षम है। प्रत्ययी स्थायित्व के कारण संकल्पनाओं की जटिलता व अर्थ-विभिन्नता की समस्या स्वतः ही दूर हो जाती है। यह दृष्टिकोण समग्रवादी अध्ययन पर जोर देता है। राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं पर एक साथ दृष्टि रखने में यह दृष्टिकोण समर्थ है। विकासशील देशों की परिवर्तनशील राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करने में इस दृष्टिकोण की विहंगम दृष्टिकोण बहुत लाभदायक है। यह दृष्टिकोण इतिहास की दृष्टि से एक गत्यात्मक दृष्टिकोण है। यह इतिहास की व्याख्या द्वारा अतीत के साथ साथ भावी विकास की अवस्था को समझने में भी

सक्षम है। अन्तः शास्त्रीय अध्ययनों पर बल देने के कारण यह दृष्टिकोण अध्ययन को यथार्थवादी और व्यावहारिक बनाने में मदद करता है। यह उपागम आदर्शी सिद्धान्तों के निर्माण की बजाय ठोस सामाजिक समस्याओं को समझने व स्पष्ट करने में मदद करता है।

(य).मार्क्सवादी लेनिनवादी दृष्टिकोण की आलोचना (Criticisms of Marxist Leninist Approach)

इसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं:-

- यह सब राजनीतिक घटनाओं को समान समझने की भारी भूल करके तुलनात्मक अध्ययन को अनुपयोगी ही बनाता है। यह दृष्टिकोण सभी प्रकार की समस्याओं के लिए एक जैसी प्रविधियों के प्रयोग की अनुमति देता है। जबकि अलग समस्या के लिए अलग प्रविधि की ही आवश्यकता पड़ती है।
- यह दृष्टिकोण राजनीतिक प्रक्रियाओं और सरंचनाओं को एक साथ मिलाकर अध्ययन पर जोर देता है। लेकिन वास्तव में राजनीतिक प्रक्रियाएं और सामाजिक संरचनाएं परस्पर इतनी उलझी हुई होती हैं कि समष्टि स्तर के अध्ययन सार्थक नहीं हो सकते।
- यह दृष्टिकोण सिद्धान्त निर्माण की तो चिन्ता करता है, लेकिन उसकी परिशुद्धता का ध्यान नहीं रखता।
- इस दृष्टिकोण में प्रयुक्त वर्ग की अवधारणा को परिभाषित करना कठिन कार्य है। वर्ग की अवधारणा बहुत व्यापक है
- यह दृष्टिकोण विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं की बजाय विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करता है जबकि विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएं विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओ की तुलना में अधिक जटिल व उलझी हुई होती हैं। इनका अध्ययन करना एक कठिन कार्य है।
- यह दृष्टिकोण पद्धतियों की अपेक्षा उद्देश्यों को अधिक महत्व देता है। जबकि पद्धतियों का राजनीतिक विश्लेषण में सख्ती से पालन किए बिना संकलित तथ्यो ंकी विश्वसनीयता की कोई गारन्टी नहीं हो सकती।
- इस दृष्टिकोण में विरोधाभास के लक्षण हैंं। एक तरफ तो यह वर्ग संघर्ष को शाश्वत तत्व मानता है जबकि दूसरी तरफ वर्ग-विहीन समाज की स्थाना की बात भी करता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम एकपक्षीय व एकांगी है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इस उपागम का कोई महत्व नहीं है। इस विश्लेषण के आगमन से अधिकतर समाजों व राज्यों में हो रहे सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों को समझना सरल हुआ है। राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं पर ध्यान देने के कारण इसमें अन्तःशास्त्रीय अध्ययन को बढ़ावा दिया है। इतने ऐतिहासिक दृष्टि रखते हुए समाज के भावी रूप के विकास पर भी ध्यान केन्द्रित किया है। इस दृष्टिकोण ने राजनीति शास्त्र को तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में व्यवस्थित व वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। इस उपागम ने अस्थिर राजनीतिक वातावरण में भी कार्य करके कोई अपनी उपादेयता सिद्ध की है।

1.5. अपनी प्रगति जांचें (Check your progress)

(क). राजनीति के अध्ययन के लिए सबसे पुराना उपागम----।

(ख). ------इस धारणा पर ताल है कि राजनीतिक सिद्धांत का भण्डार, सामाजिक - आर्थिक परिस्थितियों और उनके द्वारा महान चिन्तकों के मनों पर छोड़ी गई फसलों में से आता है।

(ग). ----- लेखकों कई अमेरिकी और अंग्रेजों की रचनाओं में देखा जा सकता है।

(घ). राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन पर-------- लागू किया जाता है।

(ड़). राज्य को प्रमुख रूप से कानून बनाने और उसे लागू करने वाला संगठन में---- कहा गया ।

1.6. सारांश (Summary)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तुलनात्मक राजनीति तुलनात्मक सरकारों, गैर-शासकीय राजनीतिक संस्थाओं, कबीलों, समुदायों व उनकी प्रक्रियाओं व व्यवहारों का अध्ययन है। तुलनात्मक अध्ययन से तुलनात्मक राजनीति एक स्वतंत्र अनुशासन का स्थान प्राप्त कर चुकी है। यह राजनीति विज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा होने के बावजूद भी राजनीतिक संस्थाओं के साथ-साथ गैर-राजनीतिक संस्थाओं व उनके राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्वों का भी अध्ययन किया जाता है। यही तुलनात्मक राजनीति की वास्तविक प्रकृति है।तुलनात्मक राजनीति में न केवल विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं, उनके कार्यों का ही अध्ययन शामिल नहीं है, बल्कि इसमें गैर-राजकीय संस्थाओं के राजनीतिक कार्य व व्यवहार भी शामिल हैं।

आज तुलनात्मक राजनीति में शासन प्रणाली व उसके राजनीतिक व्यवहार के समान व असमान दोनों तत्व ही शामिल हैं। तुलनात्मक अध्ययन से हम अपने देश की संस्थाओं को अधिक गहराई से समझकर उपस्थित समस्याओं का निराकरण कर सकते हैं। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा छात्रों, शिक्षकों, राजनीतिक विद्वानों सभी को उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। इसके द्वारा हम अपने देश की शासन पद्धति का दूसरे देशों की शा ासन-पद्धतियों से तुलनात्मक अध्ययन करके उपयोगी निष्कर्ष निकाल सकते हैं। इससे राजनीतिक व्यवहार को समझने, राजनीति-शास्त्र को विज्ञान बनाने, आनुभाविक अध्ययनों के आधार पर सिद्धान्त निर्माण करने तथा प्रचलित सिद्धान्तों की औचित्यता व प्रामाणिकता जांचने में सहायता मिलती है। आज की लोक कल्याणकारी राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक व्यवहार के बारे में सामान्य नियमों का निर्धारण करना बहुत आवश्यक हो गया हैं ताकि सामान्य राजनीतिक सिद्धान्तों का निर्माण किया जा सके और राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व का गुण प्रदान किया जा सके।जैसे-जैसे राजनीतिक व्यवस्थाएं जटिल बनती गई, वैसे-वैसे तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के सामने नई चुनौतियां उभरने लगी तथा समयानुसार अध्ययन के तरीकों व तुलना के उपकरणों मे परिवर्तन आता गया। द्वितीय विश्व युद्ध तक तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन परम्परागत तरीकों पर आधारित रहा और उसके बाद यह व्यवहारवादी क्रान्ति का आगमन के साथ ही आधुनिक बन गया। इसी आधार पर तुलनात्मक राजनीति में परम्परागत व आधुनिक उपागर्मी का आविष्कार हुआ। जहाँ परम्परागत उपागम हमें तुलनात्मक राजनीति के ऐतिहासिक, कानूनी और संस्थात्मक पक्षों को गहराई से समझने की मदद करता है।

1-7 सूचक शब्द (Key Words)

- **सुव्यक्त-** सरलता से व्यक्त करने वाला ।
- **अव्यक्त -**जिसको व्यक्त न किया जा सके।
- **विकृत-** जिसका मूल स्वरूप बिगड़ कर खराब हो गया है।
- **तुलनात्मक-**कई वस्तुओं के गुणों की समानता और असमानता दिखानेवाला।
- **राजनीतिक समाजीकरण-**एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक मूल्यों तथा दृष्टिकोणों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।
- **उपागम -**किसी के कहीं से आकर पहुँचने की क्रिया या भाव ।

- **अंतःविषय -** अंतःविषय एक विशेषण है जो बताता है कि दो या दो से अधिक विषयों या ज्ञान की अन्य शाखाओं के लिए क्या सामान्य है । यह विषयों को जोड़ने की प्रक्रिया है

1.8. स्वयं मूल्यांकन हेतू प्रश्न (Self Assessment Questions)

- तुलनात्मक पद्धति और राजनीति के पारस्परिक सम्बंधों का विवेचन कीजिए ।
- तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के परम्परागत उपागमों का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए ।
- तुलनात्मक पद्धति की प्रकृति की व्याख्या कीजिए ।

1.9. अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answer- check your progress)

(क) दार्शनिक उपागम (ख) ऐतिहासिक उपागम (ग) कानूनी उपागम (घ) संस्थानिक उपागम (ड़) कानूनी उपागम

1.10. सन्दर्भ ग्रन्थध्निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।
- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ . बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज, अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी . गेना , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी . जौहरी , स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।
- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

Subject : Comparative Politics (Political Science)	
Course Code : POLS 301	Author **: Dr. Parveen sharma**
Lesson No. : 2	Vetter **:**
तुलनात्मक पद्धतियाँ (Comparative Methods)	

अध्याय की सरंचना

2.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

2.2.परिचय (Introduction)

2.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

2.3.1.पद्धति का अर्थ (Meaning of Method)

2.3.2.तुलनात्मक पद्धति का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of comparative method)

2.3.3.तुलनात्मक पद्धति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Comparative Method)

2.3.4.तुलनात्मक पद्धति की आवश्यकता (Necessity of the Comparative Method)

2.3.5.आधुनिक तुलनात्मक पद्धति का उदय (Origin of the Modern Comparative Method)

2.3.6.आधुनिक तुलनात्मक पद्धति की विशेषताएं (Characteristics of Modern Comparative Method)

2.3.7.तुलनात्मक पद्धति की अनिवार्य शर्ते-(Essential Prerequistes of the Comparative Method)

2.3.8.तुलनात्मक पद्धति का क्रियात्मक रूप (Operational View of the Comparative Method)

2.3.9.तुलनात्मक पद्धति का विषय- क्षेत्र (Scope of Comparative Method)

2.3.10.तुलनात्मक पद्धति की सीमाएं (Limitations of Comparative Method

2.3.11.सावधानियाँ (Precautions)

2.3.12.तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता (Utility of Comparative Method)

2.4.पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

2.4.1.तुलनात्मक विधि के प्रकार (Types of comparative method)

2.4.2.समाकलनात्मक चिंतन (Integrative thinking)

2.4.3.प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental methodology)

2.4.4.केस स्टडी (case study)

2.4.5.सांख्यिकीय पद्धति (Statistical Method)

2.4.6.ध्यान केंद्रित तुलनाएँ(Focused comparisons)

2.4.7.ऐतिहासिक पद्धति (Historical method)

2.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

2.6.सारांश (Summary)

2.7.सूचक शब्द (Key Words)

2.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

2.9.उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

2.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

2.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

विद्यार्थी इस अध्याय के अध्यन के पश्चात् -

- **तुलनात्मक पद्धति के सवरूप को जा पाएंगे।**
- **तुलनात्मक पद्धति के महत्व को जान पाएंगे।**
- **तुलनात्मक पद्धति की विशेषताओं ,कमियों को जान पाएंगे**
- **तुलनात्मक पद्धति की विभिन्न विधियों को जान पाएंगे।**

2.2.परिचय (Introduction)

तुलना करना करना मानव के स्वभाव में है उसके मस्तिष्क में दिन प्रतिदिन के जीवन दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए तुलना का कार्य चलता रहता। हम नेताओं, अधिकारियों, शिक्षकों, कर्मचारियों एवं मित्रों की तुलना कर उन्हें भला या बुरा, उचित या अनुचित, सफल या असफल, सक्षम और सक्षम ठहराते हैं। तुलनात्मक पद्धति का केवल यह अर्थ नहीं है कि इसमें कुछ घटनाओं की परसपरिक तुलना प्रस्तुत की जाती है लेकिन यह तुलना उद्देश्यात्मक होती है। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग प्राकृतिक और सामाजिक सभी विज्ञानों में किया जाता है। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, आर्थिक तथ्यों, जनसंख्या के आंकड़ों आदि की परस्पर तुलना करके विभिन्न प्रदेशों की आर्थिक समृद्धि जीवन स्तर जनसंख्या वृद्धि की दर वहां की प्रगति, विकास, खुशहाली और समृद्धि का पता लगाते हैं तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तुलनाओं के आधार पर राजनीतिक सिद्धांत का सृजन करना है। तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से विषय-सामग्री (Subject Matter) तथा तथ्यों एवं आंकड़ों (Facts and Figures) के आधार पर व्यवस्थित ढंग से निष्कर्ष निकाले जाते हैं। तुलनात्मक पद्धति के आधार पर विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करके सिद्धांतों का निर्माण किया जाता। है। । अतः तुलनात्मक पद्धति का तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में विशेष महत्व एवं स्थान है।

2.2.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

2.3.1.पद्धति का अर्थ (Meaning of Method)

पद्धति किसी वस्तु को सहजता से निष्पादित करने का एक उपयोगी, सहायक और शिक्षाप्रद तरीका है। एक परिघटना का अध्ययन करते समय पद्धति कार्य को करने की विधि को बताती है। परन्तु, पद्धति से संभवतः आरंभ में ही अपने अन्वेषण के अंतिम स्वरुप या परिणामों के बारे में जानकारी नहीं मिल सकती। पद्धति

अन्वेषण के लिए औजार 'अवधारणाएँ' और 'तकनीक उपलब्ध करवाती है । इन अवधारणाओं और तकनीकों का एक निश्चित परिघटना के बारे में अधिक जानकारी, समझ या व्याख्या के लिए, विशिष्ट तरीकों से प्रयोग करना होगा। इस प्रकार, ये कहा जा सकता है कि आंकडों के संबंध में विशिष्ट अवधारणाओं के प्रयोग करने के तरीकों का संगठन ही 'पद्धति है।

एक वैज्ञानिक अन्वेषण में पद्धति की परिशुद्धता और यथार्थता पर काफी बल दिया जाता है। परन्तु, अपनी विषय वस्तु की प्रकृति के कारण, समाजशास्त्रों को ऐसी पद्धतियों के बारे में सोचना पडता है जो प्रयोगशालाओं या अन्य नियंत्रित स्थितियों में हो रहे वैज्ञानिक परीक्षणों की परिशुद्धता के निकट आते हैं। सभी अध्ययनों में चिंतन, अन्वेषण और अनुसंधान में फिर भी एक पद्धति होती है। अपने अध्ययन के लिए विद्वानों द्वारा अनेक पद्धतियों-तुलनात्मक, ऐतिहासिक, प्रयोगात्मक साख्यिकीय इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग ज्ञान के सभी क्षेत्रों में भौतिक, मानवीय और सामाजिक परिघटना के अध्ययन के लिए किया जाता है। समाजशास्त्र, इतिहास, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान, साहित्य इत्यादि, इसका प्रयोग समान विश्वास के साथ करते हैं।

2.3.2.तुलनात्मक पद्धति का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of comparative method)

सरल शब्दों में, दो या अधिक चीजों की तुलना करने का कार्य है, जिसका उद्देश्य तुलना की जा रही एक या सभी चीजों के बारे में कुछ पता लगाना है। तुलनात्मक पद्धति के द्वारा एक ही समूह अथवा समाज में घटने वाली समान प्रकृति की सामाजिक घटनाओं या समस्याओं की परस्पर तुलना की जाती है। और उनकी समानता व असमानता को ज्ञात किया जाता है। एक ही समाज में विभिन्न समय मैं घटने वाली घटनाओं अथवा विभिन्न समाजों में विभिन्न स्थानों पर घटने वाली समान प्रकृति की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी इस विधि के द्वारा किया जाता है। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग समाजशास्त्र और मानव शास्त्र में अनेक विद्वानों ने किया है। सामाजिक और सांस्कृतिक मानव शास्त्रियों ने सामाजिक और सांस्कृतिक विकास को जानने के लिए इसका प्रयोग किया था। प्रारंभिक मानव शास्त्रियों में जिन्होंने की इस पद्धति का प्रयोग किया उनके नाम मार्गन, बेकोफन, टेगार्ट, हेनरीमैन, मैक्लीनन, टॉयलर, फ्रेजर, लेवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

विकासवादी समाज वैज्ञानिकों ने ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धति का साथ साथ प्रयोग किया। तुलनात्मक विधि के अर्थ को विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है :-

- **गार्नर के अनुसार** "तुलनात्मक पद्धति भूतकालीन तया आधुनिक राज्यों का अध्ययन करके निश्चित तथ्यों का संग्रह करती है, जिनका चयन करके, तुलना करके आवश्यक सामग्री को लेकर तथा अनावश्यक सामग्री को छोड़कर अन्वेषक राजनीतिक सिद्धांत की आदर्श व प्रगतिशील शक्तियों को ढूंढ़ निकालती है।"
- **अरेन्ड लिजफार्ट (Arend Lijphart) के मतानुसार** "तुलनात्मक पद्धति अन्य सभी परिवर्त्यों को स्थिर रखते हुए दो या दो से अधिक परिवर्त्यों के बीच आनुभाविक सम्बन्ध स्थापित करने की विधि है।"
- **आर्थरएल. कालबर्ग के अनुसार** "तुलनात्मक पद्धति मापन का एक रूप (Form of measure-ment) है।"
- **लासवैल तथा आमण्ड (Lasswell and Almond) के अनुसार** "तुलनात्मक पद्धति व वैज्ञानिक पद्धति एक समान है।"
- **"अगस्ट काम्टे"** ने समाज के विकास के विभिन्न चरणों की तुलना की। इन्होंने सामाजिक विकास के तीन स्तरों का नियम में कल्पनिक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्तरों का उल्लेख किया और इनकी तुलना भी की।
- **गिन्सबर्ग लिखते हैं—** "तुलनात्मक पद्धति का कार्य केवल कुछ घटनाओं की तुलना करना ही नहीं है, लेकिन तुलना के द्वारा उनकी व्याख्या करना भी है।"
- **हर्सकोविट्स का कहना है कि—** "तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले स्वरूपों की तुलना के द्वारा मानवीय संस्थाओं तथा विश्वासों के विकास पूर्ण क्रम को स्थापित किया जाता है।"
- **हरबर्ट स्पेंसर** ने समाजवाद सवयव की तुलना की और दोनों के बीच कई समानताएंओं का उल्लेख किया। इसी आधार पर इन्होंने समाज को एक सावयव कहा। उन्होंने विभिन्न समाजों की भी परस्पर तुलना की।

- **दुर्खीम** ने अपनी पुस्तक **"THE RULE OF SOCIYOLOGY MATHOD"** में इस पद्धति के महत्व को स्वीकार किया तथा उन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों में आत्महत्या की दर व कारणों का तुलनात्मक अध्ययन कर आत्महत्या का सामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत किया।

तुलनात्मक पद्धति के अर्थ का समुचित स्पष्टीकरण आर्थर एल. कालबर्ग, लासवैल तथा आमण्ड द्वारा प्रस्तुत परिभाषायें नहीं करतीं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि तुलनात्मक पद्धति मापन का एक यंत्र है जैसा कि कालबर्ग ने कहा है कि मापन में सदैव तुलनायें विद्यमान होती हैं, परन्तु मापन के आधार पर निष्कर्षों का निकालना अति कठिन है। उदाहरणार्थ इंग्लैंड में संसदीय लोकतंत्र सफल है जबकि पाकिस्तान, बांग्लादेश एवं श्रीलंका में असफल है। यद्यपि यह एक तुलनात्मक अध्ययन है परन्तु इससे संसदीय लोकतंत्र के भविष्य के सम्बन्ध में निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते और न ही सिद्धांत निर्माण संभव है। संक्षेप में तुलनात्मक पद्धति को मापन का एक प्रकार नहीं माना जा सकता। लासवेल तथा आमण्ड ने तुलनात्मक पद्धति एवं वैज्ञानिक पद्धति को एक समान मानि है। यह धारणा भी अनुचित है, क्योंकि तुलनात्मक पद्धति एवं वैज्ञानिक पद्धति में बिल्कुल विभिन्नता पाई जाती है। वैज्ञानिक पद्धति पर्यवेक्षण (Observation), वर्गीकरण (Classification) व आंकड़ों (Statistics) को व्यवस्था होती है। वैज्ञानिक पद्धति में 'तुलना' का होना अनिवार्य नहीं है जबकि तुलनात्मक पद्धति का केंद्र बिन्दु एवं आधार तुलना होती है। तुलनात्मक पद्धति के सम्बन्ध में उपरोक्त विवरण के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं:-

(i) तुलनात्मक पद्धति निश्चित रूप में तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन की एक पद्धति है।

(ii) तुलनात्मक पद्धति वैज्ञानिक पद्धतियों में से एक है, परन्तु इसको वैज्ञानिक पद्धति के समान मानना बिल्कुल गलत है।

(ii) तुलनात्मक पद्धति प्राविधिक प्रक्रिया अथवा तुलना का एक दृष्टिकोण न होकर तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन की पद्धति है।

(iv) तुलनात्मक पद्धति द्वारा परिवर्त्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की परख व खोज की जाती है।

(v) तुलनात्मक पद्धति कोई यांत्रिकी तुलनाएं (Mechanical Comparisons) नहीं है।

संक्षेप में तुलनात्मक पद्धति तुलना करने की विधि है। इसके प्रयोग के द्वारा राजनीति के सामान्य नियमों की खोज की जाती है। यह तभी संभव होता है जब दो या दो से अधिक प्रत्ययों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

2.3.3.तुलनात्मक पद्धति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Comparative Method) तुलनात्मक पद्धति का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक चिन्तन का इतिहास है। आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व यूनान के प्राचीन विद्वान एवं राजनीति विज्ञान के पिता अरस्तु (Aristotle) ने तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम किया। अरस्तु ने तत्कालीन 158 संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन करके विविध राजनीतिक व्यवस्थाओं की अच्छाइयों, बुराइयों, कमजोरियों एवं विशेषताओं को समझने का प्रयास किया तथा उनका वर्गीकरण किया। अरस्तु के पश्चात् सिसरो (Cicero), पोलिवियस (Polibius), मैकियावेली (Machiavelli), मांटेस्क्यू (Montesqueu), डी टाकविले (DeTocqueville), वेजहाट (Bagehot), सर हेनरी मेन (Sir Henary Maine), लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) इत्यादि अनेक विद्वानों ने तुलनात्मक प्रद्धति का प्रयोग करके राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशेषताओं, विभिन्नताओं एवं समानताओं का विश्लेषण किया परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् तुलनात्मक राजनीति का महत्त्व बढ़ने के कारण तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन का आधारभूत स्तम्भ माना जाने लगा।

2.3.4.तुलनात्मक पद्धति की आवश्यकता (Necessity of the Comparative Method)-तुलनात्मक पद्धति तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह तुलनात्मक राजनीति के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाले असंख्य प्रश्नों का समाधान करती है। तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन हेतु तुलनात्मक पद्धति के अनिवार्य होने के निम्नलिखित कारण हैं:

(i) तुलनात्मक पद्धति के द्वारा हमें विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति एवं विशेषताओं का ज्ञान होता है।

(ii) तुलनात्मक पद्धति की आवश्यकता का दूसरा मूल कारण यह है कि इससे हमें विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं अथवा उपसंरचनाओं के गुणों एवं दोषों को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

(iii) तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में गतिशीलता अथवा स्थिरता प्रदान करने वाले कारकों का ज्ञान होता है।

(iv) तुलनात्मक राजनीति के ज्ञान को अधिक वैज्ञानिक एवं यथार्थवादी बनाने के लिए तुलनात्मक पद्धति अनिवार्य है।

(v) राजनीतिक व्यवस्थाओं की कमजोरियों एवं दोपों को दूर करके उनमें सुधर लाने हेतु तुलनात्मक पद्धति का ज्ञान अनिवार्य है।

(vi) तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग राजनीतिक सिद्धांत निर्माण (Theory Building) के लिए अनिवार्य

संक्षेप में तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से राजनीतिक व्यवस्थाओं की कमजोरियों को दूर करके उन्हें अधिक श्रेष्ठतर बनाया जा सकता है।

2.3.5.आधुनिक तुलनात्मक पद्धति का उदय (Origin of the Modern Comparative Method)-

परम्परागत तुलनात्मक पद्धति की त्रुटियों के परिणामस्वरूप आधुनिक तुलनात्मक पद्धति का विकास हुआ । परम्परागत तुलनात्मक अध्ययन पश्चिमी यूरोपियन देशों की राजनीतिक संस्थाओं का औपचारिक, विधिक एवं रूपवादी अध्ययन है। इसमें गैर-पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं, राजनीतिक संस्थाओं एवं मनुष्य के राजनीतिक आचरण को प्रभावित करने वाले गैर-राजनीतिक गतिशील कारकों गैर-प्रजातांत्रिक देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन की अवहेलना की गई है। अतः आधुनिक तुलनात्मक पद्धति का उदय इन कमियों को दूर करने के लिए हुआ।

मैक्रीडिस तथा ब्रॉऊन (Macridis and Brown) का कहना है कि "यह नया दृष्टिकोण, जिसे हम आधुनिक दृष्टिकोण (Modern Approach) कहते हैं, परम्परागत पद्धति की सीमाओं को तोड़ चुका है।" उनके विचारानुसार दृष्टिकोण अधिक परीक्षण करने वाला और अधिक छानवीन करने वाला और अधिक सुव्यवस्थित है। इस नए दृष्टिकोण में हित-समूहों, राजनीतिक दलों आदि का विशेष अध्ययन किया जाता है। एक राजनीतिक व्यवस्था तभी जीवित रह सकती है जब वह अनिवार्य कार्य करती रहे। कार्यों का सम्पादन संस्थाओं में किया जाता है और ये संस्थाएं एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। राजनीतिक घटनाओं का अध्ययन भली प्रकार तभी हो सकता है जबकि ठीक ढंग से अध्ययन करें।

2.3.6.आधुनिक तुलनात्मक पद्धति की विशेषताएं (Characteristics of Modern Comparative Method)-

- आधुनिक तुलनात्मक पद्धति विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक है।
- इसमें राजनीतिक तथा गैर-राजनीतिक तत्त्वों का अध्ययन सम्मिलित है।
- इसमें राजनीतिक आचरण एवं इसको प्रभावित करने वाले गतिशील कारकों जैसे राजनीतिक दलों, बहती-समूहों, दबाव समूहों का अध्ययन भी किया जाता है।
- इसमें प्रजातांत्रिक एवं गैर-प्रजातांत्रिक दोनों ही प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन सम्मिलित है।
- इसमें पश्चिमी यूरोपियन देशों एवं तीसरी दुनिया के विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं अध्ययन भी शामिल है।
- आधुनिक तुलनात्मक पद्धति अनुभववादी (Empirical) है।
- आधुनिक तुलनात्मक पद्धति में परिकल्पनाओं (Hypothesis) का निर्माण किया जाता है तथा पर आंकड़ों का संग्रह एवं वर्गीकरण करके निष्कपं निकाले जाते हैं।
- आधुनिक तुलनात्मक पद्धति में तथ्यों एवं आंकड़ों को आदशों एवं नैतिक मूल्यों से बिल्कुल अलग-थलग रखा जाता है जबकि परम्परागत तुलनात्मक पद्धति में मूल्यों एवं नैतिक आदशों की प्रधानता थी।
- यह विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन सावयवी रूप में करती है।

2.3.7.तुलनात्मक पद्धति की अनिवार्य शर्ते-(Essential Prerequistes of the Comparative Method) तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की अनिवार्य शर्तों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

- **तुलना की समुचित इकाइयों का चयन (Selection of Proper Units of Comparison):**

  तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की प्रथम अनिवार्य शर्त यह है कि जिन इकाइयों की तुलना करनी है वे तुलना। योग्य होनी चाहिएं तथा उनका एक जैसा प्रत्ययी ढांचा (Conceptual frame work) होना चाहिए। तुल की इकाइयों में संपूर्ण समानता का होना अनिवार्य नहीं है। उनमें विभिन्नता एवं विचित्रता हो सकती है प प्रत्यय की दृष्टि से समानता होनी चाहिए। यदि प्रत्यय की दृष्टि से समानता नहीं होगी तो तुलना तो की सकती है, परन्तु निष्कर्ष निरर्थक होंगे और सृजनात्मक सिद्धांत निर्माण संभव नहीं होगा। उदाहरणार्थ यदि भार के सर्वोच्च न्यायालय की तुलना अमेरिकी राष्ट्रपति से की जाये तो ऐसा न ती संभव होगा और न ही उपयोगी इसी प्रकार यदि हम हरियाणा विधानसभा की तुलना अमेरिकी कांग्रेस से करें तो प्रत्ययी ढाँचे की

समानता। बावजूद भी अध्ययन निरर्थक एवं अनुपयोगी होगा। अतः इकाइयों का समुचित चयन तुलनात्मक, पद्धति के प्राथ के लिए अनिवार्य है। इकाइयां तुलनीय होनी चाहिए। भारत की संसद की ब्रिटिश संसद से भारत के प्रधान की तुलना ब्रिटिश प्रधनमंत्री से, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की तुलना अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय से कर तुलनीय इकाइयों के समुचित चयन के कतिपय उदाहरण हैं। इन इकाइयों में प्रत्ययी ढांचे की समानता में सम्बन पाया जाता है। ऐसा अध्ययन सार्थक, उपयोगी और सिद्धांत निर्माण में सहायक होता है।

- **तुलना की प्रत्ययी इकाइयों की परिभाषिता (Definitionally Conceptual Units Comparison):** तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते समय तुलना के लिए चयन की गई इकाइयों की परीक्षा करना अति अनिवार्य है। अन्य शब्दों में इस पद्धति का प्रयोग करते समय ऐसी प्रत्ययी इकाइयों का चयन कि जाना चाहिए जिनकी परिभाषा करना सरल है। तुलना की प्रत्ययी इकाइयों की परिभाषा सार्वभौमिक, सार्वदेशि एवं सार्वकालिक होनी चाहिए। परिभाषा के अभाव में दिशाई एकता (Directional unity) का अभाव रहे और सुनिश्चित निष्कर्ष निकालना असंभव होगा।
- **शोध के केंद्र की सुनिश्चितता (Definiteness of Focus of Enquiry):** तुलनात्मक पढ के प्रयोग की महत्त्वपूर्ण शर्तों में शोध सुनिश्चित होना चाहिए अर्थात् अध्ययन का उद्देश्य सुस्पष्ट एवं सुनिश्चि होना चाहिए। शोध के केंद्र की सुनिश्चितता आंकड़े तथा तथ्य इकट्ठे करने की प्रक्रिया को आसान बनाती तथा धन एवं समय की बचत में सहायक सिद्ध होती है।
- **प्रत्ययी इकाइयों की अनेकता की अनिवार्यता (Necessity of Many Cases of Cenceptua units):** तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते समय शोधार्थी को यह ध्यान रखना चाहिए कि तुलना की प्रत्य इकाइयां जितनी अधिक होंगी शोध उतना ही अधिक सार्थक एवं समुचित होगा।
- **तुलना की इकाइयों का वर्गीकरण (Classification of Units of Comparison):** कुल की इकाइयों का वर्गीकरण शोधार्थी के लिए उपयोगी होता है। वर्गीकरण के परिणामस्वरूप विषय क्षेत्र सुनिश्चितता तथा स्पष्टता आ जाती है और उसे सीमा में बाँधा जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि हमें दस राजनीति व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है, तो इनका वर्गीकरण लोकतंत्र तथा तानाशाही व्यवस्थाओं में कि जा सकता है। लोकतंत्र व्यवस्थाओं का वर्गीकरण आगे संसदीय व्यवस्था (Parliamentary System)

अध्यक्षात्मक व्यवस्था (Presidential System) अथवा इन दोनों का मिश्रित व्यवस्था (Mixed Syste में किया जा सकता है। इसी प्रकार एकात्मक एवं संघात्मक व्यवस्थाओं में भी वर्गीकरण किया जा सकता वर्गीकरण का आधार प्रशासनिक स्थिरता अथवा अस्थिरता को भी बनाया जा सकता है।

2.3.8.तुलनात्मक पद्धति का क्रियात्मक रूप (Operational View of the Comparative Method)-तुलनात्मक पद्धति की पूर्व शर्तों के आधार हम इसके व्यावहारिक स्वरूप अर्थात् क्रियात्मक स्वरूप अध्ययन कर सकते हैं। इकाइयों का चयन एवं वर्गीकरण करने के पश्चात् तुलना की इकाइयों के सम्बन्ध परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं (Hypothetical Propositions) की स्थापना होनी चाहिए। इन परिकल्पन की परख करने के लिए आंकड़ों तथा तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है। प्रस्थापनाओं का सत्यापन किया है और इन परिकल्पनात्मक प्रस्थापनाओं का सत्यापन नहीं हो पाता अथवा परख की कसीटी पर पूरी नहीं उनका परित्याग कर दिया जाता है अथवा शोधार्थी को उनमें संशोधन करना पड़ता है। तुलनात्मक पद्धति के क्रियात्मक रूप का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चरण तथा केंद्र बिन्दु सिद्धांत निर्माण (Theory Building) है। शोधार्थी के द्वारा तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् जो निष्कर्ष निकाले जाते २. उन्हें सिद्धांत कहते हैं, परन्तु इन पर समय, स्थान एवं विचारधारा का प्रभाव नहीं होना चाहिए ताकि ये प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था पर लागू हो सकें। सिद्धांतों के तीन प्रकार के होते हैं:

- विश्वव्यापी स्तरीय सिद्धांत
- मध्यस्तरीय सिद्धांत तथा
- निम्नस्तरीय सिद्धांत ।

2.3.9.तुलनात्मक पद्धति का विषय-क्षेत्र (Scope of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति के विषय क्षेत्र को सीमा में बांधना अत्यंत कठिन है। इसका विषय-क्षेत्र शोधार्थी के उद्देश्यों, साधनों एवं सामग्री की उपलब्धता पर भी निर्भर करता है। यदि शोधार्थी के पास समय तथा धन का अभाव न हो तो अध्ययन का विषय क्षेत्र व्यापक हो सकता है और यदि समय, धन एवं विषय सामग्री का अभाव है तो अध्ययन का विषय-क्षेत्र लघु स्तरीय हो सकता है। अतः तुलनात्मक पद्धति का विषय क्षेत्र दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- लघुस्तरीय या व्यष्टि स्तरीय (Micro Level)
- वृहत्स्तरीय या समष्टि स्तरीय (Macro Level)
- **लघु स्तरीय या व्यष्टि स्तरीय (Micro Level):** जब किसी राजनीतिक व्यवस्था की इकाई अथवा एक भाग अथवा एक उप-संरचना की तुलना एक अथवा एक से अधिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के भाग अथवा एक उप-संरचना अथवा एक इकाई से करें, तो ऐसा अध्ययन लघु स्तरीय अध्ययन कहलाता है। उदाहरणार्थ यदि भारतीय राज्य सभा की तुलना इंग्लैंड के लार्ड सदन तथा अमेरिकन सीनेट से करें तो यह लघु-स्तरीय अध्ययन कहा जायेगा।
- **बृहत् स्तरीय या समष्टि स्तरीय (Macro Level**): जब एक देश की संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था की तुलना किसी एक अथवा एक से अधिक देश की संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्थाओं से की जाये तो उसे हम वृहत्स्तरीय (अथवा समष्टि स्तरीयद्ध तुलना कहते हैं।लघुस्तरीय तथा वृहत्स्तरीय तुलनात्मक अध्ययन में विभाजन रेखा खींचना असंभव है। कोई अध्ययन लघुस्तरीय है अथवा बृहत्स्तरीय है यह अध्ययन की इकाई पर निर्भर करता है। यदि हम भारतीय संसद की तुलना इंग्लैंड की संसद तथा अमेरिकी कांग्रेस से करें तो संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन के मुकाबले में यह लघु स्तरीय अध्ययन है परंतु यदि हम भारतीय राज्यसभा की तुलना इंग्लैंड के लार्ड सदन तथा अमेरिकन सीनेट से करें तो पहले अध्ययन की अपेक्षाकृत यह लघुस्तरीय अध्ययन है और पहला तुलनात्मक अध्ययन जो संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था की तुलना की अपेक्षाकृत लघुस्तरीय है। वृहत्स्तरीय बन जाता है। लघुस्तरीय तथा बृहत्स्तरीय तुलनात्मक अध्ययन में मूलतः अन्तर अध्ययन की व्यापकता अथवा सीमितता की मात्रा पर निर्भर करता है। इनके शोध के चरणों में समानता होती है।

2.3.10.तुलनात्मक पद्धति की सीमाएं (Limitations of Comparative Method): तुलनात्मक पद्धति की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित हैं:-

- **तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य (Objectives of Comparative Study):** प्रत्येक तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य सिद्धांत निर्माण करना है। सिद्धांत निर्माण को तीन भागों (1) विश्व स्तरीय सिद्धांत निर्माण,(2) मध्यमार्गी सिद्धांत निर्माण तथा (3) निम्न स्तरीय सिद्धांत निर्माण में वर्गीकृत किया जाता है। यदि अध्ययन का उद्देश्य विश्व स्तरीय सिद्धांत का निर्माण करना है, तो अध्ययन वृहत्-स्तरीय होगा और यदि

सिद्धांत निर्माण का उद्देश्य निम्न स्तरीय सिद्धांत निर्माण करना है, तो अध्ययन लघु-स्तरीय होगा। अतः तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य तुलनात्मक अध्ययन के विषय-क्षेत्र को प्रभावित करता है।

- **शोधार्थी के साधन (Means with the Scholars**): तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की सीमाज में शोधार्थी के साधन भी सम्मिलित हैं। शोधार्थी के साधनों में व्यक्ति, धन एवं विषय-सामग्री (Man, Money and Material-Three 'M') आते हैं। यदि शोधार्थी के पास ये तीनों साधन पर्याप्त मात्रा में हैं, तो अध्ययर का विषय क्षेत्र बृहत्स्तरीय अथवा व्यापक स्तरीय हो सकता है। इन साधनों में एकता का होना भी अनिवार्य है।
- **समय की सीमा (Limitation of Time):** शोधार्थी के पास अध्ययन करने के लिए कितना समय है, यह तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग की सीमा है। यदि शोधार्थी के पास पर्याप्त समय है तो अध्ययन व्यापा स्तरीय एवं गहन हो सकता है और यदि समय का अभाव है तो अध्ययन का विषय क्षेत्र लघुस्तरीय होगा।
- **अध्ययन की प्रकृति (Nature of Study):** तुलनात्मक अध्ययन की प्रकृति भी इसकी सीमा क निर्धारित करती है। यदि अध्ययन की प्रकृक्ति सामान्य है तो अध्ययन सामान्य स्तरीय होगा और यदि अध्ययर की प्रकृति विशिष्ट है तो अध्ययन लघुस्तरीय होगा। अध्ययन जितना अधिक विशिष्ट होगा उतना ही अधिक गहन होगा।

2.3.11.सावधानियाँ(Precautions):तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते समय निम्न सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए :-

- **मनुष्य की परिवर्तनशील प्रकृक्ति (Changing Nature of Man**): मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा मनुष्य का स्वभाव परिवर्तनशील है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति एक जैसी परिस्थितियों में अलग-अलग अर्थात् विभिन्न प्रकार से व्यवहार करता है। चूंकि मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तनशीलता है, इसलिए समान परिस्थितियों में भी समान घटनाएं होना अनिवार्य नहीं है।
- **साधन एवं साध्य में एकता (Unity Between Means and Ends):** शोधार्थी को तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते समय साधन तथा साध्य में एकता की स्थापना करनी चाहिए ताकि निष्कर्ष सार्थक हो। यदि साधन और साध्य में एकता का अभाव होगा तो निष्कर्ष सार्थक नहीं होंगे और सिद्धांत निर्माण में सहायक सिद्ध नहीं होंगे।

- **परिवर्तनशीलू परिस्थितियों (Changing Circumstances):** परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यही कारण है कि राजनीतिक व्यवस्था के पर्यावरण में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते समय एक शोधार्थी को गतिशीलता को ध्यान में रखना चाहिए अन्यथा परिणाम सार्थक नहीं होंगे और निष्कर्य निरर्थक होंगे।
- **बाहरी समानताओं से सावधानी (Precautions from Outward Similarities):** तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते समय एक शोधार्थी को बाहरी समानताओं से सावधान रहना चाहिए। बाहरी समानतायें सदेव भ्रामक होती हैं। यदि बाहरी समानताओं का सावधानी से प्रयोग किया जाये तो मांतेस्क्यू की भांति सतहाँ समानताओं के चक्र में शोधार्थी फंस जाता है और उसके निष्कर्ष शुद्ध नहीं होते।

2.3.12.तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता (Utility of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता का वर्णन निम्नलिखित है:-

- राजनीतिक व्यवस्वाओं का ज्ञान (Knowledge about Different Political Systems): तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से हमें विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की जानकारी प्राप्त होती है। राजनीतिक व्यवस्थाओं की वास्तविकता तुलनाएं करने से जानी जा सकती है। तुलनात्मक पद्धति से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि एक जैसे नाम वाली संस्थाओं के गठन, कायों, प्रक्रियाओं इत्यादि में विभिन्नता हो सकती है। उदाहरणार्थ भारत तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्याध्यक्षों को "राष्ट्रपति" के नाम से सम्बोधित किया जाता है, परन्तु इनकी निर्वाचन पद्धति, कार्यकाल, शक्तियां, स्थिति इत्यादि में अन्तर पाया जाता है। तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि विभिन्न सरकारों की स्थापना क्यों की जाती है? संसदीय प्रणाल में कार्यपालिका तथा विधानपालिका में गहरा सम्बन्ध क्यों होता है और कैसे होता है? अध्यक्षात्मक प्रणाली में विधानपालिका तथा कार्यपालिका में सम्बन्ध क्यों नहीं होता? एक प्रकार की शासन व्यवस्थायें अलग-अलग कार्य क्यों करती हैं आदि।
- **राजनीतिक व्यवहार का ज्ञान (Knowledge of Political Behaviour):** तुलनात्मक पद्धति वाई के प्रयोग से विभिन्न स्तरों पर स्थापित राजनीतिक संस्थाओं के व्यवहार का ज्ञान होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् व्यवहारवादी दृष्टिकोण के कारण तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है।

मय अतः तुलनात्मक पद्धति के द्वारा हम विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं उनकी उपसंरचनाओं के व्यावहारिक पर पक्ष का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

- **राजनीतिक विज्ञान के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाना (Making the Study of Political cience in Scientific)**: तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से तथ्यों तथा आंकड़ों के आधार पर विभिन्न नयर राजनीतिक संस्थाओं में समानतायें और असमानतायें खोजने में सहायता प्राप्त हुई है। राजनीति विज्ञान का चित्र अध्ययन अधिक क्रमबद्ध, सुनिश्चित एवं वैज्ञानिक बनाने में तुलनात्मक पद्धति की अमूल्य देन रही है।
- **राजनीतिक घटनाओं का ज्ञान (Knowledge of Political Events)** : स्थानीय, राष्ट्रीय एवं यान अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर होने वाली घटनाएं राजनीतिक व्यवस्थाओं पर प्रभाव डालती हैं। अतः तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से हमे विभिन्न स्तरों पर होने वाली घटनाओं का ज्ञान होता है।
- **राष्ट्रों के घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण तुलनात्मक पद्धति की उपयोगिता (Utility of Comparative Method due to close inter relationship amongst Nations):** यातायात एवं संचार के मान साधनों में वैज्ञानिक क्रांति के कारण राष्ट्रों के मध्य समय व स्थान की दूरी बिल्कुल समाप्त हो चुकी है तथा समस्त विश्व एक इकाई बन गया है। यही कारण है कि जब विदेश नीति का निर्माण किया जाता है तो विभिन्न देशों मत्र की राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करना आवश्यक है। हैरिंग (Herring) के मतानुसार "जिन देशों के साथ हमारे सम्बन्ध हैं उनकी संस्कृति, विचारधारा, इतिहास यत्र और उन समस्त तत्त्वों का जो राजनीति पर प्रभाव डालते हैं, तुलनात्मक अध्ययन बहुत जरूरी है। इससे उन देशों की राजनीतिक व्यवस्था को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। वास्तव में हम अपनी व्यवस्या का भी सही हो है। मूल्यांकन तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ही कर सकते हैं।"
- **राजनीतिक व्यवस्थाओं में सुधारों की संभावना (Possibility of Reforms in Political ओ System) :** तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग के आधार पर विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की अच्छाइयों तथा बुराइयों का अध्ययन करके उनकी त्रुटियों को दूर करके सुधारा जा सकता है।
- **सिद्धांत निर्माण तथा पुनः प्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायक (Helpful in Theory Build- ing and its Revalidification):** तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग से विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं, अवस्थाओं एवं राजनीतिक संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकलते हैं, उनके सामान्यीकरण

संभव होते हैं और सिद्धांत निर्माण और पुनः प्रामाणिकता में सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ रूडी, एण्डरसन तथा अन्य विद्वानों के अनुसार जातीय, भाषायी और धार्मिक समूहों में विभाजित समाज में हिंसा भड़कने की अधिक संभावनाएं हैं। इसी प्रकार सिद्धांत निर्माण का एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। तानाशाही सरकारों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रजातंत्रात्मक सरकारों की अपेक्षा कम होती है, क्योंकि तानाशाही सरकारों में सैनिक एवं अर्द्धसैनिक संगठनों के प्रयोग के आधार पर जनता को नियंत्रित किया जाता है तथा सैन्य बलों का जितना अधिक प्रयोग होगा राजनीतिक व्यवस्था की संत्ता वैधता एवं औचित्यपूर्णता (Legitimacy of Authority) उतनी ही कम होगी।

तुलनात्मक पद्धति तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण तरीका *है। इसका प्रयोग अरस्तु से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक विभिन्न विद्वानों ने किया है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी तत्कालीन 60 संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनकी उन मुख्य विशेषताओं का जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल थीं का भारतीय संविधान में समावेश किया।

2.4.पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

2.4.1.तुलनात्मक विधि के प्रकार (Types of comparative method)

तुलनात्मक पद्धति को एक ' सिद्धांत को विकसित करने, परिकल्पनाओं के परीक्षण, कारण कार्य संबंधों का अनुमान लगाने और विश्वसनीय सामान्यीकरणों को उत्पन्न करने के आधार के रुप में समानताओं और विषमताओं के अध्ययन के रुप में देखा गया। अनेक विद्वानों का मानना है कि अनुसंधान वैज्ञानिक रुप से संगठित होना चाहिए। वे मानते हैं कि तुलनात्मक पद्धति उन्हें 'वैज्ञानिक अनुसंधान के संचालन के लिए सर्वोत्तम साधन प्रदान करती है, भौतिक विज्ञानों में तुलनाएँ प्रयोगशालाओं में ध्यानपूर्वक नियंत्रित स्थितियों में की जाती हैं, समाजशास्त्रों में उन स्थितियों में, जो प्रयोगशाला की स्थितियों को दोहरा सकें, परिशुद्ध परीक्षण संभव नहीं है। अतः जहाँ एक समाजशास्त्री एक वैज्ञानिक तरीके से कार्य करने के लिए अपने को विवश महसूस कर सकता है, वहीं, जिसे वैज्ञानिक' अन्वेषण के रुप में स्वीकार किया जाता है, उसे सामाजिक परिघटनाएँ शायद अनुमति न दें। इसके बावजूद वह मामलों (केस) का अध्ययन कर सकता है, अर्थात् वास्तव में मौजूद राजनीतिक दलों का, और उनकी तुलना कर सकता है, अर्थात् उनके संबंध के अध्ययन का एक

तरीका निकाल कर जैसे कि परिकल्पना में हल किया गया है. निष्कर्ष निकाल कर और सामान्यीकरणों की प्रस्तुती द्वारा। इस प्रकार, वैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोगात्मक पद्धति से कमज़ोर होने के बावजूद, तुलनात्मक पद्धति को एक वैज्ञानिक पद्धति के सबसे निकट माना जाता है, जो सामाजिक परिघटनाओं की व्याख्याएँ खोजने के लिए और सैद्धांतिक प्रस्तावों और सामान्यीकरण प्रस्तुत करने के लिए सर्वश्रेष्ठ संभव अवसर प्रदान करती है।

तुलनात्मक पद्धति को क्या वैज्ञानिक बनाती है। सारटोरी ने दावा किया कि 'नियंत्रण प्रकार्य या जाँच को प्रणाली, जो वैज्ञानिक अनुसंधान का अभिन्न हिस्सा है, और प्रयोगशाला प्रयोग का अनिवार्य अंग, समाजशास्त्रों में उसे केवल तुलनाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

2.4.2.समाकलनात्मक चिंतन

कुछ सामाजिक वैज्ञानिक एक वैज्ञानिक अन्वेषण के विकास के लिए तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हैं, कुछ अन्य के लिए, परन्तु तुलनाओं के साथ चिंतन विशिष्ट सामाजिक और राजनीतिक परिघटना के विश्लेषण का एक अभिन्न हिस्सा है। स्वॉनसन, जिसने यह दावा किया है कि 'तुलनाओं के बिना चिंतन, अनिवार्य है, इस उपागम का प्रतिनिधि है। उसके अनुसार, 'किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि तुलनाएँ, अंतर्निहित और सुव्यक्त, सामाजिक वैज्ञानिकों के कार्य में व्याप्त होती है और आरंभ से ऐसा करती आई । प्रसिद्ध जर्मन समाजशास्त्री, एमिल दुर्खीम भी पुष्टि करता है कि तुलनात्मक पद्धति अनुसंधान को केवल वर्णनात्मक रहने से रोकने में सक्षम बनाती हैं । स्मेलसर ने भी दावा किया कि बिना तुलनाओं के वर्णन काम नहीं आते।

2.4.3.प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental methodology)

यद्यपि प्रयोगात्मक पद्धति का समाजशास्त्रों में सीमित उपयोग है, फिर भी ये वो मॉडल या प्रतिमान उपलब्ध करती है जिस प्रकार अनेक तुलनावादी अपने अध्ययनों को आधारित करने की अभिलाषा करते हैं। सरल शब्दों में, प्रयोगात्मक पद्धति दो स्थितियों के बीच एक कारणात्मक संबंध स्थापित करना चाहती है। दूसरे शब्दों में, परीक्षण का लक्ष्य यह सिद्ध करना है कि एक स्थिति एक दूसरी स्थिति को उत्पन्न करती है या दूसरी स्थिति को एक निश्चित तरीके से प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई इसका अध्ययन करना चाहे कि एक विशाल-समूह समायोजन में, बच्चों में, अंग्रेजी में उनकी अभिव्यक्ति की योग्यता की दृष्टि से अंतर क्यों है, तो अनेक कारकों को इस क्षमता को प्रभावित करते हुए देखा जा सकता है, अर्थात् सामाजिक पृष्ठभूमि,

भाषा में निपुणता, परिवेश से सुपरिचय इत्यादि। अन्वेषक इन सभी कारकों के प्रभाव का अध्ययन कर सकता है या इनमें से किसी एक का या कारकों के एक सम्मिश्रण का भी। वह फिर उन कारकों को अलग करता है जिनके प्रभाव का वह अध्ययन करना चाहता है और इसके परिणामस्वरुप प्रत्येक स्थिति की भूमिका को सुनिश्चित करता है। जिस स्थिति के प्रभाव को मापना है और जो अन्वेषक द्वारा संचालित किया जाता है. वह स्वतंत्र चर है. उदाहरण के लिए, सामाजिक पृष्ठभूमि इत्यादि। वह स्थिति, जिस पर प्रभाव का अध्ययन किया जाना है, वह इस प्रकार, अश्रित चर है। अतः अभिव्यक्ति की योग्यता पर सामाजिक पृष्ठभूमि के लिए रुपाकित एक प्रयोग में, सामाजिक पृष्ठभूमि स्वतंत्र चर होगा और अभिव्यक्ति की योग्यता अश्रित चर। अन्वेषक एक परिकल्पना तैयार करता है जिसे दो स्थितियों के बीच संबंध के रुप में वर्णित किया जाता है जिसका परीक्षण उस प्रयोग में किया जाता है, अर्थात् उच्चतर सामाजिक- आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले बच्चे विशाल-समूह समायोजना में अंग्रेजी में अभिव्यक्ति की बेहतर योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। प्रयोग के परिणाम अन्वेषक को अपने निष्कर्षों की व्यावहारिता के संबंध में सामान्य पस्ताव प्रस्तुत करने में और अन्य पूर्व अध्ययनों से उनकी तुलना करने में सक्षम बनाएँगे।

2.4.4.केस स्टडी (case study)

केस स्टडी एक शोध पद्धति है जिसका उपयोग किसी व्यक्ति, लोगों के समूह या किसी विशेष घटना की जांच करने के लिए किया जाता है। केस स्टडी का उपयोग कई विषयों में किया गया है, खासकर सामाजिक विज्ञान, नृविज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और राजनीति विज्ञान में। केस स्टडी शोधकर्ता को विषय की गहन समझ हासिल करने की अनुमति देती है। केस स्टडी करने के लिए शोधकर्ता कई तकनीकों का उपयोग कर सकता है। उदाहरण के लिए, अवलोकन, साक्षात्कार, दस्तावेजों, अभिलेखों आदि जैसे द्वितीयक डेटा का उपयोग। यह आमतौर पर लंबी अवधि तक चलता है क्योंकि शोधकर्ता को विषय का गहराई से पता लगाना होता है।केस स्टडी विधि का इस्तेमाल सबसे पहले क्लिनिकल मेडिसिन में किया गया था ताकि डॉक्टर को मरीज के इतिहास की स्पष्ट समझ हो। केस स्टडी में कई तरह की विधियों का इस्तेमाल किया जा सकता है, उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक व्यक्ति का निरीक्षण करने के लिए अवलोकन का इस्तेमाल करते हैं, समझ को व्यापक बनाने के लिए साक्षात्कार विधि का इस्तेमाल करते हैं। समस्या की स्पष्ट तस्वीर बनाने के लिए, सवाल न केवल उस व्यक्ति से पूछे जा सकते हैं जिस पर केस स्टडी की जा रही है, बल्कि उन लोगों से भी

पूछे जा सकते हैं जो व्यक्ति से जुड़े हुए हैं। केस स्टडी की एक खास विशेषता यह है कि यह गुणात्मक डेटा तैयार करती है जो समृद्ध और प्रामाणिक होते हैं

केस स्टडी को समय-समय पर अलग-अलग विद्वानों द्वारा अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया गया है। उनमें से कुछ नीचे प्रस्तुत हैं।

- यंग, पी.वी. (1984): केस स्टडी एक सामाजिक इकाई का व्यापक अध्ययन है, चाहे वह एक व्यक्ति हो, व्यक्तियों का समूह हो, एक संस्था हो, एक समुदाय हो या एक परिवार हो।
- ग्रूड और हैट (1953): यह एक सामाजिक इकाई के जीवन की खोज और विश्लेषण करने की एक विधि है
- कूली, सीएच (2007): केस स्टडी हमारी धारणा पर निर्भर करती है और जीवन निर्देशिका में स्पष्ट अंतर्दृष्टि देती है।
- बोगार्डस, ई.एस. (1925): किसी दी गई स्थिति की विशेष रूप से और विस्तार से जांच करने की विधि है।
- रॉबसन सी. (1993): अनुसंधान करने की एक रणनीति जिसमें साक्ष्य के कई स्रोतों का उपयोग करके वास्तविक जीवन के संदर्भ में एक विशेष समकालीन घटना की अनुभवजन्य जांच शामिल है।

इन परिभाषाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर पता चलता है कि केस स्टडी एक सामाजिक इकाई से संबंधित स्थिति का गहन और व्यापक तरीके से सूक्ष्म और विस्तृत अध्ययन करने की विधि है, ताकि मानव जीवन के व्यक्तिगत और साथ ही छिपे हुए आयामों को समझा जा सके।इन परिभाषाओं के आधार पर ***केस स्टडी की निम्न विशेषताएं हैं-***

- एकत्र किए गए आंकड़े मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और घटनाओं तथा उनके घटित होने के संदर्भों का वर्णन करते हैं।
- केस स्टडी मात्रात्मक विधि के बजाय गुणात्मक विधि अधिक है।
- उच्च स्तर का विवरण प्रदान किया गया है।
- सम्बन्धित इकाई के व्यवहार पैटर्न का प्रत्यक्ष अध्ययन किया जाता है जिसमें कार्य-कारण कारकों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध को जानने का प्रयास किया जाता है।

- आमतौर पर एक केस स्टडी एक सामाजिक इकाई के सभी पहलुओं का पूर्ण और व्यापक विवरण प्रस्तुत करती है, चाहे वह एक व्यक्ति हो या एक सामाजिक समूह हो।
- केस स्टडी किसी व्यक्ति के सीमित पहलू पर केंद्रित होती है।
- केस स्टडी में **वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिपरक डेटा संयोजित** हो**ता है**।
- केस स्टडी विधि शोधकर्ता को समय के साथ होने वाली प्रक्रियाओं की प्रकृति का पता लगाने और उसका वर्णन करने में सक्षम बनाती है।
- एक केस स्टडी, एक एकल केस का गहराई से अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करती है। इस अर्थ में, जबकि पद्धति अपने आम में पूरी तरह से तुलनात्मक नहीं है, यह डेटा (आंकडे) उपलब्ध करती जो सामान्य पर्यवेक्षणों का आधार बन सकता है। इन पर्यवेक्षणों का प्रयोग, अन्य 'केस' के साथ तुलना करने के लिए और सामान्य व्याख्याएँ प्रस्तुत करने के लिए, किया जा सकता है।

2.4.5.सांख्यिकीय पद्धति (Statistical Method)

सांख्यिकीय पद्धति वर्गों और चरों का प्रयोग करती है जो मात्रात्मक हैं या जिनका प्रतिनिधित्व अंको संख्या द्वारा किया जा सकता है, उदाहरण के लिए, मतदान प्रतिमान, सार्वजनिक व्यय, राजनीतिक दल, कुल मतदान, शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि। यह समानान्तर रुप से अनेक चरों के प्रभावों संबंधों के अध्ययन के लिए अद्वितीय अवसर प्रदान करता है। परिशुद्ध डेटा (आंकडों) को एक सुगठित और दृष्टिगत रुप से प्रभावी तरीके से प्रस्तुत करने में यह लाभकारी है जिसके कारण समानताएँ और विषमताएँ संख्यात्मक प्रतिनिधित्व के माध्यम से दृष्टिगोचर होते हैं। यह तथ्य किं अनेक चरों का अध्ययन एक साथ किया जा सकता है. संबंध की दृष्टि से जटिल व्याख्याओं को खोजने का भी अद्वितीय अवसर प्रदान करता है।

सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग दीर्घकालीन प्रवृत्तियों और प्रतिमानों की व्याख्या और तुलना में तथा भावी प्रवृत्तियों के बारे में भविष्यवाणियों को प्रस्तुत करने में भी सहायक है। उदाहरण के लिए, कुल मतदान और आयु- वर्गों की सांख्यिकीय तालिकाओं के विश्लेषण के माध्यम से आयु और राजनीतिक सहभागिता के बीच संबंध का अध्ययन किया जा सकता है।

2.4.6.ध्यान केंद्रित तुलनाएँ (Focused comparisons)

ये अध्ययन राष्ट्रों की एक छोटी संख्या को लेते हैं, अक्सर केवल दो (युग्मित या द्विआधारी तुलनाएँ) और प्रायः इन राष्ट्रों की राजनीति के निश्चित पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं, बजाय सभी पहलुओं पर। विभिन्न राष्ट्रों में इस पद्धति के माध्यम से लोकनीतियों का सफलतापूर्वक तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

2.4.7.ऐतिहासिक पद्धति (Historical method)

ऐतिहासिक पद्धति को अन्य पद्धतियों से इस प्रकार अलग किया जा सकता है कि वह कारणात्मक या कारण संबंधी व्याख्याओं को खोजता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से संवेदनशील होते हैं। एरिक वुल्फ इस बात पर बल देता है कि कोई भी अध्ययन जो समाजों और मानवीय क्रिया के कारणों को समझने का प्रयास करता है, वह केवल समस्याओं के तकनीकी हल जो तकनीकी शब्दावली में प्रस्तुत किए जाने हों, उनकी खोज नहीं कर सकता। महत्व की बात ये थी कि यएक विश्लेषणात्मक इतिहास का प्रयोग किया जाए जो वर्तमान के कारणों को अतीत में खोजता हो। ऐसा विश्लेषणात्मक इतिहास, समय की एक अवधि में, एक एकल संस्कृति या राष्ट्र, एक एकल संस्कृति क्षेत्र या यहाँ तक कि एक एकल महाद्वीप के अध्ययन से विकसित नहीं किया जा सकता था, बल्कि मानव जनसंख्याओं ओर संस्कृतियों के बीच संपर्कों परस्पर क्रियाओं और परस्पर संबंधों के अध्ययन से संभव था।

2.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

(अ)."तुलनात्मक पद्धति मापन का एक रूप" यह परिभाषा किस विद्वान ने दी।

(आ).शोधार्थी के साधनों में ('M') से क्या आशय है?

(इ). अरस्तु ने तत्कालीन कितने संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन किया था?

(ई). पुस्तक "THE RULE OF SOCIYOLOGY MATHOD" मकिस विद्वान की कृति है?

(उ).जब किसी राजनीतिक व्यवस्था की इकाई अथवा एक भाग अथवा एक उप-संरचना की तुलना एक अथवा एक से अधिक राजनीतिक व्यवस्थाओं के भाग अथवा एक उप-संरचना अथवा एक इकाई से करें तो ऐसा अध्ययन क्या कहलाता है।

2.6.सारांश (Summary)

तुलना एक मौलिक मानवीय प्रयास है। जाने या अनजाने हम अपने चारों ओर अनेक वस्तुओं की तुलना करते रहते हैं। राजनीति शास्त्र के विषय में, तुलनात्मक पद्धतियों का प्रयोग करते हुए, न केवल संस्थाओं, प्रणालियों या परिघटनाओं के सामान्य वर्णन या विशेषताओं की व्याख्या की जा सकती है बल्कि राजनीतिक प्रणाली की एक सूक्ष्म भेद-युक्त समझ भी उपलब्ध की जा सकती है-प्रतिमान, समानताएँ और विषमताएँ।

तुलना को राजनीतिक अन्वेषण की एक पद्धति के रुप में प्रयोग करने की प्रक्रिया में, विद्वानों ने अनेक प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया है जैसे प्रयोगात्मक पद्धति, केस स्टडी पद्धति, सांख्यिकीय पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति इत्यादि। ये पद्धतियाँ वे मौलिक उपकरण और तकनीक हैं जो तुलनावादियों द्वारा आनुभाविक डेटा और परिमाण निर्धारित करने योग्य चरों के माध्यम से राजनीतिक परिघटनाओं के बारे में एक वैज्ञानिक और गहरी व्याख्या की स्थापना के लिए प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु, अपने अन्वेषण के लिए उपयुक्त पद्धति की पहचान करना शोधकर्ता (तुलनावादियों) का काम है। यदि एक अकेली पद्धति पर्याप्त न हो, तो एक व्यापक समझ की प्राप्ति के लिए पद्धतियों के सम्मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है।

2.7.सूचक शब्द (Key Words)

- **निर्माण :** एक निर्माण एक भावात्मक अवधारणा है जिसे एक निश्चित परिघटना की व्याख्या के लिए विशेष रुप से बनाया (या चुना) जाता है। एक निर्माण एक सरल अवधारणा हो सकती है अथवा संबंधित अवधारणाओं के सेट (समुच्चय) का सम्मिश्रण।
- **कारण-संबंधी** (कारणात्मक) व्याख्या किसी वस्तु को समझने का तरीका, यह मानते हुए कि कुछ तथ्य अन्य तथ्यों के उभरने के कारण बनते हैं, उदाहरण के लिए, अत्यधिक जनसंख्या आवास की समस्या का कारण हो सकती है।
- **पद्धति :** वैज्ञानिक ज्ञान के निर्माण या सिद्धांत प्रस्तुत करने के लिए तकनीकों का एक मानकीकृत और संगठित सेट (समुच्चय)। पद्धतियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है (क) तुलनात्मक (एक से अधिक केस का करते हुए), (ख) संरुपात्मक (एक एकल केस स्टडी का प्रयोग करते हुए) और (ग) ऐतिहासिक (समय और अनुक्रम का प्रयोग करते हुए)। पद्धति मुख्यतः 'चिंतन के बारे में चिंतन' है।

- **मॉडल (प्रतिमान):** प्रणाली की समष्टि या एक हिस्से का प्रतिरुप जिसका निर्माण प्रणाली के अध्ययन के लिए किया जाता है। प्रणाली या परिघटनाओं के प्रतिनिधित्व द्वारा एक मॉडल यथार्थ को सरल बना देता है।

2.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

- **पद्धति किसे कहते है ?तुलनात्मक पद्धति का अर्थ व परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।**
- **तुलनात्मक पद्धति की आवश्यकता व उपयोगिता का वर्णन कीजिए।**
- **आधुनिक तुलनात्मक पद्धति की विशेषताएं व पद्धति की अनिवार्य शर्ते का वर्णन कीजिए।**
- **तुलनात्मक पद्धति का विषय- क्षेत्र व तुलनात्मक पद्धति की सीमाओं को स्प्ष्ट कीजिए।**
- **तुलनात्मक पद्धति के उपयोग में सावधानियों व् इसकी उपयोगिता का वर्णन कीजिए।**
- **तुलनात्मक पद्धति की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिये।**

2.9.उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

(अ). आर्थर.कोहलबर्ग ने.

(आ).व्यक्ति, धन एवं विषय-सामग्री (Man, Money and Material-Three 'M')

(इ).158 संविधानों का

(ई). दुर्खीम

(उ).ऐसा अध्ययन लघु स्तरीय अध्ययन कहलाता है।

2.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।

- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ .बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज , अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी .गेना ,विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी .जौहरी ,स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।
- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

Subject : Political Science(Comparative politics)	
Course Code : POLS 301	**Autor : Dr. Parveen Sharma**
Lesson No. : 3	Vetter **:**
तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के दृष्टिकोण: इनपुट-आउट (डेविड ईस्टन), **Approaches to the Study of Comparative Politics: Input-Out (David Easton)**	

अध्याय की सरंचना

3.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

3.2.परिचय (Introduction)

3.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

3.3.1.व्यवस्था के सम्बन्ध में डेविड ईस्टन के विचार (Views of David Easton Regarding Political System)

3.3.1.1.राजनीतिक व्यवस्था के लक्षण (Characteristics of Political System)

3.4.पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

3.4.1.निवेश निर्गत विश्लेषण (Input output analysis)

3.4.2.निवेश निर्गत विश्लेषण के तत्व (Elements of input output analysis)

3.4.3. निवेश-निर्गत प्रतिमान की उपयोगिता अथवा महत्त्व (Utility or Significance of Input-Output Model)

3.4.4. निवेश-निर्गत सिद्धांत की सीमाएं (Limitations of Input-Output Theory)

3.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

3.6.सारांश (Summary)

3.7.सूचक शब्द (Key Words)

3.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

3.9.उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

3.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

3.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी-ध्ययन के पश्चात

- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में व्यवस्था विश्लेषण की अवधारणा को बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को जान सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में आगत, निवेश, रूपांतरण और निर्गत की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के तहत नीतिगत निर्माण की अंतः प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के सामान्य और सार्वभौमिक तत्वों को पहचान सकेंगे।

3.2.परिचय (Introduction)

राजनीति विज्ञान को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में जिस अवधारणा ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया, वह डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का सिद्धांत था। डेविड ईस्टन कनाडाई मूल के अमेरिकी राजनीति विज्ञानी थे, जो कि अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर थे। डेविड ईस्टन ने व्यवस्था सिद्धांत और निवेश-निर्गत विश्लेषण की अवधारणा का प्रतिपादन कर राजनीति विज्ञान को अपना अमूल्य योगदान दिया। डेविड ईस्टन ने न सिर्फ अपने राजनीतिक सिद्धांतों से 1950 के दशक में व्यवहारवादी सिद्धांतों और अवधारणओं को बल प्रदान किया अपितु 1970 के दशक के उत्तर व्यवहारवाद में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान दिखायी देता है।

डेविड इंस्टन द्वारा प्रस्तुत निवेश-निर्गत विश्लेषण (Input-Output Analysis) की अनेक नामों से संबोधित किया गया-व्यवस्था सिद्धांत,सामान्य व्यवस्था सिद्धांत, प्रकार्यावादी, विश्लेषण सिद्धांत इत्यादि।डेविड इंस्टन ने 'व्यवस्था' की अवधारणा का महत्त्व एवं उपयोगिता अपनी अनेक पुस्तकों एवं किया है। इनमें "दि पॉलिटिकल सिस्टम ऐन इन्कायरी इनटू दि स्टेट ऑफ पॉलिटिकल साईस (The Pol system: An Enquiry into the state of Political Science, 1953), 'ए फ्रेमवर्क फॉर पानि अनालिसिस' (A Framework for Political Analysis 1965), 'ए सिस्टमस अनॉलिसिस आफ पॉलि लाइफ' (A Systems Analysis of Political Life: 1965) इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

सामान्य व्यवस्था सिद्धांत की संकल्पना सर्वप्रथम मानवशास्त्रियों ने की और इसके पश्चात् इस पर प्रयोग समाजशास्त्रियों के द्वारा किया गया। सामान्य व्यवस्था सिद्धांत की संकल्पना करने वाले सर्वप्रथम जीवविज्ञानी शास्त्री लुडविग वॉन बर्टलेन्फी (Ludwig Von Bertallaniy) थे। इसके पश्चात् मानव शास्त्र (Anthropology) में इसका प्रयोग रेडक्लिफ ब्राऊन (Radcliffe Brown) तथा वी.मालिनोवस्की (B.Malinowaski) ने किया। समाजशास्त्र (Sociology) में रावर्ट के. मर्टन (Robert K. Merton) तथा टैल्कॉट-पार्सन्स (Talcott Parsons) के द्वारा इस सिद्धांत का प्रयोग किया। इन विद्वानों के विचारों से प्रभावित होकर राजनीति विज्ञान में व्यवस्था सिद्धांत प्रयोग डेविड ईस्टन (David Easton) के द्वारा किया गया। व्यवहारवादी क्रांति के पश्चात्, व्यवहारवादी दृष्टिकोण की कमियों को दूर करने के लिए सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रयोग बढ़ता चला गया। यद्यपि मर्टन तथा पारसन्स की राजनीति शास्त्र में सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रचलन करने महत्त्वपूर्ण भूमिका है परन्तु डेविड ईस्टन की तुलना में गौण है। ऑमण्ड एवं पॉवेल के मतानुसार "डेविड प्रथम राजनीतिक शास्त्री हैं, जिन्होंने राजनीति को स्पष्टतया व्यवस्था के रूप में विश्लेषण किया है।"

3.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

3.3.1.व्यवस्था के सम्बन्ध में डेविड ईस्टन के विचार (Views of David Easton Regarding Political System)- ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था सामान्य सामाजिक व्यवस्था से भिन्न होती है। राजनीतिक व्यवस्था की परिभाषा देते हुए **डेविड ईस्टन** ने कहा है कि "राजनीतिक व्यवस्था किसी समाज की

अन्तक्रियाओं का एक समूह है जिसके माध्यम से अधिकृत मूल्य बनाए जाते हैं तया लागू किये जाते हैं।ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था अन्तःक्रिया का समूह है तथा इसके द्वारा नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है। राजनीतिक में व्यवस्था औपचारिक एवं अनौपचारिक सभी प्रकार की अन्तःक्रियाएं आती हैं। राजनीतिक व्यवस्था सामान्य सामाजिक व्यवस्था की एक उप-व्यवस्था है परन्तु इसके पास मूल्यों का सत्तात्मक आवंटन है। अन्य शब्दों में राजनीतिक व्यवस्था के पास नियंत्रण करने की बाध्यकारी शक्ति होती है। इसी कारण राजनीतिक व्यवस्था अन्य व्यवस्थाओं-सामाजिक, आर्थिक ,धार्मिक एवं सांस्कृतिक से भिन्न होती है **डेविड ईस्टन** के अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था जीवित होती है तथा उसका मुख्य उद्देश्य व्यवस्था को केवल जीवित रखना ही नहीं अपितु उसकी निरन्तरता बनाये रखना भी है।

डेविड ईस्टन के अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था का वातावरण होता है।प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अनेक उप-संरचनाएं होती हैं। राजनीतिक व्यवस्था इन उपसंरचनाओं तथा वातावरण से प्रभावित होती है तथा प्रभावित करती है। अतः डेविड ईस्टन के बाद में राजनीतिक व्यवस्था की अधिक विशिष्ट एवं सुस्पष्ट परिभाषा देते हुए कहा है "राजनीतिक व्यवस्था स्वयं में परिपूर्ण सत्ता है जी वातावरण अथवा परिवेश, जिससे यह घिरी हुई होती है और जिसके अंतर्गत यह प्रचलित होती है, स्पष्टतः पृथकनीय होती है।

3.3.1.1.राजनीतिक व्यवस्था के लक्षण (Characteristics of Political System)

डेविड ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था के निम्नलिखित लक्षण हैं:

- **राजनीतिक व्यवस्था उसके सदस्यों का समूह न होकर उनकी क्रियाओं का समुच्चय है। (Political system is not the group of members but the Aggregaties of the interactions of its Members):**-डेविड ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक व्यवहार की समग्रता से प्राप्त निरन्तर चलने वाली अन्तःक्रियाओं का समुच्चय है। अर्थात समाज में रहते हुए व्यक्ति अनेक पद्धतियों अथवा उपपद्धतियों में भाग लेते हैं। व्यक्ति विभिन्न प्रकार की क्षमताओं (Capacities) में काम करते हैं। एक समय में वे एक प्रकार के व्यवहार में लगे रहते हैं और अन्य समय में किसी दूसरे व्यवहार में लगे रहते हैं। अतः राजनीतिक पद्धति व्यक्तियों का समूह न होकर उनकी भूमिकाओं की अन्तक्रियाओं (Roles and interactions of Individuals) से है। है। राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से समाज के लिए

मूल्यों का। विधान किया जाता है। राजनीतिक व्यवस्था - की परिभाषा में डेविड ईस्टन ने राजनीति (Politics) तया "राजनीतिक व्यवस्था" (Political System) की नवीन परिभाषाएं दी हैं। डेविड ईस्टन के अनुसार "राजनीति सामाजिक मूल्यों के अधिकारिक निर्धारण (Making Authoritative Allocation of Values) है। राजनीतिक व्यवस्था को उसने "अन्तक्रियाओं का समूह" - (Set of Interactions) कहा है। अतः राजनीतिक व्यवस्था अधिकारिक मूल्यों-नीतियों एवं नियमों का निर्धारण करती है तथा इसके पास बाध्यकारी शक्ति है।

- **राजनीतिक पद्धति का अनुक्रियाशील एवं आत्म विनिमयकारी होना (Political System is Responding and Self-Regulatory):-**डेविड ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था एक जीवित व्यवस्या होती है। प्राकृक्तिक व्यवस्थाओं की भांति राजनीतिक व्यवस्था में यह गुण विद्यमान है कि विक्षोभों का सामना करने की क्षमता रखती है। एक सजीव व्यवस्था की भांति राजनीतिक व्यवस्था अनुकूलनशील होती है। राजनीतिक व्यवस्था के संजीव एवं अनुकूलित चरित्र पर टिप्पणी करते हुए डा. एस.पी. वर्मा ने कहा है "इस स्वरूप में राजनीतिक व्यवस्था में बाधाओं का मुकाबला करने तथा अपने-आपको उन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की क्षमता होनी चाहिए जिनमें इसे कार्य करना होता है। राजनीतिक व्यवस्या के आंतरिक संगठन में अपने-आपको उन परिस्थितियों में ढालने की असाधारण क्षमता होती है जिनके अन्तर्गत यह कार्य करती है।"
- **व्यवस्थायी निरन्तरता (Systematic Persistence):-**डेविड ईस्टन के मतानुसार राजनीतिक व्यवस्था में व्यवसायी निरन्तरता (Systemic Persistence) होती है। व्यवस्थायी निरन्तरता राजनीतिक व्यवस्याओं को बाधाओं को दूर करने की योग्यता प्रदान करती है। डेविड ईस्टन के शब्दानुसार “एक राजनीतिक दूर करने तथा । और आंदोलनों में उलझनें-रुकावटों के बाद अपनी वास्तविक स्थिति में वापस भी आसमानीतिक व्यवस्था बाधाओं और जातब तक चलती रहती है जब तक यह अपने वातावरण में अधिकृत मूल्यों को बनाने एवं लागू करने की स्थिति में होती है।" व्यवस्थायी निरन्तरता की अवधारणा संतुलन (Equalibrism) के विपरीत है। डेविड ईस्टन के अनुसार संतुलन विश्लेषण (Equalibrium Analysis) में निम्न दो मुख्य त्रुटिया है।-प्रथम ,संतुलन विश्लेषण संतुलन को बहुत महत्त्व देता है। संतुलन को स्थिरता के तत्व से कभी पृथक नहीं किया जा सकता। द्वितीय संतुलन विश्लेषण का ढंग प्रक्रियाओं एवं

प्रक्रिया करने वालों द्वारा खड़ी की गई चा समस्याओं को कोई महत्त्व नहीं देता। वस्तुतः राजनीतिक व्यवस्था के संतुलन तक पहुंचने के अतिरिक्त और भी लक्ष्य हो सकते हैं। डेविड ईस्टन के मतानुसार "एक व्यवस्था को केवल संतुलन के प्रारंभिक चरण को आंदोलित करके या नए चरण पर स्थानांतरण करके बाधाओं के प्रति प्रतिक्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती। यह अपने वातावरण में परिवर्तन की इच्छा से भी बाधाओं का मुकाबला कर सकती है ताकि इसके वातावरण तथा इसके मध्य आदान-प्रदान दबावपूर्ण न रहे यह अपने आपको वातावरण के प्रभावों से पृथक् कर सकती है, या व्यवस्था के सदस्य मौलिक रूप से अपने सम्बन्धों का रूप इस तरह बदल सकते हैं, अपने मूल्यों तया कार्यों को इस तरह सकते है जिससे वातावरण के निवेशों को संचालित करने के अवसरों में वृद्धि कर सकें। इस प्रकार एक व्यवस्था में बाधाओं के रचनात्मक तथा निर्माणकारी संचालन की क्षमता होती है। अतः राजनीतिक व्यवस्था अचल न होकर निरन्तर गतिशील रहती है। राजनीतिक व्यवस्था का अस्तित्व का प्रतिसंभरण यंत्र (Feed Back Mechanism) के कारण होता है। इससे सकारात्मक अथवा नकारात्मक स्वरूप की सूचनाओं को व्यवस्था में प्रेषित किया जाता है। इसी कारण व्यवस्था का अस्तित्व बना रहता है जो रूप में परिवर्तन होता रहता है। और उस प्राकृतिक प्रकोप अथवा खूनी युद्ध अथवा भयंकर नरसंहार व्यवस्था को भयंकर चुनौती बन सकता है अथवा उसके अस्तित्व के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है अथवा उसे नष्ट भी कर सकता है।

इसी प्रकार डेविड ईस्टन उन साधनों की ओर ध्यान केंद्रित करता है जिनके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक दबावों, तनावों, भयंकर चुनौतियों एवं खतरों का सामना करके अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल होती है। इस प्रक्रिया को ईस्टन ने "राजनीतिक व्यवस्था की जीवन प्रक्रिया" की संज्ञा दी है। जीवन प्रक्रिया में राजनीतिक व्यवस्था के वे मूल कार्य शामिल हैं जिनके बिना कोई व्यवस्था जीवित नहीं रह सकती तथा जिनके आधार पर राजनीतिक व्यवस्था अपने अस्तित्व को बनाए रखने का प्रबन्ध करती है।

- **राजनीतिक व्यवस्था का खुला होना (Political System is to be Open) :** डेविड ईस्टन के अनुसार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था खुली होती है। इसमें बाह्य प्रभावों अथवा पर्यावरणीय कारकों के कारण परिवर्तन हो सकता है। राजनीतिक व्यवस्था समयानुसार स्वयं समजनीय (Self-adjustable) होती

है। राजनीतिक पर्यावरण से प्रभावित होती है। पर्यावरण में उत्पन्न होने वाली क्रियाओं और राजनीतिक व्यवस्था की प्रक्रियाओं के मध्य आदान-प्रदान होता है।

- **राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण (Environment of Political System):** प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण होता, जिससे वह चारों ओर से घिरी होती है। डेविड ईस्टन के राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण दो प्रकार का होता है:

(i) अन्तःसमाजी पर्यावरण (Intra-Societal Environment):अन्तः समाजी पर्यावरण समाज के भीतर का पर्यावरण होता है। इसमें परिस्थितियां, जीव, व्यक्तित्व, सामाजिक व्यवस्था-अर्थव्यवस्था,सामाजिक संरचनाएं इत्यादि सम्मिलित हैं।

(ii) बाह्य समाजी पर्यावरण (Extra-Societal Environment): बाह्य समाजी पर्यावरण में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकीय और अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था का पर्यावरण सम्मिलित राजनीतिक व्यवस्था एवं इसके पर्यावरण में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। राजनीतिक व्यवस्था पर्यावरण से होती है तथा पर्यावरण को प्रभावित करती है। राजनीतिक व्यवस्था में दबाव एवं तनाव पर्यावरण से आते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की निर्गत क्रियायें इसमें उत्पन्न होने वाले तनावों, दबावों, उत्पातों David Easton एवं बाधाओं का शमन करती है। संक्षेप में राजनीतिक व्यवस्था तथा पर्यावरण में निवेशों एवं निर्गतों की प्रक्रिया के कारण घनिष्ठ सम्बन्ध है।

3.4.पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक प्रक्रियाओं को उनके सूक्ष्म स्तर पर समझने का यत्न है। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत दो अर्थों में सामान्य है-

प्रथम, ईस्टन इस विचार को स्वीकार नहीं करता है कि, अलग-अलग राजनीतिक संरचनाओं उनकी प्रक्रियाओं और समस्याओं के विश्लेषण के लिए अलग-अलग सिद्धांत होने चाहिए अपितु एक ही राजनीतिक सिद्धांत का मुख्य कार्य उन सामान्य समस्याओ, सिद्धांतों और प्रक्रिया का विश्लेषण करना है जो समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं में एक समान रूप से पायी जाती है।

3.4.1.निवेश निर्गत विश्लेषण (Input output analysis)

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का निवेश-निर्गत विश्लेषण आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का आधार है। ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धांत को एक व्यवस्थित और सुसंगत विश्लेषण का आधार प्रदान किया है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का एक जटिल समूह है जो समाज के भीतर आधिकारिक मूल्यों का आवंटन और विनियोजन करता है। राजनीतिक व्यवस्था अंतः क्रियाओं का एक समूह है जिसके अंतर्गत आगत मांगों को निर्गत में बदला जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन का महत्व इस रूप में है कि, राजनीतिक व्यवस्था के तहत सत्ता, पर्यावरण से प्राप्त मांगों को किस प्रकार रूपांतरित करती है और उसका समाज पर किस प्रकार का प्रभाव पुनः दृष्टिगत होता है। व्यवस्था के तहत किस प्रकार विभिन्न इकाईयों की अंतः क्रियाएं एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा अधिकारपूर्ण निर्णयों और उनके आधिकारिक आवंटन का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है, और इसके प्रभाव का विश्लेषण भी इस अवधारणा के द्वारा प्रभावी रूप से किया जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्था के सत्ता द्वारा रूपांतरण की प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को उस राजनीतिक व्यवस्था का निर्गत अथवा प्रदा कहा जाता है। किसी व्यवस्था में निर्गत की प्रक्रिया, उसके आगत अथवा आदा पर निर्भर करती है।

व्यवस्था को चलायमान बनाए रखने के लिए एक निश्चित संतुलन के साथ व्यवस्था की विभिन्न इकाईयों का कार्य करना आवश्यक है। आगत (Input) के बिना कोई व्यवस्था कार्य नहीं कर सकती और उससे होने वाला निर्गत (Output) उस व्यवस्था का लक्ष्य अथवा उद्देश्य। निर्गत अथवा प्रदा ही किसी राजनीतिक वयवस्था का आधार होती है जिसके द्वारा किसी राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को जाना जा सकता है। मूल्यों का आधिकारिक आवंटन और आधिकारिक निर्णय के साथ उनका वियोजन के द्वारा समर्थन प्राप्त करना ही राजनैतिक व्यवस्था के वैधानिकता का आधार है।

3.4.2.निवेश निर्गत विश्लेषण के तत्व (Elements of input output analysis)

व्यवस्था सिद्धांत के निवेश निर्गत विश्लेषण की विशेषताओं को उसके विभिन्न इकाईयों के रूप में समझना अपेक्षाकृत आसान होगा। निवेश-निर्गत विश्लेषण के निम्नलिखित तत्व इसकी विशेषताओं को भी इंगित करते हैं।

- **आगत (Input)**-आगत अथवा आदा का अभिप्राय मांग तथा समर्थन से है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में पर्यावरण से कुछ मांगें रखी जाती हैं तथा उन मांगों के सापेक्ष रूपांतरण द्वारा निर्णय करने के निमित्त, व्यवस्था से कुछ समर्थन दिया जाता है। समर्थन उस राजनीतिक व्यवस्था में अपने निर्णयों के निमित्त दबाव बनाने अथवा उसके प्रति आकर्षित करने के निमित्त प्रयोग में लाया जाता है। राजनीतिक व्यवस्था को प्राप्त समर्थन, उसके लिए वैधता स्थापित करता है। इसके साथ ही समर्थन, राजनीतिक तंत्र को विभिन्न प्रकार की मांगों के दबाव से निपटने की शक्ति प्रदान करता है क्योंकि राजनीतिक तंत्र का अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर करता है कि, उसे जनता का कितना समर्थन प्राप्त है। मांगों की वैधता तंत्र की क्षमता तथा स्थायित्व को समझने में सहायता करती है। मांग हमें यह समझने में सहायता करती है कि, किस तरह पर्यावरण सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र पर अपना प्रभाव डालता है।

1. निवेश कार्य (Input Functions): ईस्टन के अनुसार, "पर्यावरण की वे घटनाएं जो राजनीतिक व्यवस्या को प्रभावित करती हैं और इससे किसी प्रकार का निर्णय मांगती हैं।"

राजनीतिक व्यवस्था के निवेशों को ईस्टन ने निम्न दो भागों में विभाजित किया है:-

(A) मांगें (Demands) तथा

(B) समर्थन (Supports)

इनका वर्णन अग्रलिखित है:-

(A) मांगें (Demands):- ईस्टन के अनुसार मांगें शासकों को संबोधित विन्यासित आकांक्षाएं अथवा अपेक्षाएं हैं। राजनीतिक व्यवस्था में मांगें इन इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती हैं कि मूल्यों की विभक्ति निश्चित तरीके से निश्चित क्षेत्र अथवा निश्चित दिशा में हो। अन्य शब्दों में मांगें उस कच्चे माल की भांति हैं, जिसे उत्पादित वस्तुएं प्राप्त करने के लिए मशीन में डाला जाता है। ये वातावरण में उभरने वाले स्पष्टीकरण तथा समूहीकरण दावों की प्रकृक्ति रखती हैं। इनको अधिकृत मूल्यों में परिवर्तित करने के लिए राजनीतिक व्यवस्था में डाला जाता है। राजनीतिक व्यवस्था में उठने वाली प्रत्येक मांग अधिकृत

मूल्यों में परिवर्तित नहीं हो सकती, क्योंकि अधिकांश मांगों को प्रभावकारी विन्यासन का सामाजिक स्तर प्राप्त नहीं हो सकता। वास्तव में उन्हीं मांगों को राजनीतिक व्यवस्था की मांगें कहा जा सकता है जो विन्यासित हो जाती हैं। राजनीतिक व्यवस्था की मांगें निम्नलिखित चार प्रकार की होती हैं।

(i) वस्तुओं तथा सेवाओं के आवंटन के लिए मांगें (Demands for Allocations of Goods and services): जैसे मजदूरी तथा काम के घंटों के सम्बन्ध में कानून, शिक्षा की सुविधाएं, आवासीय सुविधाएं, चिकित्सकीय सुविधाएं इत्यादि ।

(ii) सार्वजनिक व्यवहार को नियमित करने के लिए मांगें (Demands for the Regulation of Public Behaviour): जैसे बाजार का नियंत्रण, सार्वजनिक सुरक्षा के कानून, विवाह-तलाक के कानून, सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं सफाई के नियम इत्यादि की मांगे।

(iii) राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने की मांगें (Demands for Participation in the Poli System): जैसे मतदान का अधिकार, चुनाव लड़ने का अधिकार, सार्वजनिक पद ग्राम करने का प्रदर्शन करने का अधिकार, सार्वजनिक अधिकारियों के समक्ष याचिकाएं देने का अधिकार, सरकार की का अधिकार इत्यादि।

(iv) संचार एवं सूचना प्राप्त करने सम्बन्धों मांगें (Demands for Communication Information):-सरकार से सूचना प्राप्त करने का अधिकार, शासक वर्ग से नीतियों की घोषणा कार अपेक्षा करना, संकट के समय अथवा समारोहों के अवसरों पर राजनीतिक व्यवस्था की शक्ति के प्रदर्शन मांग इत्यादि।

(B) समर्थन (Supports) : राजनीतिक व्यवस्था के संचालन के लिए अथवा इसको बल देने के समर्थनों का होना आवश्यक है। राजनीतिक व्यवस्था के समर्थन वह शक्ति हाती है जो पर्यावरण से राजनीति व्यवस्था में प्रवेश करती है और मांगों को निर्गतों में बदलने की प्रक्रिया में सहायता करती है। समर्थन शा तथा शासन व्यवस्थाओं के प्रति राजनीतिक समुदाय की अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रतिकिया की अभिव्यक्ति क हैं। समर्थन सकारात्मक (Positive) अथवा नकारात्मक (Negative), अभिवृतात्मक या सक्रिय, प्रकट (Mainte तथा अप्रकट (Latent) प्रकार के हो सकते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के चार प्रकार के होते हैं:

(i) भौतिक समर्थन (Material Supports): भौतिक समर्थकों में कर चुकाना, सैनिक सेवा कार सार्वजनिक कार्यों के लिए श्रम करना इत्यादि आते हैं।

(ii) वैधानिक समर्थन (Legal Supports): वैधानिक समर्थनों में कानूनों, नियमों, उपनियमों इत्या का पालन करना इत्यादि सम्मिलित हैं।

(iii) राजनीतिक समर्थनों (Political Supports): राजनीतिक समर्थनों में मतदान करना, राजनीतिक सहभागिता इत्यादि आते हैं।

(iv) सम्मान समर्थन (Deference Supports) : सम्मान समर्थकों में सरकार का संचारण (Camunication), जनसत्ता, प्रतीकों, शिष्टाचार, सार्वजनिक अधिकारियों के प्रति सम्मान भाव इत्यादि सम्मिलित हैं।ईस्टन के अनुसार समर्थन के स्वरूप तथा शैली के निम्न तीन प्रकार हैं:

(i) प्रकट (Overt) अथवा गुप्त (Covert)

(ii) सकारात्मक (Positive) अथवा निषेधात्मक (Negative)

(iii) विस्तृत एवं व्यापक (General and wide spread) अथवा विशिष्ट (Particular or special)

समर्थन के स्तर (Level of Support): ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था के समर्थन के लि तीन स्तर हैं:

(i) राजनीतिक समुदाय (Political Community)

(ii) शासन (Regime)

- (iii) अधिकारी वर्ग (Authorities)

राजनीतिक व्यवस्था के लिए डेविड ईस्टन ने मांग एवं समर्थन दोनों को महत्त्वपूर्ण माना है। राजनीतिक व्यवस्था में मांगें, गतिशीलता तथा निरन्तरता प्रदान करती हैं। समर्थन राजनीतिक व्यवस्था की कार्यक्षमता और योग्यता अथवा शक्ति को बढ़ाते हैं। मांगों तथा समर्थनों के वीच संतुलन की स्थापना अनिवार्य रूप में होनी तक चाहिए अन्यथा राजनीतिक व्यवस्था असफल हो सकती है अथवा टूट सकती है। केवल यही नहीं, जब राजनीतिक व्यवस्था में मांगें नहीं उठेंगी तब तक उसे समर्थन प्राप्त नहीं होगा। अतः मांगो को निर्गतों में बदलने के लिए राजनीतिक व्यवस्था को समर्थन की आवश्यकता तथा समर्थन प्राप्त करने के लिए मांगों का होना अनिवार्य है।

यदि राजनीतिक व्यवस्था को कब समर्थन प्राप्त होगा तो इससे राजनीतिक व्यवस्था की कार्य क्षमता में कभी का आ जायेगी। इसको राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन बोझ (Support Stress) कहते हैं प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था समर्थन बोझ को कम करने का प्रयास करती है। राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता तथा निरंतरता को रखने के लिए समर्थन बोझ को समाप्त करना अनिवार्य है। राजनीतिक व्यवस्था की स्थिरता के समर्थन देता को यह पर्याप्त समर्थन का होना नितान्त अनिवार्य है। यदि राजनीतिक समुदाय के समर्थन में कमी आ जाये तो राजनीतिक व्यवस्था में अस्थिरता पैदा हो जायेगी। राजनीतिक समुदाय विद्यमान रहता है परन्तु शासन (Re gime) तथा अधिकारी वर्ग (Authorities) में समयानुसार परिवर्तन होता रहता है।

2. मांगों का रूपान्तरण (Conversion of Demands) : रूपान्तरण प्रक्रिया उन संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा अन्तर्कियाओं द्वारा बनती है जिनके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था निवेशों-मांगों तथा समर्थनों को निर्गतों-अधिकृत मूल्यों में रूपान्तरित करती है। राजनीतिक व्यवस्था में प्रस्तुत की गई प्रत्येक मांग ययावत् रूप में निर्गत नहीं बनती। वास्तव में राजनीतिक व्यवस्था में कई बार तो ऊट-पटांग मांगें भी उठाई जाती हैं। कई बार मांगों की मात्रा, तीव्रता, स्रोत तथा विषय-वस्तु राजनीतिक व्यवस्था पर इतना दबाव डालती है कि राजनीतिक व्यवस्था पर अतिभार (Over Load) उत्पन्न हो जाता है। इसलिए नियामक तंत्रों (Regulatory Mechanism) की आवश्यकता भी पड़ती है। ये नियामक तंत्र कई प्रकार के होते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित है :

(i) संरचनात्मक तन्त्र (Structural Mechanism): इसके द्वारा मांगों के स्वरूपीकरण को नियमित - कारक द्वारपालक (Gatekeeper) का कार्य किया जाता है।

(**ii) सांस्कृतिक तंत्र (Cultural Mechanism):** इसके द्वारा राजनीतिक सांस्कृतिक मूल्यों (Values),विश्वाशों (Beliefs) तथा मानकों (Norms) को निश्चित करके मांगों का औचित्य सिद्ध किया जाता है।

(iii) संचार व्यवस्था (Communication Channels): संचार तंत्र की संख्या तथा क्षमता को बढ़ाकर नियमन की संभावनाओं को बढ़ाया जा सकता है।

(iv) न्यूनीकरण प्रक्रियाएं (Reduction Processes): न्यूनीकरण प्रक्रियाओं में एकीकरण, संयुक्तीक अथवा किया विधियां इत्यादि के प्रक्रियाएं आती है जिनके जरिया में उत्पन्न होने वाली मांगों को कम किया जा सकता है।

राजनीतिक व्यवस्था में उत्पन्न होने वाली सभी मार्ग निर्मलों में स्यान्तरित ना होती। असं मगि होती हैं और समाप्त हो जाती हैं। उनको कभी राजनीतिक निर्णयकों के स्तर पर उठाया ही नहीं जाता है। कुछ मांगों को निर्णयकों के स्तर पर उठाया जाता है और उनको राजनीतिक व्यवस्था में डाला जाता है परन्तु उनमें से कुछ मांगें रूपान्तरण प्रक्रिया में ही समाप्त हो जाती हैं। मांगों एवं समर्थनों के सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था चार प्रकार की कार्यवाही करती है।

(i) सकारात्मक अथवा नकारात्मक ढंग अर्थात कुछ मांगें स्वीकार कर ली जाती है और कुछ अस्वीकार कर दी जाती हैं।

(ii) सामान्य ढंग अर्थात अधिकांश मांगों को सर्वप्रथम सामान्य मांगों में बदला जाता है और सामान्य नियम बनाकर सामान्य समाधान कर दिया जाता है।

(ii) सामान्य हित अर्थात् अनेक मांगों को सामान्य हित की मांगों में बदल दिया जाता है और सामान्य नियम बनाकर सामान्यहित में सामान्य समाधान कर दिया जाता है।

(iv) लोकहित अर्थात् असंख्य उत्पन्न मांगों में से लोकहित की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं की कसौटी पर रखकर संख्या कम कर दी जाती है अर्थात् लोकहित में जिन्हें आवश्यक समझा जाता है। उनको घटाकर सामान्य हित में बदलकर सिद्धांत निर्माण कर दिया जाता है।

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में रूपान्तरण प्रक्रिया का अपना विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विरोध कम होता है और समर्थन बढ़ता है अथवा समर्थन कम होता है और विरोध बढ़ता है। यदि निर्णयकर्ता जनता की औचित्यपूर्ण एवं तर्कसंगत मांगों को न माने तो राजनीतिक व्यवस्था शासकों एवं निर्णयकों के विरुद्ध जनमत हो जाता है और समर्थन घट जाता है। समर्थन के कटाव को रोकने के लिए नियमक तंत्रों (Regulatory Mechanism) की व्यवस्था की जाती है तथा समर्थकों एवं समर्थनों भंडार बनाने की आवश्यकता भी है। राजनीतिक व्यवस्था में लचीलापन भी होना चाहिए। दमनकारी शक्ति वार्तालाप के साधनों का प्रयोग भी किया जाता है।

- **निर्गत (Output)-** निर्गत, वे उत्पादित वस्तुएं अथवा सेवाएं अथवा नीतियां हैं, जो आगत के रूपांतरण के बाद प्राप्त होती हैं। आगत को समर्थन के सूत्र के साथ राजनैतिक सत्ता तंत्र के समक्ष निर्णयन हेतु रखा

जाता है और उन विभिन्न माँगों के सापेक्ष राजनैतिक सत्ता द्वारा लिया गया निर्णय, निर्गत की श्रेणी में आता है।

- **पुनर्निवेश (Feedback)-** निर्गत का उद्देश्य, विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उपजी हुयी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। निर्गत के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में, नीतियों, वस्तुओं और सेवाओं के रूप में नवीन तत्वों के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवस्था के बारे में राजनीतिक व्यवस्था में जो पुनः मत अथवा माँग के रूप में अभिव्यक्ति अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसे पुनर्निवेश कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सम्पादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन-चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता रहता है।
- **पर्यावरण (Environment)-** राजनीतिक व्यवस्था सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में अन्य व्यवस्थाओं जैसे कि- आर्थिक, धार्मिक आदि की तरह ही एक उपव्यवस्था है। पर्यावरण द्वारा इसकी अन्य सहयोगी उप-पद्धतियों का बोध होता है। कोई भी व्यवस्था एक निश्चित पर्यावरण में ही कार्य करती है अथवा दूसरे शब्दों में किसी भी व्यवस्था के संचालित होने के निमित्त एक पर्यावरण आवश्यक होता है। आंतरिक सामाजिक पर्यावरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक व्यवस्था वातावरण, मानव जनित क्रियाकलापों और सामाजिक पद्धतियों से प्रभावित होता है।

3.4.3. निवेश-निर्गत प्रतिमान की उपयोगिता अथवा महत्त्व (Utility or Significance of Input-Output Model)

आरेन आर. यंग (Oran R. Young), (यूजीन मीहान), (Eugene Meehan), रोजन स्कॉट (रोजन स्कॉट),) इत्यादि विद्वानों के अनुसार निवेश-निर्गत प्रतिमान अथवा व्यवस्था विश्लेषण प्रतिमान की जानका अथवा महत्त्व निम्नलिखित है:

- संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करना (Central Focus on the Entire Political System): व्यवस्था विश्लेषण के द्वारा संपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का अवलोकन किया जा सकता है, क्योंकि उसमें केवल राजनीतिक व्यवस्था के भागों एवं उपभागों पर ही बल नहीं दिया जाता है।
- सभी प्रकार की विचारधाराओं पर आधारित व्यवस्याओं पर लागू होना (Applicable on the Political Systems of based on all types of Ideologies): डेविड ईस्टन निवेश-निर्गत प्रतिमान किसी विशेष

विचारधारा की ओर अभिमुखी नहीं है। यही कारण है कि इसके आधार पर विभिन्न विचारधाराओं पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जा सकता है अर्थात् इस दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न विचारधाराओं पर आधारित राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलनाएं एवं विश्लेषण संभव हैं।

- राजनीतिक व्यवस्था का ज्ञान (Knowledge about the Political System): यह सिद्धांत हमें राजनीतिक व्यवस्था का संपूर्ण ज्ञान देता है। इसके आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की व्यवस्थायी सातत्य (Systematic Persistence), राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता एवं योग्यता, राजनीतिक व्यवस्था में उठने वाले उत्पातों, अस्थिरताओं, संभावित अस्थायित्वों इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक है और उनके बचने के लिए कार्यवाही करना संभव हो सकता है।

ओरेन आर. यंग के अनुसार "राजनीतिक प्रश्नों पर अनुकूलता की समस्या के स्पर्धा किये बिना समुचित तरीके से व्यवस्या लागू करने की विभिन्न समस्याओं से निपटने के लिए यह सुयोग्य है।"

राजनीतिक विश्लेषणों को नवीन दिशा (New Directions to the Political Analysis): डेविड ईस्टन ने निवेश तत्त्वों, निर्गत तत्त्वों और प्रति संभरण प्रक्रिया के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था और पर्यावरण में यथार्थवादी सम्बन्ध करके राजनीतिक विश्लेषणों को नवीन दिशा प्रदान की है। रोजर स्कॉट (Roger Scott) के अनुसार ईस्टन ने राजनीतिक विज्ञान के विकास पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है।

- राजनीति के अध्ययन के लिए अच्छा संरचनात्मक ढांचा प्रदान करना (To Provide good Structural Frame work for the study of Politics): ईस्टन द्वारा निवेश निर्गत विश्लेषण राजनीति के अध्ययन के लिए एक अच्छा संरचनात्मक ढांचा (Conceptual विशेष प्रक्रिया को उचित के अध्ययन के लिया कताओं एवं शोधार्थियों की खोज करने के लिए विशेष प्रक्रिया को उचित, स्पष्ट व्यवस्थित वैचारिक तथा निश्चित संकल्पनाएं प्रदान करता है।
- सामान्य कार्यात्मक सिद्धांत प्रदान करने का प्रयास (An effort to Provide General Fun tional Theory) : यूजीन मीहान के अनुसार "राजनीतिक विज्ञान में व्यवस्था विश्लेषण। का आधार रखने की राजनीति का एक सामान्य कार्यात्मक सिद्धांत प्रदान करने के कुछ संपूर्ण प्रयासों में एक प्रयास इंस्टन द्वारा प्रक किया।"

- तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण के लिए लाभदायक (Useful for the Comparatin Political Analysis) : डा. एस.पी. वर्मा के अनुसार "इंस्टन द्वारा प्रस्तुत की गई वैचारिक संरचनाही संकल्पनाओं और संवगों का एक सुंदर और समायोजित समुच्चय है जो तार्किक दृष्टि से अकाट्य है और जिस सहायता से समस्त राजनीतिक व्यवस्वाओं पर एक तुलनात्मक विहंगावलोकन के लिए काफी सुविधा हो गई। स

कम से कम सैद्धांतिक स्तर, यह पद्धति कुछ विशेष प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं अथवा विशेष प्रकार के है सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्थों के तुलनात्मक अध्ययन तक ही सीमित नहीं है।"

3.4.4. निवेश-निर्गत सिद्धांत की सीमाएं (Limitations of Input-Output Theory)

निवेश-निर्गत सिद्धांत की उपयोगिता और विशेषताओं के बावजूद इसकी कुछ सीमाएं भी दिखायी देती हैं जो विभिन्न आलोचकों के विचारों में भी अभिव्यक्त होता है। पॉल क्रेस के शब्दों में, "ईस्टन का सिद्धांत राजनीति का सारहीन दर्शन है।" ग्वीशियानी के अनुसार, "यह सिद्धांत यथास्थितिवाद को पुष्ट करता है।" लिप्सन के अनुसार ईस्टन का सिद्धांत 'यांत्रिक व्याख्या' है। ईस्टन के निवेश निर्गत सिद्धांत की कमियों को निम्न रूप में देख सकते हैं-

- यथास्थितिवाद- ईस्टन का सिद्धांत व्यवस्था को बनाए रखने पर बल देता है, यह व्यापक परिवर्तन और क्रांति का विश्लेषण नहीं करता है।
- मानवीय तत्व की उपेक्षा- ईस्टन द्वारा व्यवस्था में प्रक्रिया तथा अंतः क्रिया पर विशेष बल दिया गया है, जिससे मानवीय तत्व की उपेक्षा प्रतीत होती है।
- राजनीतिक तत्व की उपेक्षा- ईस्टन के सिद्धांत में सामाजिक पर्यावरण के विशद और व्यापक तत्वों को समाहित किया गया है, जिससे राजनीतिक तत्व की उपेक्षा का भान होता है। पर्यावरण में उपस्थित अनेक तत्वों को राजनैतिक स्वरूप में मानने में कठिनाई होती है।

यह सिद्धांत अपनी तमाम आलोचनाओं के बावजूद राजनीतिक सिद्धांत को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। इस सिद्धांत ने तुलनात्मक राजनीति और विश्लेषण की अवधारणा के विकास में नवीन मानदण्ड स्थापित किया है। यथास्थिति को लेकर होने वाली इसकी आलोचना पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था के अंदर क्रिया और अंतः क्रिया निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया को

गतिशील बनाए रखता है और व्यवस्था के स्थायित्व को भी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यस्था के अंदर क्रियाएं और अंतः क्रियाएं भी मानवीय तत्वों के कारण ही संभव है, अतैव यह आलोचना भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के साथ ही अपने अस्तित्व और विकास के लिए एक साथ कई भूमिकाओं का निर्वहन करता है जिससे कई बार भूमिकाएं मिश्रित स्वरूप में दिखायी देती हैं। विभिन्न अंगों की इकाई के रूप में कार्य करते हुए वह एक राजनैतिक इकाई के रूप में भी कार्य करता है अतएव राजनैतिक तत्वों की उपेक्षा किसी भी व्यवस्था में और विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था में संभव प्रतीत नहीं होता। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित निवेश-निर्गत सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांतों को एक नए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का माध्यम उपलब्ध कराया जिससे भिन्न-भिन्न परिवेश में कार्य रहे राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक ही सार्वभौमिक मापदण्ड पर विश्लेषित किया जा सके। इसके साथ कुछ ऐसे सार्वभौमिक तत्वों और प्रक्रियाओं की पहचान की जो समस्त व्यवस्थाओं में सामान्य और अनिवार्य रूप से पाए जाते हों।

3.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

(अ). "दि पॉलिटिकल सिस्टम एन इंक्वायरी इनटू द स्टेट ऑफ पॉलिटिकल साईस" किताब के लेखक कौन है?

(आ).सामान्य व्यवस्था सिद्धांत की संकल्पना करने वाले सर्वप्रथम जीवविज्ञानी शास्त्री कौन थे?

(इ)."डेविड प्रथम राजनीतिक शास्त्री हैं, जिन्होंने राजनीति को स्पष्टतया व्यवस्था के रूप में विश्लेषण किया है यह कथन किस विद्वान का है ।"

(ई).राजनीति विज्ञान में व्यवस्था सिद्धांत प्रयोग किस विद्वान ने किया ?

(उ).डेविड ईस्टन किस देश के मूल नागरिक थे?

3.6. सारांश (Summary)

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत, राजनीतिक सिद्धांत के आधुनिकीकरण की दिशा में एक मील का पत्थर है। व्यवस्था सिद्धांत ने न सिर्फ विश्लेषण के निमित्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य उपलब्ध कराया, अपितु राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के कुछ सर्वमान्य सिद्धांतों और तत्वों की भी पहचान की। नीति

विश्लेषकों के द्वारा ईस्टन के सिद्धांत के पाँच चरणों यथा आगत, रूपांतरण, निर्गत, पुनर्निवेश तथा पर्यावरण के द्वारा नीतियों का विश्लेषण और अध्ययन किया जाता है जिससे नीतिगत निर्माण की प्रक्रिया को बेहतर बनाने में सहायता मिल सके। राजनीति की गत्यात्मकता और उसकी विभिन्न अंतः क्रियाओं को भी इस सिद्धांत द्वारा समझ पाने में सहायता प्राप्त हुयी। डॉ० एस० पी० वर्मा ने ईस्टन के राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण उपागम की दो विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रथम, इस विश्लेषण पद्धति में सन्तुलन दृष्टिकोण से आगे तक जाकर व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों और गत्यात्मकताओं पर ध्यान दिया गया है। यह व्यवस्था को ऐसी निरंतरता मानता है जिसमें विभिन्न तत्वों और पर्यावरण में अदान प्रदान बना रहता है तथा व्यवस्था की अनुकूलन क्षमता बढ़ती रहती है। दूसरा, इसके द्वारा प्रस्थापित प्रत्ययों, प्रविधियों और अवधारणओं के माध्यम से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक व्यवस्था का तुलनीय अवलोकन संभव हो पाता है।

ईस्टन ने राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में परिभाषित किया है, इस रूप में मूल्य कितने आधिकारिक हैं और इनका आवंटन किस प्रकार हुआ है, इसको समझने में डेविड ईस्टन का यह निवेश-निर्गत सिद्धांत महत्वपूर्ण है। ईस्टन का राजनीतिक व्यवस्था का यह सिद्धांत निश्चित रूप से राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

3.7. सूचक शब्द (Key Words)

- **निवेश -** राजनीतिक व्यवस्था के अंदर जो मांग और समर्थन विभिन्न माध्यमों/संरचनाओं से आता है, उसे राजनीतिक व्यवस्था का निवेश कहा जाता है।
- **रूपांतरण-** राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता हैउसे रूपांतरण कहा जाता है।
- **निर्गत-** राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।
- **पर्यावरण-** जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग, समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

- **समर्थन -** राजनीतिक व्यवस्था को अपने आप को सुचारू रूप से संचालित करने एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की वैधता स्थापित करने के निमित्त समर्थन की ओवश्यकता होती है जो उस राजनैतिक व्यवस्था के पर्यावरण से प्राप्त होती है।
- **पुनर्निवेश -** निर्गत के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में, नीतियों, वस्तुओं और सेवाओं के रूप में नवीन तत्वों के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवस्था के बारे में राजनीतिक व्यवस्था में जो पुनः मत अथवा माँग के रूप में अभिव्यक्ति अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसे पुनर्निवेश कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सम्पादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन-चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता रहता है।

3.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

- डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा व विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में आगत, निवेश, रूपांतरण और निर्गत की प्रक्रिया वर्णन कीजिए।
- डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित निवेश-निर्गत विश्लेषण सिदान्त की उपयोगिता व सीमाओं का वर्णन कीजिए।

7-9- उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

(अ). डेविड ईस्टन (David Easton)

(आ). लुडविग वॉन बर्टलेन्फी (Ludwig Von Bertallaniy)

(इ). ऑमण्ड एवं पॉवेल

(ई). डेविड ईस्टन (David Easton)

(उ).कनाडाई मूल के

3.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।

- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ . बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज , अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी . गेना , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी . जौहरी , स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।
- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

Subject : Political Science(Comparative politics)	
Course Code : POLS 301	Author **: Dr. Parveen sharma**
Lesson No. : 4	Vetter **:**
राजनीतिक विकास (लुसियन डब्ल्यू. पाई), राजनीतिक संस्कृति (जी. आलमंड) **Political Development (Lucian W. Pye), Political Culture (G. Almond).**	

अध्याय की सरंचना

4.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

4.2.परिचय (Introduction)

4.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

4.3.1.राजनीतिक विकास की अवधारणा का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of the concept of political development)

4.3.2.राजनीतिक विकास की व्याख्या (Interpretation of Political Development)

4.3.3.राजनीतिक विकास की प्रकृति (Nature of political development) 4.3.4.राजनीति विकास के प्रतिरूप (Models of political development)

4.3.5.राजनीति विकास के सूचक (Indicators of political development)

4-4 पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

4.4.2. राजनीतिक संस्कृति के संघटक (Components of Political Culture)

4.4.1.राजनीतिक संस्कृति का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of political culture)

4.4.3.राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति व विशेषताएं(Nature and Features of Political Culture)

4.4.4. राजनीतिक संस्कृति के प्रकार (Types of Political Culture)

4.4.5.राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व (Determinants of Political Culture)-

4.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

4.6.सारांश (Summary)

4.7.सूचक शब्द (Key Words)

4.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

4.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

4.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी-

- तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक विकास दृष्टिकोण की उत्पत्ति एवं विकास को जान सकेंगे।
- राजनीति का अध्ययन करने के लिए राजनीतिक विकास का एक दृष्टिकोण के रूप में विश्लेषण कर सकेंगे ।
- राजनीतिक विकास दृष्टिकोणों क महत्व का आंकलन करने में सक्षम हो सकेंगे ।

4.2.परिचय (Introduction)

राजनीतिक विकास को तुलनात्मक राजनीत्ति के एक उपक्षेत्र के रूप में 1960 के दशक में मान्यता मिली। इसकी जड़ें आधुनिकीकरण सिद्धांत में हैं, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात के वर्षों में सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। आधुनिकीकरण सिद्धांत के सामाजिक विज्ञान में एक नए प्रतिमान के रूप में उभरने के साथ, तुलनात्मक राजनीति पर अध्ययन आर्थिक विकास, सामाजिक परिवर्तन एवं लोकतंत्रीकरण के मध्य संबंधों के साथ पूर्व से ही तल्लीन हो गया। 1960 के दशक के आरम्भ में

जब राजनीतिक आधुनिकीकरण अमेरिका में तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन का विषय बन गया, तो इस शब्द का उपयोग राजनीतिक विकास के पर्याय के रूप में किया जाने लगा। राजनीतिक विकास को लोकतांत्रिक राजनीति के एक और संक्रमण के रूप में देखा गया, जैसा कि हित समूहों की गतिविधि में वृद्धि, नौकरशाही और राजनीतिक दलों के विकास एवं लोकतांत्रिक संस्थानों की क्षमताओं के विकास में दिखाई देता है।

4.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

4.3.1.राजनीतिक विकास की अवधारणा का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of the concept of political development)

समाज में परिवर्तन आने की प्रक्रिया को विकास कहा गया है। लेकिन समाज में कई तरह के परिवर्तन आते हैं। राजनीतिक परिवर्तन उनमें से एक है राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया राजनीतिक विकास की संज्ञा दी जाती है। इसलिए **डेविस तथा लेविस ने कहा है**, "राजनीतिक संस्थान बदलते हैं और राजनीतिक मूल्य बदलते है।" कुछ समाजों में परिवर्तन क्रांन्तिकारी तरीकों से आता है। और कुछ में यह सहज ढंग या विकासवादी प्रक्रिया से आता है। अतः राजनीतिक व्यवस्थाओं के बीच आने वाले परिवर्तन का विश्लेषण करने के लिए राजनीतिक विकास किया गया है।

ल्यूसिन पाई, आमण्ड, कोलमैन, रिग्स और माइनर वीनर, डेविड ऐप्टर, एस० पी० हॉन्टिंगटन, राबर्ट टी० होल्ड, एस० एम० लिप्से, सिडनी वर्ग आदि विद्वान् इस प्रत्यम के प्रयोग में लगे जो विकास की सम्पूर्णता के सन्दर्भ में नए राज्यों की राजनीतिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक हों। इन विद्वानों ने राजनीतिक विकास के प्रत्यय का प्रयोग इस प्रकार किया, जिससे राजनीतिक परिवर्तनों को समझा जा सकें।

विलियम चैम्बर्स (William Chambers) के अनुसार, 'राजनीतिक विकास को एक ऐसी आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था की ओर अग्रसर समझा जा सकता है जिसमें उन समस्याओं का समाधान ढूंढने की क्षमता हो जिनका उसे सामना करना पड़ता है। उसमें संरचनाओं का निवेदन और कार्यों की विशिष्टता होती है।"

अल्फ्रेड डायमंड के शब्दों में, "राजनीतिक विकास एक एसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के नए प्रकार के लक्ष्यों का निरंतर सफल रूप में प्राप्त करने की क्षमता बनी रहती है।"

मैकेंजी (Mackenzie) के अनुसार, "राजनीतिक विकास समाज में उच्चस्तरीय अनुकूलन के प्रति अनुकूलन होने की क्षमता है।"

एस० एन० इजेनस्टेड (M.N. Eisenstade) "राजनीतिक विकास के अन्तर्गत राजनीतिक व्यवस्था के विविध मार्गो तथा संगठनों को आत्मसात करने की योग्यता है। इसमें नवीन व परिवर्तित समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने की योग्यता भी शामिल है। जिनको व्यवस्था जन्म देती हो अथवा जो इसे बाह्य स्त्रोतों से आत्मसात करनी पड़ती है।"

राजनीति विकास की परिभाषाएं (Definitions of political development)-ल्यूशियन पाई 'राजनीतिक विकास संस्कृति का। विसरण और जीवन के पुराने प्रतिम्सनों को नई मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ मिलाने या उनके। साथ सामंजस्य बैठाना है।

आमंड और पावेल "राजनीतिक विकास राजनीतिक संरचनाओं की अभिवृद्धि, विभेदीकरण तथा राजनीतिक संस्कृति का बढ़ा हुआ लौकिकीकरण है।"

जागवाराइव "राजनीतिक विकास एक प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक आधुनिकीकरण राजनीतिक संस्थाकरण का जोड़ है।"

4.3.2.राजनीतिक विकास की व्याख्या (Interpretation of Political Development)

विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक विकास व उसके विश्लेषण के बारे में भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए हैं। सभी अपने-अपने ढंग से राजनीतिक विकास के विश्लेषण सम्बंधी विचार प्रकट किए हैं। राजनीतिक विकास की विभिन्न व्याख्याओं का वर्णन निम्नलिखित है:-

- **राजनीतिक विकास आर्थिक विकास का राजनीतिक पूर्व शर्त है (Political development is the political pre- requisite of economic development)-** प्रथम व्याख्या के अनुसार राजनीतिक विकास आर्थिक विकास की पूर्व शर्त है। दूसरे शब्दों में राजनीतिक विकास राजनीतिक को ऐसी स्थिति है

जो आर्थिक उन्नति में सुविधा पहुंचा सके। इसका अर्थ है कि राजनीतिक विकास और आर्थिक विकास में गहरा संबंध है। राजनीतिक विकास और आर्थिक समस्याओं का समाधाद्ध करने के लिए राजनीतिक परिस्थितियों का अनुकूल बनाना आवश्यक है।

- **राजनीतिक विकास औद्योगिक समाजों की विशिष्ट राजनीति के रूप में (Political development as the politics typical of industrial society)-** दूसरी व्याख्या राजनीति विकास को औद्योगिक समाजों की विशिष्ट राजनीति के रूप में प्रकट करती है यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि औद्योगिक जीव न्यूनाधिक रूप से एक ऐसे सामान्य प्रकार के राजनीतिक जीवन को प्रकट करता हैं जिसे कोई भी समाज प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है, चाहे वास्तव में वह औद्योगीकृत हो या नहीं। अतः प्रत्येक औद्योगिक समाज राजनीतिक कार्य-संचालन के लिए विशेष मापदण्ड प्रस्तुत करता है जो कि राजनीतिक विकास में सहायक होते हैं तथा सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए विकास के समुचित लक्ष्यों का प्रतिनिधित्त्व करते हैं।
- **राजनीतिक विकास राष्ट्रीय राज्य के व्यवहार के रूप में (Political Development is the form of behaviour of the nation state)-** तीसरी व्याख्या के अनुसार राष्ट्रीय राज्य आधुनिकता और राजनीतिक विकास दोनों के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीयता की भावना राजनीतिक विकास का ज्वलन्त चिन्ह है और इसलिए कभी-कभी राजनीतिक विकास को राष्ट्रवाद की राजनीति कह दिया जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि राष्ट्रवाद राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है, किन्तु पर्याप्त नहीं।
- **राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण का रूप है (Political Development is Modernization)-**चौथीव्यवस्था में राजनीतिक विकास को राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है. अर्थात् यह राजनीतिक आधुनिकीकरण का समानार्थक है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों की मान्यता है कि जिन देशों में लोकतंत्र है, वहां की जनता देश की राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेती है। जन्म से अधिक योग्यता को महत्त्व दिया जाता है और जहां स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाओं का अस्तित्त्व है, वहां राजनीतिक आधुनिकीकरण है तथा इस प्रकार के देशों अथवा ऐसी राजनीतिक व्यवस्थाओं को राजनीतिक रूप से विकरित समझा जाना चाहिए। इस मत के समर्थक पश्चिमी व्यवहार और व्यवस्था को आधुनिक मानते हैं तथा उसे सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के एक मापदण्ड के रूप में लेते हैं। राजनीतिक

विकास पूर्ण रूप से आधुनिक नहीं है क्योंकी पश्चिमी देशों में विकास के नए-नए मुद्दे पैदा हो रहे है। जैसे पर्यावरण उन्मुलन, शोषण तथा अमानवीयता के चिन्ह तथा आणविक युद्ध की सम्भावना को कम करना आदि।

- **राजनीतिक विकास प्रशासकीय और वैधानिक विकास के रूप में (Political Development is the form of Administration and Legislative Development)-** किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को कुशलता पूर्वक कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि वहां की शासन प्रणाली और कानून सूक्ष्म होने चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि राजनीतिक विकास के लिए प्रशासकीय संस्थाएं इस प्रकार से कुशल व विकसित होनी चाहिए कि वे अपने सामने आने वाली हर समस्या का समाधान निकाल सकें और प्रशासन को कुशलता पूर्वक चला सकें।
- **राजनीतिक विकास बहुसंख्यक जन समुदाय के योगदान के रूप में (Political Develpment is the Contribution of Majority Community)-**छठी व्याख्या के अनुसार राजनीतिक विकास बहुसंख्यक जन सुदाय के योगदान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जहां जनता राजनीति में अधिक सक्रिय है, वहां राजनीतिक के लक्षण हैं। चुनाव, राजनीतिक समस्याएं, प्रचार, प्रदर्शन आदि राजनीतिक विकास के चिन्ह माने जाते हैं। ल्यूसिन पाई का कहना है कि यद्यपि अधिकाधिक लोगों द्वारा राजनीति में भाग लेना निश्चय ही राजनीतिक विकास का प्रतीक है, किन्तु लोकप्रिय भावनाओं को सार्वजनकि व्यवस्था के साथ सन्तुलित करने की अनिवार्यता का ध्यान रखना होगा, अथवा इसका प्रभाव भ्रष्टाचार पुर्ण निकलेगा।
- **राजनीतिक विकास लोकतंत्र का निर्माण है। (Political Development is establisment of Democracy**)-सातवीं व्याख्या के अनुसार लोकतंत्र की स्थापना और विकास को राजनीतिक विकास माना जाता है। लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण किया जाता है तथा लोकतांत्रिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए अधिकाधिक प्रयास किए जाते हैं। विभिन्न शासन प्रणालियों में लोकतंत्र को सबसे उत्तम शासन प्रणाली माना जाता है। और विकास की प्रक्रिया द्वारा जहां लोकतंत्र नहीं है, वहां लोकतंत्र स्थापित किया जाता हैं और जहां लोकतंत्र है वहां उसकी संस्थाओं को अधिक कार्यकुशल और दृढ़ बनाया जाता है।

- **राजनीतिक विकास सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के रूप में (Political Development as a Social and Economic Change)** आठवी व्याख्या के अनुसार राजनीतिक विकास सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन है। देश की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति ही राजनीतिक विकास से सम्बन्धित है। समाजिक या आर्थिक परिवर्तन या विकास शासन में स्थायित्त्व पर निर्भर करता है। स्थायित्त्व का अर्थ है कि शासन प्रणाली में जल्दी-जल्दी परिवर्तन न आए और जो परिवर्तन लाए जाए, वे व्यवस्थित रूप से लाए। जो स्थायित्त्व केवल स्थिरता और यथास्थिति का समर्थन करता हो, उसे विकास नहीं कहा जा सकता है। स्थायित्त्व का अर्थ विकास से तभी लिया जा सकता है जब वह आर्थिक एवं समाजिक प्रगति से सम्बन्धित हो।
- **राजनीतिक विकास गतिशीलता और शक्ति का रूप है (Political Development as Mobility and force)**-नौवें दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक विकास को गतिशीलता और शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुछ विद्वानों द्वारा यह कहा गया है कि शासन में गतिशीलता लाना और शक्ति को बढ़ाना ही राजनीतिक विकास है। किसी भी शासन व्यवस्था को प्राकृतिक साधनों व मानवीय संसाधनों का प्रयोग करके गतिशील बनाया जा सकता है। यही नहीं शासन को शक्तिशाली बनाना भी आवश्यक है क्योंकि शक्तिशाली शासन ही अपने सामने आई विभिन्न समस्याओं का समाधान कुशलता पूर्वक ढूंढ सकता है। राजनीतिक विकास का पक्ष भी लोकतंत्र की स्थापना तथा उसे दृढ़ बनाने की और इशारा करता है क्योंकि लोकतंत्रीय व्यवस्था में जन-साधारण का अधिकाधिक समर्थन शासनतंत्र को प्राप्त होता है।
- **राजनीतिक विकास का बहुपक्षीय रूप (Multidimensial View of Political Development)** अन्तिम दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक विकास बहुमुखी सामाजिक परिवर्तन का एक पहलू है। इस विचार के राजनीतिक विकास को हम विकास के अन्य पहलुओं से सम्बन्धित करते है। समाज में जैसे-जैसे सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन आते रहते हैं तो उनके साथ-साथ राजनीतिक विकास होता रहता है अर्थात् राजनीतिक विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

उपरोक्त दस व्याख्याओं के आधार पर राजनीतिक विकास के कई धाराणायें सामने आती हैं। राजनीतिक विकास को राष्ट्रीय आत्मसम्मान व अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रतिष्ठा भी समझा जा सकता है। राजनीतिक विकास, इन सभी विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस धारणा की परिभाषा करना काफी कठिन है।

4.3.3.राजनीतिक विकास की प्रकृति (Nature of political development)-

राजनीतिक विकास की प्रकृति के विषय में तीन दृष्टिकोण प्रचलित है-

- एकमार्गीय
- बहुमार्गीय
- द्वंद्वात्मक

ल्यूशियन पाई ने अपनी पुस्तक एस्पेक्ट्स आफ पॉलीटिकल डेवलपमेंट 1966 में राजनीति विकास की प्रकृति के संबंध में निम्न उल्लेख किया है-

- आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्व शर्त के रूप में राजनीति विकास अर्थात राजनीति विकास एक ऐसी स्थिति को कहा गया है, जो आर्थिक उन्नति, प्रगति और समृद्धि में सहायक है।
- औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति के रूप में राजनीति विकास अर्थात औद्योगिक विकास राजनीति विकास से जुड़ा हुआ है। रोस्टॉव ने इन दोनों को परस्पर संबंधित बताकर राजनीति विकास को समझाया है।
- राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप में राजनीति विकास अर्थात राजनीतिक विकास राजनीतिक आधुनिकीकरण का ही एक रूप है। इसमें इन दोनों को समानार्थी मानकर राजनीति विकास की व्याख्या दी गई है।
- राष्ट्रीय राज्य के प्रचालक के रूप में राजनीतिक विकास, इसमें राष्ट्रीयता की भावना और एक राष्ट्रीय राज्य के निर्माण से राजनीति विकास को जोड़ दिया जाता है।
- प्रशासकीय और विधिक विकास के रूप में राजनीति विकास इसमें राजनीतिक विकास को राजनीतिक संरचनाओं के विभेदीकरणण और विशेषीकरण कानूनों के माध्यम से विधि के शासन की स्थापना के रूप में समझा जाता है।
- जनसंचार और सहभागिता के रूप में राजनीतिक विकास, इसमें राजनीतिक विकास में जनसंचार और लोगों की सहभागिता बढ़ जाना सम्मिलित किया जाता है।

- लोकतंत्र के निर्माण के रूप में राजनीतिक विकास, इसके अनुसार राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को प्रतियोगी, स्वतंत्र तथा जन सहभागिता के लक्षणों से युक्त करने की प्रक्रिया ही राजनीतिक विकास है।
- स्थायित्व और व्यवस्थित परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास, इसमें राजनीतिक व्यवस्था की उस व्यवस्था को समझा जाता है, जिसमें परिवर्तन की सुनिश्चित और व्यवस्थित प्रविधियां प्रचलित रहती हैं तथा जहां अनावश्यक राजनीतिक उथल-पुथल नहीं होते है।
- शक्ति संचारक के रूप में राजनीतिक विकास, इसमें यह देखा जाता है कि राजनीतिक व्यवस्था विकास के लिए कितनी शक्ति समाज से जुटा पाती है।
- सामाजिक परिवर्तन की बहु-दिशायुक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में राजनीतिक विकास, इसमें राजनीतिक विकास को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जोड़ा जाता है। आमंड, कॉलमैन, कॉर्न होजर आदि ने राजनीति विकास को सामाजिक परिवर्तन की बहू दिशायुक्त प्रक्रिया के एक पहलू के रूप में विवेचित किया है।

4.3.4.राजनीति विकास के प्रतिरूप (Models of political development)-

(अ).राजनीतिक आधुनिकीकरण

(आ). राजनीतिक विकास

(अ).राजनीतिक आधुनिकीकरण-

इस प्रतिरूप के प्रवर्तक 'जेम्स एस. कोलमैन और लूसियन पाई है। यह प्रतिरूप लुसियन पाई और सिडनी वर्षा की कृति पॉलीटिकल कल्बर एंड पॉलीटिकल डेवलपमेंट 1965 में विकसित किया गया है।

लूसियन पाई को राजनीति विकास सिद्धांत का पिता माना जाता है।इस प्रतिरूप में राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण की संकल्पनाओं को मिला दिया गया।इस प्रतिरूप में यह मान्यता निहित है कि 'आधुनिक व्यवस्था राज्य और समाज की समस्याओं को सुलझाने में अधिक कार्यकुशल सिद्ध होती है।' जहां परंपरागत व्यवस्था का मुख्य सरोकार कर संग्रह, कानून और व्यवस्था तथा प्रतिरक्षा से था, वही आधुनिक व्यवस्था सरकार के परंपरागत कार्यों के अलावा अपने नागरिकों के जीवन को उन्नत करने में भी सक्रिय भूमिका निभाती है।

आधुनिक व्यवस्था के अंतर्गत जनसाधारण राजनीति के साथ निकट से जुड़े रहते हैं, अपनी मांगे और विचार सरकार तक पहुंचाने को तत्पर रहते हैं। सरकार की नीतियों के प्रति अपना समर्थन एवं विरोध व्यक्त करते हैं और सरकार अपने नागरिकों का समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए मूलतः वैधता का सहारा लेती है।

इस प्रतिरूप के अनुसार राजनीति विकास के तीन मुख्य लक्षण स्वीकार किए गए है-

I. समानता

II क्षमता

III. विभेदीकरण

इन तीनों के समुच्चय को विकास संलक्षण (Development Syndrome) की संज्ञा दी जाती है।

I. समानता-जनता राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को निरूपित करने वाली और उसमें सहभागी बन जाए।,जनता राजनीतिक प्रक्रियाओं में अधिकाधिक रुचि लेने लग जाए, जनता में समानता के सिद्धांतों के प्रति अधिक संवेदनशीलता आ जाए, सर्वव्यापी नियमों का स्वीकृति मिल जाए। जनता में उपरोक्त क्षणों का आना राजनीतिक विकास का सूचक है।

II क्षमता -राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के निम्न मापदंड पूरे होने पर व्यवस्था को विकसित व्यवस्था कहा जा सकता है। ये मापदंड निम्न है-

- राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक मामलों का उचित प्रबंध कर सके।
- राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक विवादों को नियंत्रित रख सके।
- राजनीतिक व्यवस्था जनता की मांगों का उचित निपटान कर सके।
- प्रशासकीय निपुणता
- शासन की प्रभावकारिता व समर्थता
- प्रशासनिक बुद्धि संगतता

II. विभेदीकरण- इसमें निम्न विशेषताएं शामिल है-

- राजनीतिक संरचनाएं अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग हो।

- कार्यात्मक दृष्टि से कार्यों का विभाजन हो।
- प्रकार्यात्मक सुनिश्चितता हो।
- संरचनाओं और प्रक्रियाओं में एकीकरण व समन्वय हो।

राजनीतिक विकास के संकट (The challenge of political development) -

लूसियन पाई के अनुसार प्रत्येक राजव्यवस्था के सामने निम्नलिखित 6 संकट रहते है, अगर कोई राज्यव्यवस्था इन संकटों से निपट लेती है, तो वहां राजनीतिक विकास हो जाता है।

संकट के उदाहरण लुसियन पाई ने यूके (ब्रिटेन) से लिए है। जो निम्न है-

- आत्म परिचय या पहचान का संकट देश के बजाय धर्म, वंश, जाति, भाषा को प्राथमिकता देना अर्थात राष्ट्रप्रेम को अभाव
- वैधता या औचित्यपूर्णता का संकट सत्ता को जन सहमति प्राप्त न होना 3. प्रविनि। अंतः प्रदेश का संकट Grass Root का लोकतंत्र का विस्तार न होना
- भागीदारी या सहभागिता का संकट राजनीतिक गतिविधियों, नियम निर्माण व क्रियान्वयन में जनभागीदारी का अभाव
- एकीकरण का संकट- विभिन्न समूहों व दलों की मांगों के मध्य सामंजस्य व एकत्रीकरण ना होना।
- वितरण का संकट संसाधनों, पदों, अधिकारों व सम्मानों का सही वितरण ना होना

(आ). राजनीति विकास-

राजनीति विकास का यह प्रतिरूप G.A आमंड और G.B पॉवेल की देन है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कंपैरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलपमेंट एप्रोच' 1965 में राजनीतिक विकास के तीन लक्षण बताए हैं-

I. संरचनात्मक विभेदीकरण
II. संस्कृति का धर्मनिरपेक्षीकरण या तर्कोन्मुखीकरण
III. राजनीतिक प्रणाली की कार्य क्षमताओं का विस्तार

1. संरचनात्मक विभेद्रीकरण या भूमिका विभेदीकरण-

संरचनात्मक विभेदीकरण का तात्पर्य समाज के भीतर राजनीति की औपचारिक संरचनाओं का पृथक-पृथक रूप में विकास करना। राजनीति विकास का यह लक्षण कोलमैन और लुसियन पाई के प्रतिरूप में ज्यों का त्यों पाया जाता है।

II संस्कृति का धर्मनिपक्षीकरण या तर्कोन्मुखीकरण या लौकिकीकरण-

यह वह प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत मनुष्य अपनी राजनीतिक कार्यवाही में उत्तरोत्तर अधिक तर्कसंगत, विश्लेषणात्मक और अनुभवमुलक दृष्टिकोण अपनाने लगते हैं। तथा जनसाधारण धर्म और रीति-रिवाज के बंधनों से ऊपर उठकर समान नागरिकों के नाते शासन की गतिविधियों में भाग लेने लगते हैं।

II. राजनीतिक प्रणाली की कार्य क्षमताओं का विस्तार पा उप व्यवस्था स्वायत्तता-

वह प्रवृत्ति जिसमें शासन, अपने समाज और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण से आने वाली मांगों का उपयुक्त उत्तर देने के लिए, और समाज में विभित्र हितलाभी का उपयुक्त वितरण करने के लिए, व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियंत्रित करता है। और समाज और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों को अपने उपयोग में लाता है। आमड और पॉवेत ने राजनीतिक प्रणाली की 4 तरह की कार्य क्षमताओं का वर्णन दिया है-

1. विनियमन क्षमता- अर्थात व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए विधिसम्मत बल-प्रयोग की क्षमता।

2. दोहन क्षमता- अर्थात समाज और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण से जुड़े प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों को अपने उपयोग में लाने की क्षमता।

3. वितरण क्षमता - अर्थात व्यक्तियों और समूहों में तरह-तरह के हित-लाभ वितरित करने की। क्षमता।

4,प्रत्युत्तर क्षमता-अर्थात समाज और अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण से आने वाली मांगों का उपयुक्त उत्तर देने की क्षमता।

4.3.5.राजनीति विकास के सूचक (Indicators of political development)-

राजनीतिक विकास को तय करने का एक मापदण्ड है जिसे राजनीतिक विकास का सूचक कहा जाता है। किसी देश का राजनीतिक विकास हुआ या नहीं, विकास हो रहा है या फिर राजनीतिक व्यवस्था पतन की ओर जा रही है, यह सब मापने के लिए कुछ संकेतक या सूचक निश्चित किए गए है। सामाजिक तथा राजनीतिक सूचकों की विश्व पुस्तिका में उन सूचकों का वर्णन किया गया है। इन सूचकों को दो प्रकार से बांटा गया हैं:

- साकारात्मक सूचक
- नाकारात्मक सूचक

डॉ० जे० सी० जौहरी ने अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक राजनीति में साकारात्मक सूचकों की संख्या 22 तथा नाकारात्मक सूचकों की संख्या 15 रखा है।

जो कारक राजनीति विकास की दिशा व मात्रा को प्रकट करते हैं, उन्हें राजनीति विकास का सूचक कहा जाता है।जो कारक राजनीति विकास की गति व प्रक्रिया में बाधा डालते हैं, वे राजनीतिक हास के सूचक होते हैं। इन्हें नकारात्मक सूचक भी कहते हैं।

साकारात्मक सूचक (Positive Indicator ये सूचक निम्नलिखित है:

1. राज्य निर्माण या प्रादेशिक एकीकरण।

2 राष्ट्र निर्माण य राष्ट्रीय एकीकरण ।

3.स्वायत्तसंगठनों द्वारा बढ़ता हुआ हित स्पष्टीकरण ।

4. मतदान के अधिकार में वृद्धि तथा बड़ी संख्या में मतदान करने वालों के साथ मुक्त तथा निष्पक्ष चुनाव।

5. स्थिर तथा लोकतांत्रिक दलों द्वारा बढ़ता हुआ हित समूहीकरण।

6. प्रेस की स्वतंत्रता तथा जन-संचार माध्यमों का विकास ।

7.मतभेद सहिष्णुता ।

8. राजनीतिक विशिष्ट वर्गों के सामाजिक आधार का विस्तार।

9. सरकार की कार्यशीलता में खुलापन व शासितों के प्रति शासकों का उत्तदायित्त्व ।

10. शिक्षा सुविधाओं में विस्तार।

11. विधानपालिओं की प्रभावशाली भूमिका तथा प्रतिनिधि द्वारा अपने चुनाव क्षेत्र की सेवा।

12. राजनीतिक तथा प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण।

13. स्थानीय सरकार की इकाईयों की स्वायत्तता।

14. न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा कानून के शासन की अस्तित्त्व।

15. सैन्य बलों का अराजनीतिक चरित्र।

16. संवैधानिक साधनों के प्रयोग की ओर सहमति जन्म राजनीति।

17. अर्धसरकारी एजेन्सियों जैसे सार्वजनिक उद्यमों की प्रभावशाली भूमिका।

18. सार्वजनिक अधिकारियों की कार्यात्मकता को देखने तथा जन-शिकायतों को दूर करने वाली शक्तिशाली संगठनों की भूमिका।

19. लोक सेवाओं की तटस्थता तथा स्वतंत्रता ।

20. राजनीतिक संस्कृति का निरपेक्षीकरण ।

21. निर्णय निर्माण में लोगों की भागीदारीं ।

22. राजनीतिकरण या राजनीतिक प्रक्रिया में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी।

राजनीतिक हास के सूचक या नकारात्मक सूचक

1. चुनावी हेराफेरी तथा अनियमितताएं।

2. हिंसात्त्मक विरोध प्रदर्शन।

3. अप्रतिमानी गड़बड़ियाँ, भूमिगत गतिविधियां तथा शस्त्र आक्रमण।

4. स्वार्थी हितों के लिए राजनीतिक दल बदली।

5. शक्तियों का केन्द्रीयकरण।

6. सामूहिक गिरफ्तारीयां।

7. घरेलू मामलों में विदेशी हस्तक्षेप।

8. राजनीतिक हत्याएं ।

9. सैन्य बलों का राजनीतिकरण।

10. लोक-सेवाओं की शासक दल-अनुक्रम के प्रति वचनुबद्धता।

11. विस्तृत भ्रष्टाचार तथा दुष्प्रशासन।

12. मतभेदों को बलपूर्वक दबाना।

13. नियमों को मात्र एक ढांचा या बुत बनाना।

14. सरकारी विचारधारा को अधिमान।

15. राजनीतिक दलों के छोटे-छोटे भागों में विद्यमान।

राजनीतिक विकास का अध्ययन इन कारकों का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करके लिया जा सकता हैं। राजनीतिक विकास की धारणा आमतौर पर सामाजिक परिवर्तन तथा विशेषतौर पर राजनीतिक परिवर्तन के विश्लषण के लिए एक उपयोगी धारणा प्रदान करती है। राजनीतिक विकास दृष्टिकोण का प्रयोग बहुत से समकालीन राजनीति वैज्ञानिकों ने बड़ी सफलता से किया है। इन प्रयासों ने राजनीति तथा तुलतात्मक राजनीति में मूल्यवान अध्ययनों को सम्भव बनाया है। राजनीतिक विकास के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करना निःसंदेह अनुसंधान का एक रुचिपूर्ण तथा उपयोगी क्षेत्र है।

4.3.6.राजनीतिक विकास की उपयोगिता (Utility of Political Development)

राजनीति विकास की उपयोगिता का वर्णन आमण्ड तथा पावेल ने निम्नलिखित आधारों पर किया है:-

- **राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में सहायक (Helpful in the Study of Political System)-** राजनीतिक विकास के दृष्टिकोण से विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं के अध्ययन करने में सहायता मिलती

है। आमण्ड तथा पावेल का कहना है कि तकनीकि परिवर्तन व सांस्कृतिक विसरण से राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन आता है यह परिवर्तन राजनीतिक का संकेत है। अतः राजनीतिक विकास जिन बातों को लेकर चलता है उस आधार पर रानीतिक विकास व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

- **राजनीतिक व्यवस्थाओं के वर्गीकरण में सहायक (Helpful in Classification of Political System)-** राजनीतिक विकास की अवधारणा से राजनीतिक व्यवस्थाओं का, उनके अतीत के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्थाओं के अतीत से यह संकेत मिलता है कि अमुक व्यवस्था ने भूतकाल में समस्याओं का किस प्रकार से सामना और उनका समाधान किया तथा भविष्य में आने वाली समस्याओं का यह किस प्रकार सामना करेगी। अतः अतीत के राजनीतिक विकासों के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है।
- **राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना में सहायक (Helpful in Comparision of Political System)-** राजनीतिक विकास की तीसरी उपयोगिता यह है कि यह राजनीतिक व्यवस्थाओं के अर्थपूर्ण मानदण्डों के आधार पर तुलना करने में सहायक सिद्ध होता है। राजनीतिक विकास को भूमिका विभिन्नीकरण, लौकिकरण और उपव्यवस्था, स्वायत्तता के तत्त्वों द्वारा मापा जा सकता है। इनके अतिरिक्त विकास को अर्थिक, सामाजिक व सास्कृतिक तत्त्वों द्वारा मी मापा जा सकता है। अत एक प्रकार के लक्षणों वाली राजनीतिक व्यवस्था का दूसरे तुलना करने में सहायक सिद्ध होता है। राजनीतिक विकास का भूमिका विभिन्नकिरण, लोकिकरण और उपव्यवस्था, स्वायत्तता के तत्त्वों द्वारा मापा जा सकता है। इनके अतिरिक्त विकास को अर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक तत्त्वों द्वारा भी मापा जा सकता है। अतः एक प्रकार के लक्षणों वाली राजनीतिक व्यवस्था का दूसरे प्रकार के लक्षणों वाली व्यवस्था से तुलना की जा सकती है।
- **राजनीतिक व्यवस्थाओं के सामान्यीकरण में सहायक (Helpful in Generalization of Political Systems)-** राजनीतिक विकास की अवधारणा यद्यपि एक सिद्धान्त प्रस्तुत करने में सिद्ध नहीं हुई है। लेकिन इसने राजनीतिक व्यवस्थाओं के सामान्यीकरण में सहायता अवश्य की है। इस समान्यीकरण की प्रक्रिया में राजनीतिक विकास के संकेतकों, विकास के निर्धारकों, राजनीतिक विकास का अन्य विकासों से सम्बन्ध, राजनीतिक विकासों के वर्गीकरण और राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना ने सहायसता की है।

- **एक कड़ी का कार्य (As a Link) -** राजनीतिक विकास की अवधारणा दो दृष्टिकोणों, व्यवहारवादी दृष्टिकोण और क्षेत्रीय अध्ययनों के दृष्टिकोण में एक कड़ी के रूप में कार्य करती है। इसकी सहायता से इन दोनों द ष्टिकोणों के भेद को दूर किया जा सकता है। अतः राजनीतिक विकास की अवधारणा का आधुनिक राजनीतिक विकास की अवधारणा का राजनीतिक अध्ययनों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है

4.3.7. राजनीतिक विकास की अवधारणा की आलोचना (Criticism of Concept of Political Development) राजनितिक विकास की अवधारणा की आलोचना अनेक विचारकों ने निम्नलिखित प्रकार से की है:

- **राजनीतिक पतन के अध्ययन का अभाव (Lack of Study of Political Decay)-** राजनीतिक विकास की इस अवधारणा के अधार पर यह आलोचना की जाती है कि इसमें राजनीतिक पतन की व्याख्या का अभाव है। राजनीतिक विकास में राजनीतिक संस्थान, राजनीतिक संस्कृतियाँ तथा राजनीतिक मूल्य विकसित तथा परिपक्व होते हैं और उपलब्धि की स्थिति प्राप्त कर लेते है। लेकिन इसके साथ ही कभी-कभी विभिन्न स्थितियों में नाकारात्मक विकास अथवा गिरावट की और भी बढ़ सकती है। यह राजनीतिक पतन ही कहलाता है। साधारण राजनीतिक विकास के समर्थक केवल आधुनिकता और औधिागिकीकरण को ही सर्वोपरी मानते हैं।
- **सिद्धान्त निर्माण का अभाव (Lack of Theory Building)-** राजनीतिक अवधारणा के विकास में इतनी त्रुटियां है कि सिद्धान्त निर्माण सम्भव नहीं है। सिद्धान्त निर्माण करना केवल विकास की अवधारणा में ही कठिन नहीं है बल्कि अन्य अवधारणाओं में भी यह कठिनाई पाई जाती है। राजनीतिक विकास की अवधारणा में सिद्धान्त की खोज अधिक जटिल और कठिन इसलिए हो जाता है क्योंकि यह स्वयं में पेचिदा होने के साथ-साथ दूसरी अवधारणाओं के तथ्यों से नियंत्रित व प्रमाणित भी होता है। अतः इस अवधारणा में सिद्धान्त निर्माण में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।।
- **भ्रमोत्पादक (Illusionary)** राजनीतिक विकास के तीसरे आधार पर आलोचना की जा सकती है कि यह भ्रमोत्पादक है। इस अवधारणा से सम्बन्धित विचारक राजनीतिक से सम्बन्धित सभी विषयों को, जैसे सामाजिक, आर्थिक अथवा सांस्कृतिक आदि, चाहे वे प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो अथवा अपत्यक्ष रूप से, आधुनिकता में शामिल कर लेते है, जो कि गलत है।

- **अस्पष्ट अवधारणा (Vague Concept)-** राजनीतिक विकास की अवधारणा में विद्वानों ने अनेक तथ्यों,और परिप्रेक्ष्यों पर विचार नहीं किया है, उन्होंने हिंसा क्रांति राजनीतिक अधिकार, स्वतंत्रता, नेतृत्त्व आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर भी विचार नहीं किया है। इस कारण यह अवधारणा अस्पष्ट बन गई है।
- **जनता का असहयोग (Non co-operation of People) -** कोई भी सर्वेक्षण जनता के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकता। राजनीतिक विकास के बारें में भी यह सत्य है। जनता राजनीतिक तथा अध्ययनकर्ताओं को संदेह की दृष्टि से देखती है। अतएव सहयोग प्रदान नहीं करती तथा राजनीतिक विकास में बाधा पैदा करती हैं।
- **व्याख्या लक्षणों पर सहमति का आभाव (Lack of Unanimity on Interpretations and Features)** राजनीतिक विकास की अवधारणा की व्याख्या और लक्षणों को लेकर विचारकों में सहमति का आभाव है। विचारकों में इतना मतभेद है कि यदि एक विचारक के दृष्टिकोण विशेष को मान लिया जाए तो लगता हे कि यह एक पक्षीय है। इस मतभेद का इस बात के द्वारा समर्थन किया जा सकता है कि अमेरिका में सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् के तत्त्वाधान में तुलनात्मक राजनीतिक समिति ने राजनीतिक विकास के पक्षों पर लगभग आठ पुस्तकों को प्रकाशित किया। प्रायः विकास प्रक्रियाओं में उत्पन्न होने वाली विकार्यात्मक समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। इस कारण यह अवधारणा अस्पष्ट बन गई है।

- **जनता का असहयोग (Non co-operation of People)** - कोई भी सर्वेक्षण जनता के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकता। राजनीतिक विकास के बारें में भी यह सत्य है। जनता राजनीतिक तथा अध्ययनकर्ताओं को संदेह की दृष्टि से देखती है। अतएव सहयोग प्रदान नहीं करती तथा राजनीतिक विकास में बाधा पैदा करती हैं।
- **व्याख्या लक्षणों पर सहमति का आभाव (Lack of Unanimity on Interpretations and Features)** राजनीतिक विकास की अवधारणा की व्याख्या और लक्षणों को लेकर विचारकों में सहमति का आभाव है। विचारकों में इतना मतभेद है कि यदि एक विचारक के दृष्टिकोण विशेष को मान लिया जाए तो लगता हे कि यह एक पक्षीय है। इस मतभेद का इस बात के द्वारा समर्थन किया जा सकता है कि अमेरिका में सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् के तत्त्वाधान में तुलनात्मक राजनीतिक समिति ने

राजनीतिक विकास के पक्षों पर लगभग आठ पुस्तकों को प्रकाशित किया। प्रायः विकास प्रक्रियाओं में उत्पन्न होने वाली विकार्यात्मक समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरणार्थ इस प्रश्न पर कि क्या मंद गति के आधुनिकीकरण की कीमत हिंसात्त्मक क्रान्ति की अपेक्षा अधिक हो सकती है, राज-वैज्ञानिकों द्वारा कोई विचार नहीं गया है।

उपरोक्त आलोचनाओं से यह नहीं समझाना चाहिए कि यह अवधारणा अनुपयोगी है, तथा यह निर्णयों को प्रभावित नहीं कर सकती है या उसके पास समस्याओं का विश्लेषण और समाधान करने के पर्याप्त साधन नहीं है। बल्कि यह महत्त्वपूर्ण अवधारणा हैं। इसने राष्ट्रवाद के पनपने तथा लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में काफी बड़ा योगदान दिया है।

4.4.पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

4.4.1 राजनीतिक संस्कृति का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of political culture)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक विश्लेषकों ने यह पता लगाने का प्रयास किया कि समान राजनीतिक संरचनात्मक ढांचे वाली राजनीतिक व्यवस्था के व्यवहार में अन्तर क्यों आ जाता है तथा राजनीतिक विकास की दिशाएं भी अलग-अलग क्यों हो जाती है ? इसके लिए राजनीतिक विश्लेषकों ने विकसित व विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं को तुलनात्मक अध्ययन शुरू किया और अन्त में यह तथ्य उभरकर हमारे सामने आया कि राजनीतिक विकास के विभिन्न दिशाओं में जाने का कारण इन देशों की राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप है। पराधीन राजनीतिक संस्कृति के कारण विकासशील देशों का राजनीतक विकास राजनीतिक व्यवस्था के मार्ग में बाधा बन रहा है, जबकि विकसित व सहभागी राजनीतिक संस्कृति विकसित देशों में राजनीतिक विकास को राजनीतिक विकास के अनुकूल बना रही है। इस प्रकार धीरे-धीरे राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा राजनीति विज्ञान की लोकप्रिय अवधारणा बन गई। आज राजनीतिक संस्कृति ही एकमात्र ऐसी अवधारणा है जो राजनीति विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन का विकसित दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में सक्षम है।

फाईनर के अनुसार, ''राजनीतिक संस्कृति मुख्यतः शासकों, राजनीतिक संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं की वैधता से सम्बन्धित है।''

राय मैक्रीडस के अनुसार, ''राजनीतिक संस्कृति का अर्थ एक मानव-समूह के द्वारा स्वीकृत सामान्य लक्ष्यों और सामान्य नियमों से होता है।''

नेटल के अनुसार - ''राजनीतिक संस्कृति का अर्थ राज्यसत्ता से सम्बन्धित ज्ञान मूल्यांकन और संचारण के प्रतिमान या प्रतिमानों से है।''

राज एवं डोगन के अनुसार - ''राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ऐसे मूल्यों, विश्वासों और मनोभावों को संक्षेप में व्यक्त करने की सुविधाजनक रीति है, जो राजनीतिक जीवन को अर्थ प्रदान करती है।''

4.4.2. राजनीतिक संस्कृति के संघटक (Components of Political Culture)

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक समाज के लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिरूचियों, मूल्यों व विश्वासों पर आधारित है। राजनीतिक संस्कृति में आत्मपरकता का गुण होने के कारण यह व्यक्तिगत अभिविन्यास या अनुकूल का हिस्सा होती है। यह अनुकूलन ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा मूल्यात्मक होता है। ज्ञानात्मक अनुकूल का सम्बन्ध लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति जानकारी से, भावनात्मक अनुकूलन का सम्बन्ध लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव से तथा मूल्यांकन अनुकूलन का सम्बन्ध लोगों के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों व निर्णयों से होता है। इस अनुकूलन की दृष्टि से राजनीतिक व्यवस्था के तीन घटक होते हैं- मूल्य, विश्वास और संवेदात्मक अभिवृत्तियां। प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण इन्ही घटकों से होता है। इन घटकों की अनुक्रिया ही किसी राजनीतिक व्यवस्था का सामान्य या विशिष्टता की तरह ले जाती है। इसी कारण राजनीतिक संस्कृति को राजनीतिक व्यवस्था का प्रकृति का नियात्मक कहा जाता है। राजनीतिक संस्कृति के घटकों का मूल्यांकन करके ही राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति का भी निर्धारण किया जा सकता है। ये घटक निम्नलिखित हैं:-

- **मूल्य अभिवृत्तियां(Value Preferences):-** प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक बातों में रूचि रखने वाले सदस्य व्यवस्था के मूल्यों से अवश्य प्रभावित होते हैं। ये अभिवृत्तियां राजनीतिक समाज के सार्वजनिक लक्ष्यों से सम्बन्धित विश्वास व आस्थाएं होती हैं। प्रत्येक राजनीतिक समाज में कुछ राजनीतिक मूल्य होते हैं, जैसे एक निश्चित अवधि के बाद निर्वाचन होने चाहिए; जनता का विश्वास खो देने पर सरकार को अपना पद छोड़ देना चाहिए। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि सभी लोगों की रूचि इन मूल्यों में

समान हो। किसी की रूचि तो सामाजिक न्याय व समानता में हो सकती है, किसी की रूचि राजनीतिक स्थिरता में हो सकती है तथा किसी की कानून के शासन में हो सकती है। इसलिए राजनीतिक संस्कृति के आधार पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली या व्यवहार में भिन्नता का कारण मूल्य अभिरूचियों में पाया जाने वाला अन्तर है। जब जनता तथा शासक वर्ग की मूल्य अभिवृत्तियां असमान हो जाती हैं तो राजनीतिक व्यवस्था पर संकट के बादल छा जाते हैं।

- **विश्वास अभिवृत्तियां(Belief Preferences)**:- जनता की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास की अभिवृत्तियां राजनीतिक मूल्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। इसके अन्तर्गत वे अभिरूचियां हैं कि लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास की मात्रा तथा प्रकृति क्या है। किसी व्यक्ति को वोट डालने में विश्वास हो सकता है तथा किसी का नहीं। इस विश्वास के आधार पर ही शासक व शासित को पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। इसी विश्वास में अन्तर आ जाने पर राजनीतिक संस्कृतियों में मात्रात्मक अन्तर आ जाता है और जनता का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विश्वास का स्वरूप भी बदल जाता है। इसी से राजनीतिक व्यवस्था का संचालन प्रभावित होता है। अतः राजनीतिक विश्वास ही राजनीतिक संस्कृति के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था का नियात्मक व संचालन बना रहता है।
- **संवेदनात्मक अभिवृत्तियां(Sentimental Preferences):-** इसका सम्बन्ध लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति मनोवृत्तियों या मनोभावों से होता है। किसी व्यक्ति को तो अपने देश या व्यवस्था पर गर्व हो सकता है तो किसी को घृणा भी हो सकती है। संवेदनात्मक अभिवृत्तियों में पाया जाने वाला अन्तर, राजनीतिक संस्कृति के घटकों में पाया जाने वाला अन्तर राजनीतिक संस्कृति में मात्रात्मक भेद पैदा करता है और यही भेद आगे चलकर राजनीतिक व्यवहार की भिन्नता के रूप में प्रकट होता है।

4.4.3 राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति व विशेषताएं(Nature and Features of Political Culture)

इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- राजनीतिक संस्कृति एक व्यक्तिपरक धारणा है, क्योंकि इसमे लोगों के विचारों, विश्वासों व मूल्यों का अध्ययन किया जाता है।
- राजनीतिक संस्कृति एक व्यापक धारणा है, क्योंकि यह राजनीतिक व्यवहार के अनेक तत्वों को अपने में समेटे रहती है।

- राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का ही एक अंश होती है, क्योंकि इसमें लोगों के राजनीतिक मूल्य व विश्वास ही शामिल होते हैं। राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग-अलग होता है, क्योंकि राजनीतिक संस्कृति के घटकों का प्रत्येक देश में अन्तर पाया जाता है।
- राजनीतिक संस्कृति एक अमूर्त नैतिक अवधारणा है।
- राजनीतिक संस्कृति एक गत्यात्मक व परिवर्तनशील अवधारणा है।
- राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक विकास में गहरा सम्बन्ध होता है।
- राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक समाजीकरण व आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को भी प्रभावित करती है। अड़ियल प्रकार की राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक आधुनिकीकरण, समाजनीकरण व विकास का मार्ग अवरूद्ध कर देती है।
- भूगोल, परम्पराएं, इतिहास, आदर्श, जीवन मूल्य, जलवायु, सामाजिक तथा आर्थिक तत्व, राष्ट्रीय प्रतीक आदि तत्व राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में योगदान देतें हैं।
- राजनीतिक संस्कृति जन-सामान्य के राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

4.4.4. राजनीतिक संस्कृति के प्रकार (Types of Political Culture)

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में लोगों का राजनीतिक व्यवस्था कें प्रति लगाव, विश्वास व मूल्य अलग अलग ढंग का होता है। कहीं पर तो राजनीतिक व्यवस्था के प्रति गहरा लगाव रखते हैं और राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता रखते हैं तो कहीं पर इसका सर्वथा अभाव पाया जाता है। राजनीतिक समाज के सदस्यों की राजनीतिक सहभागिता ही प्रायः राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति का निर्धारण करती है। निरन्तरता की दृष्टि से राजनीतिक संस्कृति परम्परागत व आधुनिक दो प्रकार की हो सकती है। जहां परम्परा व आधुनिकता में संघर्ष चलता रहता हैं वहां पर राजनीतिक संस्कृति का नवीन रूप भी अस्तित्व में आ जाता है जिसे मिश्रित संस्कृति कहा जा सकता है। विचारवादियों की दृष्टि में राजनीतिक संस्कृति प्रजातंत्रीय, साम्यवादी, समाजवादी व एकतन्त्रवादी हो सकती है। एकरूपता की दृष्टि से इसे संकुचित, प्रजाभागी तथा सहभागी संस्कृति में बांटा जाता है। एस°ई°फाइनर ने राज-संस्कृति को प्रौढ, विकसित, निम्न तथा पूर्व-फ्रांसीसी क्रान्ति सम-न्यूनतम चार भागों में बांटा है। ऑमण्ड ने भी राजव्यवस्थाओं में जनसहभागिता के सन्दर्भ में इसे तीन भागों में बांटा है।

उसने आगे राजनीतिक संस्कृति के तीन अन्य प्रकार भी बताये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक संस्कृति विभिन्न आधारों पर अनेक प्रकार की होती है।

(अ). संख्या व शक्ति के आधार पर
(आ). निरन्तरता की दृष्टि से
(इ). राजनीतिक सहभागिता के आधार पर
(उ). गुणात्मक स्वरूप के आधार
(ऊ).शासन व्यवस्था जनित संवेगों के आधार

(अ). संख्या व शक्ति के आधार पर इस आधार पर राजनीतिक संस्कृति के दो भेद माने जाते हैं-

- **अभिजनात्मक संस्कृति(Elitist Culture)**:- यह संस्कृति इस मान्यता का परिणाम है कि प्रत्येक शासन में गिने-चुने लोग ही सत्ता के वास्तविक धारक होते हैं और उनका राजनीतिक व्यवस्था तथा लोगों की जीवन शैली पर व्यापक प्रभाव होता है।
- **जनसंस्कृति(Mass-Culture):-** यह संस्कृति लोकतन्त्रीय आस्थाओं को समेटे हुए है। यह जन आस्था एवं रचनात्मक वृत्तियों का द्योतक है। इसमें राजनीतिक प्रक्रिया में जनसाधारण की उपेक्षा नहीं की जा सकती और प्रत्येक स्तर पर जनता की भावनाओं का ख्याल रखा जाता है।

(आ).निरन्तरता व सातत्व की दृष्टि से-इस आधार पर राजनीतिक संस्कृति को तीन भागों में बांटा जा सकता है:-

- **परम्परागत राजनीतिक संस्कृति (Traditional Political Culture)**
- **आधुनिक राजनीतिक संस्कृति (Modern Political Culture)**
- **मिश्रित राजनीति संस्कृति (Mixed Political Culture)**

परम्परावादी संस्कृति का सम्बन्ध जन सामान्य से होता है, जबकि आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का सम्बन्ध विशिष्ट वर्गीय शासकों से होता है। ब्रिटेन तथा भारत में मिश्रित संस्कृति पाई जाती है। क्योंकि यहां पर परम्परा व आधुनिकता का सुन्दर मिश्रण है। ब्रिटेन में कुलीनतन्त्रीय राजनीति ढांचे का तादात्म्य ऐसे सामाजिक व आर्थिक ढांचे के साथ किया गया है कि उसमें विशिष्ट वर्ग व जनसाधारण दोनों के हितों का पोषण हो जाता है।

विकासशील देशों में इसी प्रकार की संस्कृति है। सर्वाधिकारवादी देशों में विशिष्ट वर्गीय हितों की पोषक आधुनिक व परम्परावादी दोनों संस्कृतियां पाई जाती हैं। आमण्ड-कॉलमैन का मानना है कि सभी राजनीतिक समाजों में राजनीतिक संस्कृति का मिश्रित रूप ही पाया जाता है।

(इ). राजनीतिक सहभागिता के आधार पर:-इस आधार पर वर्गीकरण करने वाले प्रमुख विद्वान ऑमण्ड व वर्बा हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में जनता सहभागिता चाहती है। लेकिन सभी व्यवस्थाओं में पूर्ण व सक्रिय सहभागिता का होना आवश्यक नहीं है। इसलिए इस आधार पर कि जनसहभागिता का स्तर क्या है। लोग राजनीति के प्रति उदासीन हैं या सक्रिय, इस आधार पर राजनीतिक संस्कृति को शुद्ध रूप में तीन भागों में बांटा जाता है:-

- **संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति(Parochial Political Culture):-** इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति कम विकसित तथा परम्परागत राजनीतिक समाजों में पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण यह होता है कि इस समाजों में कम विशेषीकरण के कारण सभी भूमिकाएं शासन वर्ग द्वारा ही अदार की जाती है। इसमें जनता राजनीति के प्रति प्रायः उदासीन ही रहती है। राजनीतिक नेता ही धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक भूमिकाओं का एक साथ निर्वहन करते हैं। इसमें जनता की तरफ से राजनीति के प्रति कोई मांग या निवेश नहीं होता और न ही निर्मतों की तरफ उसका ध्यान रहता है।
- **पराधीन राजनीतिक संस्कृति(Subject-Political Culture):-** इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति का जन्म उन समाजों में भी होता है, जहां जनता राजनीति के प्रति अर्कमण्य रहती है और वह शासकीय आदेशों को विवशतावश चुपचाप सहन करती है और उनका पालन करती रहती है। यह राजनीतिक संस्कृति आश्रित उपनिवेशों में ही विद्यमान थी। इस प्रकार की संस्कृति में जनता निवेषांे से दूर रहती है, लेकिन निर्गतों पर यह ध्यान रखती है।
- **सहभागी राजनीतिक संस्कृति(Participant-Political Culture)-** इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति उन समाजों मे पाई जाती है, जहां जनता को राजनीतिक सहभागिता के पूरे अवसर प्राप्त किये जाते हैं। इस संस्कृति में जनता निवेशों व निर्गतों पर समान नजर रखती है। इस प्रकार की संस्कृति विकसित देशों में पाई जाती है। इसमें लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव व विश्वास उच्च स्तर का बना रहता है। इसमें जनता अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनी रहती है। इसे

प्रजातन्त्रीय राजनीतिक संस्कृति भी कहा जाता है। उपरोक्त शुद्ध रूपों के अतिरिक्त भी मिश्रित रूप में ऑमण्ड व वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति को तीन भागों में बांटा है:-

- संकीर्ण-पराधीन राजनीतिक संस्कृति।
- पराधीन-सहभागी राजनीतिक संस्कृति।
- संकीर्ण-सहभागी राजनीतिक संस्कृति।

संकीर्ण-पराधीन राजनीतिक संस्कृति (Parochial-Subject Political Culture):- यह संस्कृति मिश्रित प्रकृति की होती है। इसमें दोनों प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों की विशेषताएं पाई जाती हैं। इस में दोनों प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं।

पराधीन-सहभागी राजनीतिक (Subject-Participant Political Culture)- यह संस्कृति पराधीन राजनीतिक संस्कृति तथा सहभागी राजनीतिक संस्कृति के गुणों से परिपूर्ण रहती है। यह संस्कृति इन समाजों में पाई जाती है जहां लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव होता है। इसमें कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो केवल निवेशों और निर्गतों के प्रति ही रूचि रखते हैं। इस संस्कृति का उदय राजनीतिक व्यवस्था में जनसहभागिता की वृद्धि की शुरूआत के साथ हुआ।

संकीर्ण-सहभागी राजनीतिक संस्कृति (Parochial Participant Political Culture)- इस प्रकार की संस्कृति में शासक वर्ग ही जनता को प्रभावित नहीं करता बल्कि जनता भी शासकीय नीतियों को प्रभावित करती है। इसमें जनइच्छा का पूरा सम्मान किया जाता है। यह संस्कृति संकीर्ण व सहभागी राजनीतिक संस्कृति दोनों की विशेषतायें समेटे रहती हैं।

(उ). गुणात्मक स्वरूप के आधार

एस°ई° फाइनर ने अपनी पुस्तक 'The Man on Horse Back ' में राजनीतिक संस्कृति के चार प्रकार बताये हैं:-

- प्रौढ़ या परिपक्व राजनीतिक संस्कृति।
- विकसित राजनीतिक संस्कृति।
- निम्न राजनीतिक संस्कृति।

- पूर्व-फ्रांसीसी क्रान्ति-सम अल्पस्तरीय राजनीतिक संस्कृति।

प्रौढ़ राजनीतिक संस्कृति (Mature Political Culture):- यह संस्कृति ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा नीदरलैण्ड में पाई जाती है। इसमें राजनीतिक सर्वसम्मति व संगठन की मात्रा बहुत ऊँची होती है।

विकसित राजनीतिक संस्कृति (Developed Political Culture):- यह संस्कृति मिस्त्र, अल्जीरिया और क्यूबा जैसे देशों में पाई जाती है। इस प्रकार की राजनीतिक स्थिरता के साथ-साथ सैनिक खतरों में भी भयभीत रहती है।

निम्न राजनीतिक संस्कृति (Low Political Culture):- यह संस्कृति उन राजनीतिक समाजों में पाई जाती है, जहाँ लोकमत सशक्त नहीं होता। इसी कारण इसमें जन-विरोध की भावना का अभाव पाया जाता है। इसकी संस्कृति वाले देशों में राजनीतिक संस्थाएं बहुत ही कमजोर स्थिति में रहती हैं।

पूर्व-फ्रांसीसीक्रान्ति-सम अल्पस्तरीय राजनीतिक संस्कृति(Like Pre-French Revolutions Minimal Political Culture):- यह संस्कृति उन देशों में पाई जाती है, जहां सरकार जनता के विचारों की मनकानी अवहेलना कर सकती है। फ्रांसीसी क्रान्ति से पहले फ्रांस में यह संस्कृति विद्यमान थी। आज इस संस्कृति के लिये कोई स्थान नहीं है।

(उ). शासन व्यवस्था जनित संवेगों के आधार

इस आधार पर ऑमण्ड ने राष्ट्रों की राजनीतिक व्यवस्था, भौगोलिक प्रणाली, विकासशील प्रवृत्ति आदि के आधार पर राजनीतिक संस्कृति को चार भागों में बांटा हैः-

- **आंग्ल-अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था।**
- **महाद्वीपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था।**
- **अपश्चिमी एवं आंशिक रूप से पूर्व-औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था।**
- **सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था।**

आंग्ल-अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था(Anglo-American Political Culture)-यह संस्कृति ब्रिटेन और अमेरिका में पाई जाती है। इसमें राजनीतिक साध्यों व साधनों पर आम सहमति पाई जाती है। इस संस्कृति से

सम्बन्धित देशों में वैयक्तिक मान्यताओं का सुन्दर मेल होता है। संस्कृति से सम्बन्धित देशों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, अधिकार व सुरक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है।

महाद्वीपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था (Continental European Political Culture) -यह राजनीतिक संस्कृति फ्रांस, इटली, स्वीडन, नार्वे, जर्मनी आदि कम विकसित देशों में पाई जाती है। इस राजनीतिक संस्कृति में न तो जनता अपने नेताओं के प्रति पूर्ण आश्वस्त होती है और न ही नेतागण अपने लोगों पर पूर्ण रूप से निर्भर रहते हैं। इस प्रकार की संस्कृति में जनता की बजाय राजनीतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों की भूमिका अधिक रहती है।

अपश्चिमी एवं आंशिक रूप से पूर्व-औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था(Non-Western or Partially Pre-Industrial Political System):- इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति पूर्व उपनिवेशों व औद्योगिक रूप से पिछड़े देशों में देखने को मिलती है। विकासशील देशों की राजनीतिक संस्कृति इसी प्रकार की राजनीतिक संस्कृति है। जो व्यवस्थाएं इस प्रकार की राजनीतिक संस्कृति से युक्त होती है, वहां सदैव अस्थिरता का माहौल बना रहता है। इस संस्कृति में शासक-वर्ग की इच्छा को जनता पर थोप दिया जाता है। एशिया व अफ्रीका के सभी विकासशील देश इसकी श्रेणी में आते हैं। भारत में भी यही राजनीतिक संस्कृति है।

सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्था (Totalitarian Political System):- इस प्रकार की व्यवस्था में शासन प्रणाली पर एक ही दल का प्रभुत्व रहने के कारण राजनीतिक संस्कृति की एकता परिलक्षित होती है। इसमें शक्ति के आधार पर सत्ता व शासन को औचित्यपूर्ण बनाए रखा जाता है। इस प्रकार की संस्कृति चीन व अन्य साम्यवादी देशों में पाई जाती है।

4.4.5.राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व (Determinants of Political Culture)-

प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्कृति अलग प्रकार की होती है। इसका प्रमुख कारण इसके निर्धारक तत्वों में मिलने वाला अन्तर होता है। राजनीतिक संस्कृति से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसी कारण सामान्य संस्कृति के निर्धारक तत्व राजनीतिक संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं। ये निर्धारक तत्व ही राजनीतिक संस्कृति की प्रकृति के निर्धारक होते हैं। ये तत्व निम्नलिखित हो सकते हैं:-

- **इतिहास (History)**-किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीतिक संस्कृति की जड़ें इतिहास के अन्दर गडी होती हैं।
- **भूगोल(Geography):-**भौगोलिक स्थिति भी किसी देश की राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित करता है। राष्ट्र के अस्तित्व के लिए विभिन्नताओं में एकता होना अनिवार्य होता है।
- **सामाजिक तथा आर्थिक विकास(Social and Economic Development):-** राजनीतिक संस्कृति का विकास भी सामाजिक व आर्थिक विकास के सापेक्ष होता है। जिस देश में सामाजिक समरसता या एकता का गुण पाया जाता है, वहां की राजनीतिक संस्कृति भी प्रवाहमान व सहज होती है। वहां पर राजनीतिक अस्थिरता आना असम्भव होता है। इसी तरह आर्थिक विकास के पर्याप्त अवसर भी राजनीतिक व्यवस्था को सशक्त बनाकर संस्कृति को भी विशेष तरह की बना देते हैं।
- **विचारधाराएं (Ideologies):-** राजनीतिक विचारधाराएं भी राजनीतिक संस्कृति को निर्धारित करने वाली होती हैं। विकासशील देशों में तो विचाराधाराओं के अनुकूल राजनीतिक संस्कृति का निर्माण किया जाने लगा है।
- **सामान्य संस्कृति (General Culture):-** राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति पर ही आधारित होती है। सामान्य संस्कृति का प्रमुख नियात्मक तत्व माना जाता है। राजनीतिक संस्कृति को सामान्य संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता। सामान्य संस्कृति को ही राजनीतिक संस्कृति का नैतिक तथा स्थाई आधार माना जाता है।
- **राष्ट्रीय प्रतीक(National Symbols):-** जिस देश में लोगों का राष्ट्रीय प्रतीकों - राष्ट्रीय गान व गीत, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय त्यौहार, राष्ट्रीय स्मारक, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय विरासत आदि के प्रति गहरा लगाव होगा, वहां की राजनीतिक संस्कृति भी उच्च-स्तरीय होगी। इससे राजनीतिक संस्कृति में एकता का गुण पैदा होगा जो राजनीतिक स्थिरता में सहायक होगा।
- **धर्म (Religion):-** जिस देश की राजनीति में धर्म का अधिक प्रभाव होता है, वहां की राजनीतिक संस्कृति में भी सहिष्णुता का गुण आ जाता है।

- **राजनीतिक स्थिरता (Political Stability):-** राजनीतिक स्थिरता के परिवेश में ही उन्नत प्रकार की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण हो सकता है। विकासशील देशों में राजनीतिक अस्थिरता के कारण ही यहां पर राजनीतिक संस्कृति अधिक उच्च कोटि की नहीं बन पाई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति के आधार को मजबूत बनाने वाले तथा राजनीतिक संस्कृति का निर्माण व निर्धारण करने वाले तत्व इतिहास, भूगोल, सामाजिक-आर्थिक विकास, धर्म, राजनीतिक स्थिरता, राष्ट्रीय प्रतीक, विचारधारायें आदि हैं।

4.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

(अ).राजनीतिक विकास को तुलनात्मक राजनीत्ति के एक उपक्षेत्र के रूप में कब मान्यता मिली।

(आ).एस°ई° फाइनर ने अपनी पुस्तक में राजनीतिक संस्कृति के कितने प्रकार बताये हैं?

(इ). डॉ० जे० सी० जौहरी ने अपनी पुस्तक 'तुलनात्मक राजनीति में साकारात्मक सूचकों

की तथा नाकारात्मक सूचकों की संख्या कितनी बताई है?

(ई).पुस्तक 'The Man on Horse Back ' के लेखक कौन है?

(उ).पुस्तक "एस्पेक्ट्स आफ पॉलीटिकल डेवलपमेंट" के लेखक कौन है?

(ऊ).राजनीति विकास विचार धरा का जनक किसे मन जाता है?

4.6.सारांश (Summary)

राजनीतिक विकास को तुलनात्मक राजनीत्ति के एक उपक्षेत्र के रूप में 1960 के दशक में मान्यता मिली। इसकी जड़ें आधुनिकीकरण सिद्धांत में हैं, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात के वर्षों में सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। आधुनिकीकरण सिद्धांत के सामाजिक विज्ञान में एक नए प्रतिमान के रूप में उभरने के साथ, तुलनात्मक राजनीति पर अध्ययन आर्थिक विकास, सामाजिक परिवर्तन एवं लोकतंत्रीकरण के मध्य संबंधों के साथ पूर्व से ही तल्लीन हो गया। 1960 के दशक के आरम्भ में जब राजनीतिक आधुनिकीकरण अमेरिका में तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययन का विषय बन गया, तो इस शब्द का उपयोग राजनीतिक विकास के पर्याय के रूप में किया जाने लगा। राजनीतिक विकास को

लोकतांत्रिक राजनीति के एक और संक्रमण के रूप में देखा गया, जैसा कि हित समूहों की गतिविधि में वृद्धि, नौकरशाही और राजनीतिक दलों के विकास एवं लोकतांत्रिक संस्थानों की क्षमताओं के विकास में दिखाई देता है।राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक समाज के लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अभिरूचियों, मूल्यों व विश्वासों पर आधारित है। राजनीतिक संस्कृति में आत्मपरकता का गुण होने के कारण यह व्यक्तिगत अभिविन्यास या अनुकूल का हिस्सा होती है। यह अनुकूलन ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा मूल्यात्मक होता है। ज्ञानात्मक अनुकूल का सम्बन्ध लोगों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति जानकारी से, भावनात्मक अनुकूलन का सम्बन्ध लोगों का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लगाव से तथा मूल्यांकन अनुकूलन का सम्बन्ध लोगों के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों व निर्णयों से होता है। इस अनुकूलन की दृष्टि से राजनीतिक व्यवस्था के तीन घटक होते हैं- मूल्य, विश्वास और संवेदात्मक अभिवृत्तियां। प्रत्येक देश की राजनीतिक संस्कृति का निर्माण इन्हीं घटकों से होता है। इन घटकों की अनुक्रिया ही किसी राजनीतिक व्यवस्था का सामान्य या विशिष्टता की तरह ले जाती है। इसी कारण राजनीतिक संस्कृति को राजनीतिक व्यवस्था का प्रकृति का नियात्मक कहा जाता है।

4.7.सूचक शब्द (Key Words)

- **संस्कृति-**परंपरा से चली आ रही आचार-विचार, रहन-सहन एवं जीवन पद्धतिय संस्कार
- **राजनीतिक संस्कृति-**राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोगों कीअभिवृति व रुचि है जो राजनीतिक विश्वास की भावना पर आधारित है।
- **सामान्यीकरण-**किसी विशेष बात को लेकर उसे व्यापक रूप से लागू करना सामान्यीकरण करना है।

4.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

- तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक विकास दृष्टिकोण की उत्पत्ति एवं विकास की व्याख्या कीजिए।
- राजनीतिक विकास दृष्टिकोणों के महत्व महत्व का वर्णन कीजिए।
- लूसियन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास की प्रकृति इसके प्रतिरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।
- राजनीतिक विकास के सूचकों को विस्तार से समझाएं।
- राजनीतिक विकास की अवधारणा की उपयोगिता व् आलोचना का वर्णन कीजिए।

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का अर्थ ,परिभाषा व् इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- राजनीतिक संस्कृति के प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
- राजनीतिक संस्कृति के निर्धारक तत्व का विस्तार से वर्णन कीजिए।

4.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

(अ).1960 के दशक में

(आ).चार

(इ). एस°ई° फाइनर

(ई).साकारात्मक सूचकों संख्या 22 तथा नाकारात्मक सूचकों की संख्या 15

(उ).ल्यूशियन पाई

(ऊ).ल्यूशियन पाई

4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।
- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ . बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज , अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी . गेना , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी . जौहरी , स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।
- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

Subject : Comparative Politics (Political Science)	
Course Code : POLS 301	Author **: Dr. Parveen sharma**
Lesson No. : 5	Vetter **:**
संविधानवाद: आधुनिक समय में इतिहास, प्रकृति, प्रकार और आधुनिक समय में समस्या **Constitutionalism: History, Nature, Type and Problem in Modern Times**	

अध्याय की सरंचना

5.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

5.2.परिचय (Introduction)

5.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

5.3.1.संविधानवाद का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definitions of Constitutionalism)

5.3.2.संविधान और संविधानवाद में अन्तर (Difference between Constitution and Constitutionalism)

5.3.3.संविधानवाद के आधार (Foundations of Constitutionalism)

5.3.4.संविधानवाद की विशेषताएं (Features of Constitutionalism)

5.3.5.संविधानवाद के तत्व (Elements of constitutionalism)

5.4 पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

5.4.1. संविधानवाद की अवधारणाएँ(Concepts of constitutionalism)

5.4.2. संविधानवाद की उत्पत्ति और विकास(The Origin and Development of Constitutionalism)

5.4.3.संविधानवाद की समस्याएं और समाधान (Problems and solutions of constitutionalism)

5.4.4.संविधानवाद का महत्व (Importance of constitutionalism)

5.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

5.6.सारांश (Summary)

5.7.सूचक शब्द (Key Words)

5.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

5.9.उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

5.10.सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

5.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्यन के पश्चात् विद्यार्थी -

- संविधानवाद का अर्थ ,परिभाषा व संविधान से संविधानवाद के भेद को जा पाएंगे।
- संविधानवाद के उदय व विकास को जान पाएंगे।
- संविधानवाद की विभ्भिन अवधारणाओं को जान पाएंगे
- संविधानवाद के विभ्भिन तत्वों व आधारों को जान पाएंगे
- संविधानवाद की समस्याओं को जान पायेगें।

5.2.परिचय (Introduction)

संविधानवाद एक व्यापक अवधारणा है, जिसे संविधान या सांविधानिक सरकार का पयार्यवाची समझना उचित नहीं है। प्रारंभ से ही मनुष्य सामाजिक या राजनीतिक संगठन में रहता आया है। अरस्तू के मतानुसार मनुष्य एक सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी है। ज्यों-ज्यों मनुष्य में सामाजिकता का तत्त्व बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों राजनीतिक संगठन की उपयोगिता भी बढ़ती रही है। एक ओर मनुष्यों में राजनीतिक संगठन के अंतर्गत रहने की प्रवृत्ति रही है तो दूसरी ओर वे स्वतंत्रता के लिए अधिक-से-अधिक चिंतित रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राजनीतिक सत्ता के बीच संघर्ष का इतिहास समाज व राज्य की उत्पत्ति के साथ ही प्रारंभ हुआ। राजनीतिक संगठन में रहते हुए व्यक्ति इस बात के लिए सतत प्रयत्नशील रहा है कि सरकार स्वेच्छाचारी या अधिनायकवादी न बन जाए। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जब तानाशाही तथा स्वेच्छाचारी सरकारों ने नागरिकों की स्वतंत्रता का अपहरण करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। फलस्वरूप, यह प्रयास किया जाने लगा कि किसी ऐसे राजनीतिक संगठन की स्थापना की जाए, जिसके अंतर्गत शासकों की शक्ति नियंत्रित तथा मर्यादित रहे और वे उनका सदुपयोग करें, न कि दुरूपयोग। संविधानवाद का इतिहास तथा पृष्ठभूमि यहीं से प्रारंभ होती है।

संविधानवाद एक आधुनिक युगीन संकल्पना है, जो विधि और विनियमों द्वारा शासित राजनीतिक व्यवस्था की अपेक्षा करती है। यह व्यक्ति के स्थान पर विधि की सर्वोच्चता का समर्थक है। इसमें राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और सीमित (शक्तियों वाली) सरकार के सिद्धान्तों का समावेश होता है। इसका तादात्म्य 'विभक्त शक्तियों' की व्यवस्था के साथ किया जाता है। ऐसा सिद्धान्त और व्यवहार, जिसके अन्तर्गत किसी समुदाय का शासन संविधान के अनुसार चलाया जाता है संविधानवाद कहलाता है।

5.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

5.3.1.संविधानवाद का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definitions of Constitutionalism)

संविधान के साथ ही संविधानवाद की अवधारणा जुड़ी हुई है। राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण के रूप में संविधान के जन्म के साथ ही संवैधानिक सरकार की स्थापना हुई और संविधानवाद की परम्परा का विकास हुआ। संविधानवाद की प्रमुख मान्यता यह है कि यदि राजनीतिक शक्ति पर संविधानिक नियन्त्रण न हो तो वह निरंकुश बन जाती है और मानव स्वतन्त्रताओं और अधिकारों का भक्षण करने लगती है। इसी कारण

राजनीतिक शक्ति को नियन्त्रण में रखने के लिए और उसे जन-कल्याण का साधन बनाने के लिए उसमें उत्पीड़न या बाध्यता की शक्ति का समावेश किया जाता है। यह शक्ति ही संविधान कहलाती है और सभी शासकों या राजनीतिक शक्ति को नियन्त्रित रखने की संवैधानिक व्यवस्था ही संविधानवाद है।

संविधानवाद उन विचारो व सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है, जो उसे संविधान का विवरण व समर्थन करते हैं, जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जा सके। यह संविधान पर आधारित विचारधारा है, जिसका मूल अर्थ यही है कि शासन संविधान में लिखित नियमों व विधियों के अनुसार ही संचालित हो व उस पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित रहे, जिससे वे मूल्य व राजनीतिक आदर्श सुरक्षित रहें जिनके लिए समाज राज्य के बंधन स्वीकार करता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि संविधान के नियमों के अनुसार शासन संचालन मात्र ही संविधानवाद है। ऐसा तो किसी निरंकुश शासन में भी हो सकता है। एक तानाशाह अपनीइच्छा के अनुसार संविधान बनाकर , जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं की अवहेलना करता हुआ उन पर यह संविधान बलपूर्वक लागू कर सकता है। ऐसे संविधान में जनता के आदशों व मूल्यों का समावेष नहीं होता है, और इस कारण यह व्यवस्था संविधानवाद का विलोम ही होगी। अतः संविधानवाद संविधान के नियमों के अनुरूप शासन संचालन से अधिक है। इसका अर्थ है, निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन, जिसमें मनुष्य की आधारभूत मान्यताओं , आस्थाओं और मूल्यों की व्यवहार में उपलब्धि सम्भव हो। इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि संविधानवाद शासन की वह पद्धति है जिसमें शासन जनता की आस्थाओं, मूल्यों व आदर्शों का परिलक्षित करने वाले संविधान के नियमों व सिद्धान्तों के आधार पर ही किया जाए व ऐसे संविधान के माध्यम से ही शासकों को प्रतिबंधित व सीमित रखा जाए जिससे राजनीतिक व्यवस्था की मूल व्यवस्थाएँ सुरक्षित करें औरर व्यवहार में हर व्यक्ति को उपलब्ध हो सकें। संविधान व संविधानवाद एक दूसरे के पर्चायवाची नहीं है। जहां संविधान है वहाँ संविधानवाद आवश्यक रूप से पाया जाता हो यह जरूरी नहीं हैं। संविधान के माध्यम से तो हम किसी भी देष की राजनीतिक व्यवस्था, अर्थात सरकार के स्वरूप उसकी शक्तियों व नागरिकों और सरकार के सम्बन्धों से सम्बन्धित सिद्धान्तों व नियमों का संकेत पाते हैं जबकि संविधानवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें संविधान के माध्यम से ही सरकार की शक्तियों पर शक्ति वितरण द्वारा प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित किया जाता है जिससे वह आकांक्षाएँ व मूल्य सुरक्षित रहें जिनकी

उपलब्धि के साधन के रूप में संविधान का अपनाया व समर्थित किया गया है आज भी समर्थन दिया जाता है।संविधानवाद को कुछ विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:-

- **सी०एफ० स्ट्रांग के अनुसार -** ''संवैधानिक राज्य वह है जिसमें शासन की शक्तियों, शासितों के अधिकारों और इन दोनों के बीच सम्बन्धों का समायोजन किया जाता है।"
- **कार्टन हर्ज के अनुसार -** ''मौलिक अधिकार तथा स्वतन्त्र न्यायपालिका प्रत्येक संविधानवाद की अनिवार्य और सामान्य विशेषता है।"
- **जे०एस० राअसैक के अनुसार -** ''धारणा के रूप में संविधानवाद का अभिप्राय है कि यह अनिवार्य रूप से सीमित सरकार तथा शासन के रूप में नियन्त्रण की एक व्यवस्था है।' '
- **कोरी तथा अब्राहम के अनुसार - ''**स्थापित संविधान के निर्देशों के अनुरूप ही शासन ही संविधानवाद कहा जाता है।"
- **के०सी० व्हीयर के अनुसार** - ''संविधानवाद का अर्थ है निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संविधानवाद एक सीमित शासन है, क्योंकि इसमें कुछ प्रतिबन्धों की व्यवस्था द्वारा सरकार को सीमित व उत्तरदायी बनाया जाता है।

5.3.2.संविधान और संविधानवाद में अन्तर (Difference between Constitution and Constitutionalism)

- **परिभाषा की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of definition)**- संविधान एक संगठन का प्रतीक होता है तथा संविधानवाद एक विचारधारा का प्रतीक है जिसमें राष्ट्र के मूल्य विश्वास तथा राजनीतिक आदर्श शामिल होते हैं। संविधान एक ऐसा संगठन है जिसमें सरकार और शासितों के सम्बन्धों को निर्धारित किया जाता है। संविधान राजनीतिक व्यवस्था के शक्ति सम्बन्धों की आत्मकथा है। संविधानवाद उन विचारों का द्योतक है जो संविधान का वर्णन और समर्थन करते हैं तथा जिसके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावकारी नियन्त्रण कायम रखना सम्भव होता है।

- **प्रकृति की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Nature)-** प्रकृति की दृष्टि से संविधान एक साधन प्रधान धारणा है और संविधानवाद एक साध्य प्रधान धारणा है। संविधानवाद राजनीतिक समाज के लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सुव्यवस्था है। यह हर समाज के गन्तव्यों को प्राप्त करने की संविधान रूपी साधन द्वारा चेष्टा करता है। इस तरह संविधान वह साधन है जो राजनीतिक समाज के लक्ष्यों व उद्देश्यों को प्राप्त करके संविधानवाद की स्थापना करता है या संविधानवाद रूपी साध्य को प्राप्त करता है।
- **उत्पत्ति की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Origin)-** संविधान का निर्माण किया जाता है जबकि संविधानवाद विकास की लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है। संविधानवाद किसी भी देश के राजनीतिक समाज के मूल्यों, विश्वासों तथा आदर्शों के विकास का परिणाम होता है। संविधान जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप सदैव परिवर्तित व संशोधित होते रहे हैं, लेकिन संविधानवाद की स्थापना के बाद उसे बदलना या समाप्त करना निरंकुशता व अराजकता को जन्म देता है।
- **क्षेत्र की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Scope**)- क्षेत्र की दृष्टि से संविधान एक अपवर्जक (exclusive) तथा संविधानवाद एक अन्तभूर्तकारी (inclusive) धारणा है। संविधानवाद तो कई देशों में यदि उनकी संस्कृति समान है तो एक पाया जा सकता है, लेकिन संविधान हर देश का अलग-अलग होता है।
- **औचित्य की दृष्टि से अन्तर (Difference from the view point of Legitimacy)-** संविधान का औचित्य विधि के आधार पर सिद्ध किया जाता है, जबकि संविधानवाद में आदर्शों का औचित्य विचारधारा के आधार पर सिद्ध होता है। जिस देश के संविधान में उचित कानून व नियमों की व्यवस्था होती है तथा संविधान जन-इच्छा के अनुकूल होता है तो उस संविधान को औचित्यपूर्ण माना जाता है। इसी तरह यदि किसी देश में संवैधानिक आदर्शों का संवैधानिक उपायों से ही प्राप्त करने के प्रयास किए जाते हैं तो संविधानवाद का औचित्य सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संविधान और संविधानवाद में गहरा अन्तर है। एक संगठन का प्रतीक है तो दूसरा विचारधारा का। एक साधन है तो दूसरा साध्य। एक सीमित धारणा है तो दूसरी विस्तृत। एक का निर्माण होता है तो दूसरे का विकास। इतने अन्तर के बावजूद भी दोनों में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। दोनों एक

ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि दोनों की दिशाएं अलग अलग होंगी तो इसके राजनीतिक समाज के लिए विनाशकारी परिणाम निकलेंगे।

5.3.3.संविधानवाद के आधार (Foundations of Constitutionalism)

राजनीतिक समाज के लोगों में पाई जाने वाली मतैक्य की भावना ही संविधानवाद का आधार है। मतैक्य जितना अधिक विरोध की बजाय सहमति के नजदीक होगा, उतनी ही अधिक संविधानवाद में ठोसता व व्यावहारिकता का गुण होगा। यही मतैक्य संविधानवाद की आवश्यक शर्त भी है और आवश्यकता भी है। यह मतैक्य चार प्रकार का हो सकता है –

- **संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर मतैक्य (Consensus of the form of Institutions and Procedures)** यदि नागरिक यह महसूस करते हैं कि सरकार उनके हितों के विरूद्ध कार्य कर रही है तो वे सरकार का विरोध करने में कोई देर नहीं करते। स्थिति संविधानवाद के विपरीत होती है। इसलिए संविधानवाद को बनाए रखने के लिए संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर नागरिकों में मतैक्य होना जरूरी है।
- **सरकार के आधार के रूप में विधि-शासन की आवश्यकता पर सहमति (Agreement on desirability of the rule of law as basis of Government)**- जनता को सदैव यह विश्वास होना चाहिए कि सरकार या शासन कानून द्वारा ही चलाया जा रहा है। जनता की यही आस्था या विश्वास आपातकाल में शासक वर्ग को संविधानवाद से छूट देकर लाभ पहुंचाता है।
- **समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति (Agreement on the general goals of Society)**- राजनीतिक समाज के लोगों में सामान्य उद्देश्यों पर सहमति का अभाव राजनीतिक व्यवस्था में तनाव व खिंचाव उत्पन्न करता है। इसलिए संविधानवाद के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक समाज के लोगों में समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति बनी रहे। यही संविधानवाद की आधारशिला है।
- **गौण लक्ष्यों एवं विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर सहमति (Concurrence in lesser goal and on specify policy question)**- संविधान के भवन को धराशायी होने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक समाज के लोगों में गौण लक्ष्यों और विशिष्ट नीति-प्रश्नों पर भी सहमति बनी रहे। यह सहमति संविधानवाद को व्यवहारिकता का गुण प्रदान करती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक समाज के लोगों में संस्थाओं के ढांचे व प्रक्रियाओं पर, सरकार के आधार के रूप में विधि के शासन की आवश्यकता पर, समाज के सामान्य उद्देश्यों, गौण लक्ष्यों तथा विशिष्ट नीति-सम्बन्धी प्रश्नों पर आम राय का होना जरूरी है। विभिन्न बातों पर राजनीतिक समाज के लोगों में पाया जाने वाला मतैक्य या सहमति ही संविधानवाद का आधार है।

5.3.4.संविधानवाद की विशेषताएं (Features of Constitutionalism)

- **संविधानवाद एक गत्यात्मक अवधारणा है (Constitutionalism is a Dynamic Concept)-** गतिशीलता संविधानवाद का प्रमुख गुण होता है। इसी कारण संविधानवाद विकास का सूचक होता है। समय व परिस्थितियों के अनुसार समाज के मूल्य व आदर्शों के बदलने के कारण संविधानवाद को भी अपनीप्रकृति को बदलना पड़ता है। यदि संविधानवाद लोचशीलता तथा परिवर्तनशीलता के गुण से हीन होगा तो संविधानवाद में रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा। ऐसे संविधानवाद के दिन जल्दी ही लद जायेंगे और वह विनष्ट हो जाएगा।
- **संविधान मूल्यों पर आधारित अवधारणा है (Constitutionalism is a value based Concept)-** संविधानवाद का सम्बन्ध उन आदेशों से होता है जो किसी राष्ट्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं और राष्ट्रवाद का आधार होते हैं। संविधानवाद उन विश्वासों, राजनीतिक आदर्शों और मूल्यों की तरफ इशारा करता है जो प्रत्येक नागरिक को बहुत ही प्रिय होते हैं। अभिजन वर्ग के बाद समाज का बुद्धिजीवी वर्ग इसको जनता तक पहुंचाता है। सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होने पर ही मूल्य संविधान का आदर्श बनते हैं और संविधानवाद को मूल्यों से युक्त करता है। इन मूल्यों की रक्षा के लिए नागरिक हर बलिदान देने को तैयार रहते हैं। जिन मूल्यों को समाज द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है, वे मूल्य संविधानवाद से दूर हट जाते हैं।
- **संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है (Constitutionalism is a Constitution based Concept)-** संविधान नागरिक समाज के मूल्यों व आदर्शों का प्रतिबिम्ब होता है। संविधान किसी भी देश का सर्वोच्च कानून होता है। प्रतिबन्धों की व्यवस्था के कारण जनता का संविधान में गहरा विश्वास होता है। यही विश्वास और लगाव संविधानवाद का भी आधार है। यदि संविधान और संविधानवाद में साम्य नहीं होगा तो राजनीतिक उथल-पुथल की घटनाएं शुरू हो सकती हैं और देश में अराजकता का

माहौल पैदा हो सकता है। इसलिए संविधानवाद को संविधान पर ही आश्रित रहना पड़ता है। इसी से संविधानवाद व्यवहारिकता का गुण प्राप्त करता है।

- **संविधानवाद समभागी अवधारणा है (Constitutionalism is a Shared Concept)**-एक देश के मूल्य व आदर्श दूसरे देशों के संविधान का भी अंग बन सकते हैं। यद्यपि समान संविधानवाद वाले देशों में भी कुछ असमान लक्षण हो सकते हैं, लेकिन यह अन्तर मात्रात्मक ही रहता है, गुणात्मक नहीं। विकासशील प्रजातन्त्रीय देशों में संविधानवाद के आधारभूत लक्षण लगभग समान मिलते हैं। यदि कोई अन्तर दृष्टिगोचर भी होता है तो वह संविधानवाद की समन्वयकारी शक्ति में घुल जाता है। अतः संविधानवाद एक समभागी अवधारणा है। संविधान तो प्रत्येक देश का अपना अलग अलग होता है, संविधानवाद के लक्षण समान रूप से कई देशों में एक जैसे ही मिल सकते हैं। इस प्रकार संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है। यह संविधान के आदर्शों व मूल्यों का साध्य के रूप में प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसका राजनीतिक समाज के मूल्यों से गहरा लगाव होने के कारण यह संस्कृति से सम्बन्धित भी होता है। यह समय व परिस्थितियों के अनुसार विकास की तरफ भी बढ़ता रहता है।
- **संविधान संस्कृति सम्बद्ध अवधारणा है (Constituionalidm is a culture-bound concept)**-किसी भी राजनीतिक समाज के मूल्यों का विकास समाज की संस्कृति से सम्बद्ध होते हैं हर देश के आदर्श मूल्य व विचारधाराए उस देश की संस्कृति की ही उपज होती है, और संस्कृति से ही गठबन्धित रहते है। संविधानवाद इन्हीं पर आधारित है। वर्तमान युग में कई राजनीतिक समाज इतने विशाल होते हैं कि उनमे संस्कृतियों की विविधता और भिन्नता पाई जाती है। ऐसे राष्ट्रों में सविधानवाद इन विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय का सूचक है। उनमें संघर्ष तथा विरोध के स्थान पर सहयोग और सामंजस्य की व्यवस्था संविधानवाद द्वारा ही होती है।
- **संविधानवाद प्रधानतः साध्य मूलक अवधारणा है (Constitutionalism is predominantly an ends concept)-** संविधानवाद प्रधानतः साध्यों से समबन्धित विचार है। वैसे भी साधनों व साध्यों को एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। फिर भी संविधानवाद से प्रमुखतया लक्ष्यों का ही संकेत मिला है। जब हम यह कहते है कि संविधानवाद साध्य-प्रधान विचार है तो उसका अर्थ उन आदशों से है जिन्हें

समाज साध्य के रूप में अगीकार करता है। इस प्रकार संविधानवाद का साध्यों को ओर प्रमुख संकेत होता है और साधनों की ओर गौण संकेत ही होता है।

5.3.5.संविधानवाद के तत्व (Elements of constitutionalism)

पिनोक व स्मिथ ने अपनीपुस्तक पोलिटिकल सायंस: ऐन इन्ट्रोडक्शन में संविधान के चार तत्वों का उल्लेख किया है।

(क) संविधान अपरिहार्य संस्थाओं की अभिव्यक्ति (The constitution as an embodiment of essential institutions):- संविधान चाहे लिखित हो या विकसित व अलिखित, उसमे व्यवस्थापिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के संगठन, कार्यि व उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्यवस्था, संविधानवाद की अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य है। संविधान में सरकार के विभिन्न स्तरों व अगों की शक्तियों की व्याख्या ही नही हो वरन् उनके पारस्परिक सम्बन्धों का उन पर लगी सीमाओं और उनकी कार्यविधि का स्पष्ट उल्लेख भी होना चाहिए, अगर किसी संविधान द्वारा आधारभूत राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना व उनकी शक्तियों की स्पष्ट व्याख्या नही होती है तो ऐसी व्यवस्था में संविधानवाद सम्भव नही होता है। ऐसे राज्यो में राजनीतिक शक्तियों के प्रयोगकर्त्ता अपने अधिकारक्षेत्र में इच्छानुसार वृद्धि करके शासन शक्तियों के दुरूपयोग के अवसर प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए संविधान में आधारभूत संस्थाओं की स्पष्ट व्यवस्था, संविधानवाद का एक महत्त्वपूर्णा तत्त्व है। पिनोक व स्मिथ तो प्रतिबंधों को संविधानवाद का मूल मन्त्र मानते है। हर राज्य में सरकार सवैधानिक बनाए रखने के लिए, उसका किसी न किसी प्रकार नियंत्रण व्यवस्था के अधीन होना आवश्यक है

संविधान का व्यवहर में किसी भी अधिकारी द्वारा उल्लंघन नही किया जाता है। साधाणतया, हर लसकतान्त्रिक राज्य में कुछ नियंत्रण शासको पर लगाए जाते है। मोटे तौर पर यह नियंत्रण है (1) विधि के शासन की स्थापना, (2) मौलिक अधिकारों की व्यवस्था, (3) राज्य की शक्तियों के विभाजन, पृथक्करण व विकेन्द्रीकण की व्यवस्था, तथा (4)सामाजिक बहुलवाद की परिस्थितियों को बनाए रखने की व्यवस्था।

इन नियंत्रण व्यवस्थाओं के माध्यम से सरकार व नागरिक, दोनों ही अपने अधिकार व कार्य क्षेत्र में सीमित रहने के लिए बाध्य हो जाते हैं। एसी व्यवस्था में, संविधान समाज के आदर्शों, आस्थाओं और राजनीतिक मूल्यों की प्राप्ति का साधान बना रहता है। अगर किसी राज्य में संविधान द्वारा ऐसे प्रतिबन्ध स्थापित नही किये जाते

हैं तो यह संविधान राजनीतिक आचरण का निदेशक व नियंत्रककर्ता नही रह पाता हैं। एसी नियंत्रण मुक्त राजनीतिक व्यवस्था में शासक स्वेच्छा से सब कुछ कर सकता हैं और जिस राज्य में शासक उन्मुक्त होकर सब कुछ कर सकें, वहा संविधानवाद सम्भव नही हो सकता है। इसलिये संविधान का राजनीतिक शक्ति का प्रतिबन्धक होना संविधानवाद का आधारभूत तत्त्व हैं। समय, परिस्थितियों और आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ

(ख).संविधान राजनीतिक शक्ति का संगठन (The constitution as an organiser of political authroity)– संविधन केवल सरकार की सीमाओ की स्थापना ही नही करता अपितु सरकार की विभिन्न संस्थाओ में शक्तियों का क्षैतीजीय व लम्बात्मक वितरण भी करता है। संविधान यह व्यवस्था भी करता है कि सरकार के कार्य अधिकार युक्त रहें, और स्ंवय सरकार भी वैध्य (स्महपजपउंजम) रहें। अगर कोई संविधान सरकार के कार्याि को अधिकार युक्त व स्ंवय सरकार को वैध्य नही बनाता तो ऐसी सरकार व संविधन अधिक दिन तक स्थाई नही है सकते हैं तथा, ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में संविधानवाद राजनीतिक शक्ति का संगठन नहीं रहता। इससे स्पष्ट है कि संविधान द्वारा हर राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति का संगठन होना आवश्यक है, क्योकि संविधानवाद की अभिव्यक्ति संविधान द्वारा व इसकी व्यवाहर में प्राप्ति सरकार द्वारा ही सम्भव है। निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि संविधानवाद के उपरोक्त वर्णित चारों तत्त्व संविधन में निहित होने चाहिए। अगर किसी राज्य के संविधान में संविधानवाद के इन तत्त्वों का समावेश नही होता तो वह संविधान संविधानवाद सम्भव नही हो सकता।

5.4. पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

5.4.1. संविधानवाद की अवधारणाएँ (Concepts of constitutionalism)

संविधानवाद संविधान पर आधारित अवधारणा है। संविधान जनता का सर्वोच्च कानून होता है। प्रत्येक देश के संविधान के अपनेराजनीतिक आदर्श व मूल्य होते हैं। प्रत्येक देश की संस्कृति के अपने गुण अन्य देशों से भी साम्य रखने के कारण कई देशों में सांझे संविधानवाद का विकास हो जाता है। यद्यपि यह तो सत्य है कि समस्त विश्व में एक संविधानवाद नहीं हो सकता, क्योंकि विश्वके देशों की संस्कृति में काफी अन्तर है। इसी

आधार पर संविधान भी अलग अलग होते हैं और संविधानवाद भी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में तीन तरह का संविधानवाद विकसित हुआ है। इस आधार पर संविधानवाद की तीन अवधारणाएं हैं-

(I) संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा (Estern Concept of Constitutionalism)

(II) संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा (Marist or Communist Concept of Constitutionalism)

(III) संविधानवाद की विकासशील देशों की अवधारणा (Concept of Consitutionalism of Developing Countries)

(I) संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा (estern Concept of Constitutionalism)

इस अवधारणा को उदारवादी लोकतन्त्र की अवधारणा भी कहा जाता है। यह अवधारणा मूल्य मुक्त तथा मूल्य अभिभूत दोनोंव्याख्याओं पर आधारित हैं। मूल्य मुक्त अवधारणा के रूप में इसमें केवल संविधानिक संस्थाओं का वर्णन किया जाता है, संविधानवादके आदर्शों व मूल्यों का नहीं। जब राजनीतिक समाज के आदर्शों और मूल्यों के दृष्टिगत संविधानवाद की व्याख्या की जाती है तोवह मूल्य-अभिभूत व्याख्या कहलाती है। मूल्य अभिभूत व्याख्या ही आधुनिक लोकतन्त्र की मांग है। संविधानवाद की पाश्चात्यअवधारणा उदारवाद का दर्शन है। यह संविधानवाद साध्य और साध्य दोनों है। इसमें राजनीतिक संस्थाओं के ढांचे के साथ-साथराजनीतिक समाज के मूल्यों, आदर्शों (स्वतंत्रता, समानता, न्याय) को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यह संविधानवाद प्रतिबन्धोंकी व्यवस्था द्वारा सीमित सरकार की व्यवस्था करता है और कुछ संविधानिक उपबन्धों द्वारा राजनीतिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्तका भी प्रतिपादन करता है। इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता व अधिकारों का बचाव होता है और विधि के शासन द्वारा समाज में सुव्वस्थाबनी रहती है। पश्चिमी संविधानवाद में संविधान का महत्व सरकार से अधिक होता है क्योंकि सरकार का निर्माण संविधान के बादमें होता है। इस संविधानवाद में संवैधानिक सरकार संविधान के आदर्शों को मानने के लिए बाध्य प्रतीत होती है। संवैधानिक उपबन्धतथा उत्तरदायित्व का सिद्धान्त उसे संविधानात्मक बनाए रखने में मदद करते हैं। इस तरह पाश्चात्य संविधानवाद लोकतन्त्रीय भावनापर आधारित होता है।

(II) संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा (Marist or Communist Concept of Constitutionalism)

साम्यवादी देशों में संविधानवाद की अवधारणा पाश्चात्य संविधानवाद से सिद्धान्त में साम्य रखते हुए भी व्यवहारिक दृष्टिकोण सेकाफी भिन्न हैं। इस अवधारणा की दृष्टि में संविधान का उद्देश्य सबके लिए स्वतन्त्रता, समानता, न्याय और अधिकार निश्चित करनान होकर, बल्कि समाजवाद की स्थापना करना है। यह संविधानवाद मार्क्स व लेनिन के वैज्ञानिक समाजवादी विचारों पर आधारितहै। समस्त साम्यवादी संविधानवाद सोवियत संविधान के इर्द-गिर्द ही घूमता है और सोवियत संविधान का निर्माण समाजवादी तत्वोंसे हुआ है। साम्यवादी देशों में सरकार व शक्ति का अर्थ पाश्चात्य देशों के दृष्टिकोण से बिल्कुल विपरीत है। इसी आधार पर संविधानवाद में भी भिन्नता आ जाती है। साम्यवादी सरकार को पूंजीपति वर्ग के हाथ की कठपुतली मानते हैं, जो धनिक वर्ग के हितोंकी ही पोषक होती है। उनके अनुसार राजनीतिक शक्ति का आधार आर्थिक शक्ति है। उत्पादन शक्ति के धारक होने के कारणपूंजीपति राजनीतिक सत्ता के भी स्वामी होते हैं। इसलिए राजनीतिक शक्ति और मौलिक अधिकारों का प्रयोग जनसाधारण की बजायअमीर लोग ही करते हैं। इसलिए पाश्चात्य जगत में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था राजनीतिक शक्ति प्राप्त लोगों के लिए ही रहतीहै। राजनीतिक शक्ति पर किसी प्रकार के नियन्त्रण की बात करना मूर्खता है, क्योंकि आर्थिक व राजनीतिक शक्ति से सम्पन्न सरकारपर कोई भी नियन्त्रण प्रभावी नहीं हो सकता। इसलिए राजनीतिक शक्ति पर नियन्त्रण केवल तभी सम्भव है, जब आर्थिक शक्तिपर नियन्त्रण लगाया जाए।

साम्यवादी संविधानवाद आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण करने के लिए ऐसी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना पर जोर देते हैं जो आर्थिकसाधनों का बंटवारा समाज की सभी व्यक्तियों या वर्गों में कर दे। उनका मानना है कि आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण से राजनीतिकशक्ति भी समस्त समाज के हाथ में आ जाएगी और सरकार की नीतियों का लाभ सभी व्यक्तियों को मिलने लगेगा। साम्यवादीविचारकों का मानना है कि आर्थिक शक्ति पर नियन्त्रण राजनीतिक शक्ति पर भी स्वयं नियन्त्रण रखने लग जाएगा।

(III) संविधानवाद की विकासशील देशों की अवधारणा (Concept of Consitutionalism of Developing Countries)

राजनीतिक स्थावित्व के अभाव में विकासशील देशों में संविधानवाद का विकास उतना नहीं हुआ है, जितना पश्चिमी देशों में हुआहै। भारत को छोड़कर सभी विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएं अभी संक्रमणकाल के दौर से गुजर रही हैं। भारत हीएकमात्र ऐसा देश है जो राजनीतिक स्थायित्व के साथ-साथ संविधानवाद में भी पाश्चात्य देशों से पीछे नहीं है। भारत में संविधानवाद अपनीपराकाष्ठा पर पहुंच चुका है। भारत ने पाश्चात्य संविधानवाद के समस्त आदर्श प्राप्त कर लिए हैं और वह बराबरसंविधानवाद का विकास कर रहा है। विकासशील देशों की अपनीकूछ समस्याएं हैं जो संविधानवाद के मार्ग में बाधा बनकर खड़ीहैं। फिर भी विकासशील देश कम या अधिक मात्रा में पश्चिमी देशों की तरह संविधानवाद का पोषण कर रहे हैं। विकासशील देशोंके संविधानवाद को समझने के लिए इन देशों की समस्याओं को समझना बहुत आवश्यक है।

(IIII) भारत में संविधानवाद (Constitutionalism in India)

भारत एक विकासशील देश है। भारत में संविधानवाद पाश्चातय व साम्यवादी संविधानवाद का मिश्रित रूप है। भारत ने संसदीयप्रजातन्त्र को विरासत के रूप में अपनाया है। भारत में यह व्यवस्था अन्य विकासशील देशों की तुलना में अधिक सफल रही है।भारत के संविधानवाद में कानून का शासन, मौलिक अधिकारों, स्वतन्त्रता व समानता का आदर्श, स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका,राजनीतिक शक्ति का पृथक्करण, निश्चित अवधि के बाद चुनाव, राजनीतिक दलों की व्यवस्था, प्रैस की स्वतन्त्रता, सामाजिकबहुलवाद आदि द्वारा सीमित सरकार व उत्तरदायी सरकार की परम्परा का निर्वाह किया गया है। इस दृष्टि से भारत में संविधानवादउदारवादी पाश्चात्य लोकतन्त्र के काफी निकट है। इसी तरह भारत में साम्यवादी संविधानवाद के समाजवादी तथ्यों को भी अपनायागया है। भारत में जनकल्याण को बढ़ावा देने के लिए उत्पादन व वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व की व्यवस्था की गईहै। अतः भारत का संविधानवाद मिश्रित प्रकृति का है और विकसित अवस्था में है।इस प्रकार विकासशील देशों में भारत को छोड़कर संविधानवाद अभी निर्माण के दौर में है। धीरे धीरे कई विकासशील देशोंमें स्वच्छ संवैधानिक परम्पराएं विकसित हो रही हैं। होवार्ड रीगिन्स का कथन सत्य है कि "राज्य नए हैं और राजनीतिक खेलके नियम प्रवाह में हैं इसलिए संविधानवाद अभी सुस्थिर नहीं हो सका है।" आज विकासशील देश संविधानवाद की वास्तविकताओंसे काफी दूर है। भारत की तरह आज बर्मा,

इण्डोनेशिया, नाईजीरिया, श्रीलंका आदि विकासशील देशों में संविधानवाद की लोकतन्त्रीय परम्पराएं विकसित हो रही हैं

5.4.2. संविधानवाद की उत्पत्ति और विकास (The Origin and Development of Constitutionalism)

संविधानवाद की उत्पत्ति किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं है। इसकी उत्पत्ति और विकास एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है। यूनानियों से लेकर वर्तमान समय तक संविधानवाद एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया से गुजरा है। यूनानी चिन्तर्का के बाद इसे परवर्ती विचारकों ने भी विकसित होने में अपना सहयोग दिया है। एक गतिशील अवधारणा के रूप में संविधानवाद का अपना एक विशिष्ट प्रकार का इतिहास है। यूनानी नगर राज्यों के जन्म से वर्तमान अवस्था तक संविधानवाद के विकास को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है:

- **यूनानी संविधानवाद (Greek Constitutionalism):-** संविधानवाद की उत्पत्ति सबसे पहले यूनान के ऐथेंस नगर में हुई थी। सर्वप्रथम यूनानी दार्शनिकों ने ही राज्य के रूप, कार्यों और उद्देश्यों पर विचार करते हुए राज्य के विभिन्न रूपों में अन्तर किया। उन्होंने विवेकपूर्ण ढंग से संविधानिक शासन पर विचार किया और व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सीमित करने वाली राज्य की शक्ति पर मनन किया। प्लेटो ने संविधानिक शासन के बारे में कहा कि संविधानिक शासन शासक की इच्छा से नहीं, बल्कि नियमानुसार संचालित होते हैं। प्लेटो की तरह अरस्तु ने भी संविधानवाद के तत्वों-सार्वजनिक हित, सामान्य कानूनों का शासन, सहमति का आधार आ.दे पर अपने विचार दिए। अरस्तु की दृष्टि में अच्छी नागरिकता की कसौटी-संविधान का पालन करना था। अरस्तु ने सर्वप्रथम राज्य और सरकार में शासन के उद्देश्यों तथा संस्थात्मक आधार पर भेद व वर्गीकरण किया। यूनानी विचारकों ने संविधानों का पालन कराने के लिए शिक्षा पर बहुत जोर दिया ताकि राज्य को अराजकता से बचाया जा सके। यूनानी नगर राज्यों में संविधान का पालन अनिवार्य रूप से किया जाता था। आज भी यूनानी संविधानवाद का प्रभाव कानून की सर्वोच्चता के रूप में विद्यमान है। लेकिन यूनानी संविधानवाद का सबसे बड़ा दोष उसमें गतिशीलता व परिवर्तनशीलता का अभाव था। इसी कारण वह संविधानवाद तो समाप्त हो गया लेकिन उसका राजनीतिक आदर्श आज भी जीवित है।

- **रोमन संविधानवाद (Roman Constitutionalism):-** यूनानी नगर-राज्यों के पतन के बाद रोम के महान साम्राज्य की स्थापना के बाद रोम ने सरकार के उपकरण के रूप में संविधान का जन्म हुआ। यह संविधान दृष्टांतों, मानव स्मृतियों, राज्य के विशेषज्ञों के कथनों, रीति-रिवाजों पर आधारित सरकार का कानून था। रोमन संविधानवाद कानून के शासन के रूप में विश्यात है। उन्होंने सामान्य और संविधानिक कानूनों में अन्तर किया। उनका व्यवस्था व एकता में गहरा लगाव होने के कारण एक अतिराष्ट्रीय सत्ता में भी विश्वास था। उन्होंने यह भी सिद्धान्त दिया कि कानूनी शक्ति का स्त्रोत जनता ही है। जब रोमन गणतन्त्र का पतन हुआ तो संविधानवाद भी विनाश की ओर चल पड़ा। प्रो० स्ट्रांग ने लिखा है- "रोमन संविधानवाद की शुरुआत एकतन्त्रात्मक, अभिजाततंत्रात्मक और लोकतन्त्रात्मक तत्त्वों के सुन्दर मेल से हुई और उसका अन्त अनुत्तरदायी निरंकुशतन्त्र के रूप में हुआ।" लेकिन रोमन संविधानवाद की यह बात आज भी लोकतन्त्रीय शासन "प्रणालियों में संविधान का प्रमुख आदर्श है कि सम्राट को शक्ति सौंपने वाली जनता उसकी शक्ति को वापिस भी ले सकती है। आधुनिक युग में जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम, बन्धुत्व, सहिष्णुता का आदर्श अपनाया जा रहा है, वह रोमन संविधानवाद की ही देन हैं। कानून का संहिताकरण और उत्तरदायी सरकार का सिद्धान्त रोमन संविधानवाद की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, जो आधुनिक संविधानवाद का प्रमुख आधार है।
- **मध्यकाल में संविधानवाद (Constitutionalism in Middle Age):-** रोमन साम्राज्य के नष्ट होने के बाद यूरोप में सामन्तवाद का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग में चर्च ही सर्वोच्च धार्मिक सत्ता थे। उसे ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। राजा केवल ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी था। इससे संविधानवाद का मार्ग अवरुद्ध हो गया। लेकिन आगे चलकर सामन्तवाद की बुराईयों का अन्त हुआ और दैवीय सत्ता के स्थान पर स्वेच्छाचारी राजतन्त्र तथा वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हुई। इंगलैण्ड, फ्रांस, स्पेन में केन्द्रीयकरण की प्रगति ने सामन्तवाद की बुराईयों को नष्ट कर दिया और यहां पर संविधानवाद के लक्षण प्रकट होने लगे। ब्रिटेन में राजा के दैवी अधिकारों के स्थान पर संसद की सर्वोच्चता का सिद्धान्त पनपने लगा। इस युग में लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त, सर्वव्यापी कानून, प्रतिनिधि लोकतन्त्रवाद की अवधारणा का उदय हुआ। पैहुआ के मार्सीलियो ने कहा कि "जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है।" इंग्लैण्ड और फ्रांस में संविधानवाद की दो दिशाएं-राष्ट्रवाद और प्रतिनिधि लोकतन्त्रवाद का उदय हुआ। फ्रांस में स्वतन्त्रता,

समानता तथा भ्रातृत्व की भावना के उदय ने निरंकुश राजतन्त्र पर तीव्र प्रहार करके संविधानवाद का नया अध्याय शुरु किया।

- **पुनर्जागरण और संविधानवाद (Renaissance and Constitutionalism):-** पुनर्जागरण काल में इटली और जर्मनी में संविधानवाद का मार्ग अवरुद्ध हो गया। इटली में मैकियावेली ने 'The Prince' पुस्तक में राजनीति की नैतिक नियर्मा से अलग कर दिया। यूरोप में सामन्तवाद के पतन के बाद एकीकरण करने वाली शक्ति राजा ही था। इस काल में केवल इंग्लैण्ड ही ऐसा देश था, जहां संविधानवाद का विकास हुआ। 1688 की शानदार क्रान्ति के बाद इंग्लैण्ड के निरंकुश राजतन्त्र के स्थान पर सीमित राजतन्त्र की स्थापना हुई। इस युग में इंग्लैण्ड में मनित्रपरिषद तथा प्रधानमन्त्री की संस्थाओं का जन्म हुआ। 1742 में प्रधानमन्त्री वालपोल ने अविश्वास मत के कारण अपना पद छोड दिया। इससे इस सिद्धान्त की स्थापना हो गई कि मन्त्रिपरिषद व प्रधानमन्त्री अपने पद पर उसी समय तक रह सकते हैं, जब तक उन्हें लोकसदन का विश्वास हासिल रहे। इंग्लैण्ड में कानून के शासन की स्थापना ने संविधानवाद का नया अध्याय शुरु किया। इस युयु में ही अमरीकी व फ्रांसीसी क्रान्तियों ने लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों को जन्म दिया। अमेरिका के स्वतन्त्रता युद्ध का नारा था "प्रतिनिधित्व के बिना कर नहीं।" 4 जुलाई 1776 के अमेरिका स्वतन्त्रता के घोषणा पत्र में कहा गया कि "सब व्यक्ति समान हैं और सभी को जीवन, स्वतन्त्रता तथा सुख प्राप्त करने के अधिकार हैं।" इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए ही सरकारें स्थापित की जाती हैं।" वास्तव में आधुनिक संविधानवाद का जन्म यहीं से होता है। । 789 की फ्रांसीसी क्रान्ति के घोषणा पत्र में भी इसी बात पर बल दिया गया कि मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र और अधिकारों में समान है। कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति है। जब 1791 में फ्रांस का संविधान बनाया गया तो इस घोषणा को उसमें महत्वपूर्ण जगह मिली।
- **औद्योगिक क्रान्ति से प्रथम विश्वयुद्ध तक संविधानवाद (Constitutionalism from Industrial Revolution upto First World War):-** औद्योगिक क्रान्ति के जन्म ने संविधानवाद को विकसित किया। इस क्रान्ति के कारण पूंजीपति वर्ग ने शासन पर कब्जा करके कानूनों का प्रयोग मनमाने तरीके से करना शुरु कर दिया। पूंजीवाद के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि हुई और राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वता की भावना भी बढ़ी। पूंजीवाद ने श्रमिक आन्दोलनों को जन्म दिया। श्रमिक संगठित होकर

अपने राजनीतिक अधिकारों की मांग करने लगे। 1867 और 1885 के सुधार अधिनियम श्रमिकों के आन्दोलन के ही परिणाम थे। 1848 में मार्क्स के कम्यूनिष्ट मैनीफेस्टो 'Communist Manifesto' में श्रमिकों को एकता के लिए कहा गया। इसका संविधानवाद के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ा। पूंजीपतियों ने निरंकुश सत्ता के स्थान पर संविधानिक सत्ता के प्रयास शुरु कर दिये। मध्यम वर्ग को मताधिकार प्राप्त हो गया और राष्ट्रवादी दलों के संगठन के कारण राष्ट्रवाद तथा संविधानिक सुधारों का विकास हुआ। इटली तथा जर्मनी में एकीकरण आन्दोलनों का विकास हुआ। 1859 में एकीकृत इटली का संविधान बना, डेनमार्क में 1864 में संसदीय व्यवस्था की स्थापना हुई, आस्ट्रिया और हंगरी में 1869 में नए संविधान बने और फ्रांस में 1875 में तृत्तीय गणतन्त्र की स्थापना हुई। इस तरह संविधानवाद का सीमित विकास हुआ। 1874 में स्विट्जरलैण्ड में भी आधुनिक ढंग के संविधान का निर्माण हुआ, जो आज तक भी प्रचलित है। इसमें जनमत संग्रह की व्यवस्था द्वारा जनता को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। 1889 में जापान के सम्राट ने भी वैधानिक शासन की स्थापना के लक्ष्य को प्राप्त करने वाले नए संविधान पर हस्ताक्षर किए। 1875 में कनाडा में भी एक नए संविधान का निर्माण किया गया। इस तरह संविधानवाद में नई-नई प्रवृत्तियों का विकास हुआ और संविधानवाद में आधुनिकीकरण का समावेश होता गया।

- **प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध तक संविधानवाद (Constitutionalism from First World War upto Second World War):-** प्रथम विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद का विकास नए ढंग से हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद संविधानवाद यूरोपीय सीमाओं को लांघकर सार्वभौमिकता की तरफ बढ़ने लगा। युद्ध के बाद समी देशों ने लोकतन्त्रीय संविधानों का निर्माण शुरु किया। राष्ट्र संघ की स्थापना ने संविधानवाद के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस दौरान इटली में फासीवाद तथा जर्मनी में नाजीवाद के उदय ने संविधानवाद को गहरी क्षति भी पहुंचाई। इसी तरह रूस में भी साम्यवाद के प्रादुर्भाव ने संविधानवाद के लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों का त्याग कर दिया। लेकिन इसके बावजूद भी नए लिखित संविधानों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता, लोकसत्ता और राष्ट्रीयता को महत्वपूर्ण स्थान मिला। लेकिन यह व्यवस्था आडम्बरपूर्ण थी। 1922 में मुसोलिनी ने इटली में तथा 1933 में हिटलर ने जर्मनी में संविधान के आदशों के विपरीत अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित करके संवैधानिक शासन की धज्जियां उड़ा दीं। ऐसे वातावरण में 1936 में स्पेन में जनरल फ्रांकों ने भी प्रचलित गणतन्त्रात्मक संविधान का उल्लंघन कर

दिया। इस स्थिति में बेल्जियम, नीदर ण्ड, डेनमार्ग और चकोस्लोवाकिया आदि राज्यों ने अपनी संसदीय व्यवस्था की बड़ी मुश्किल से रक्षा की।

- **द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संविधानवाद (Constitutionalism after Second World War) :-** द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद धुरी शक्तियों का नामोनिशान मिट गया और संविधानवाद का मार्ग अवरुद्ध करने की उनमें कोई शक्ति नहीं रही। लेकिन इसके बाद संविधानवाद का साम्यवादी प्रतिमान उभरने लगा। अनेक देशों में सोवियत संघ के मार्ग दर्शन में साम्यवादी सरकारों की स्थापना ने लम्बे समय तक संविधानवाद का साम्यवादी तरीके से विकास किया। उधर अमेरिका के झण्डे तले पाश्चात्य संविधानवाद का पाश्चात्य प्रतिमान ही लागू करने के प्रयास जारी रहे। नवोदित तृतीय विश्व के राष्ट्रों ने संविधानवाद का नया प्रतिमान विकसित किया। इस तरह संविधानवाद के नए नए प्रतिमान उभरे, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की पकड़ ढीली होने से स्वतन्त्र राष्ट्रों ने अपने अपने संविधान बनाने आरम्भ कर दिए। जापान ने 1946 में संविधान का नया प्रारूप स्वीकार किया जो प्रजातान्त्रिक तथा शांतिवादी सिद्धान्तों पर आधारित था। वह प्रारूप जापान में आज भी विद्यमान है। 1947 में भारत ने ब्रिटेन से औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त करके 1950 में अपना नया प्रजातन्त्रीय संविधान लागू किया। 1949 में चीनी क्रान्ति के बाद माओ के नेतृत्व में चीन में जनवादी गणतन्त्र की स्थापना हुई। चीन में 1954 में समाजवादी संविधान बनाया गया, लेकिन उसके बाद 1975, 1978 तथा 1982 में चौथी बार संविधान का निर्माण हुआ। अन्तिम संविधान चीनी जन कांग्रेस ने व्यापक विचार-विमर्श के बाद ही तैयार किया है और उसका सब आज भी वही है। इसके बाद बर्मा, इण्डोनेशिया, श्रीलंका आदि राष्ट्रों ने भी अपने नये संविधान बनाए। 1958 में फ्रांस में पाँचवें गणतन्त्रीय संविधान का निर्माण हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर सभी राष्ट्रों कमे लिए लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के आदर्श के रूप में कार्यरत हैं।

यद्धपि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ईराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि राष्ट्रों में सैनिक शासन व निरंकुशतावादी ताकर्ता के प्रादुर्भाव से संविधानवाद को गहना आघात भी पहुंचा है। अमेरिका ने अफगानिस्तान और ईराक की फासीवादी ताकतों को समाप्त करके वहीं अपना कठपुतली अस्थायी शासन तो स्थापित कर लिया है, लेकिन वहां संवैधानिक सरकार जैसी कोई वस्तु नहीं है। वहां पर अराजकता की स्थिति में संविधानवाद की कल्पना करना असम्भव है। इसी तरह पाकित्तान में सैनिक शा◌ासन के कारण

आज संविधानिक सरकार के अभाव में संविधानवाद नहीं है। लेकिन आज जनता की आवाज संविधानवाद के लिए नया मार्ग तलाश करने को तैयार है। पाकिस्तान, ईराक व अफगानिस्तान में भी वहां की जनता का रुझान प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के प्रति अधिक है। आज विश्व में संविधानवाद का रास्ता रोकने वाली ताकत अधिक मजबूत नहीं है। संविधानवाद का रास्ता रोकने वाली ताकतों का जो हर्ष ईराक व अफगानिस्तान में हुआ है, वहीं अन्य देशों में भी हो सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज संविधानवाद विकास के मार्ग पर अग्रसर है।

5.4.3. संविधानवाद की समस्याएं और समाधान (Problems and solutions of constitutionalism)

आज विश्व के प्रायः अधिकांश देशों की शासन व्यवस्थाएँ संविधानवाद के नियमों पर संचालित हो रही हैं। मानवीय मूल्यों, आदर्शों व आस्थाओं पर टिका संविधानवाद, आज अपने विकास के उन्नत अवस्था में पहुँच गया है। मानव अधिकारों के समर्थक इतने हैं कि इस व्यवस्था के नष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता; तथापि संविधानवाद का मार्ग कंटकमुक्त भी नहीं है। आज विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर इतने उतार-चढ़ाव हो रहे हैं कि, यदा-कदा ऐसा लगता है कि संविधान खतरे में है। आज विश्व के अनेक देशों खासकर तृतीय विश्व के देशों में सैनिक शासन की स्थापना हुई है, साथ ही, कुछ देशों में किसी व्यक्ति विशेष की तानाशाही देखने को मिल रही हैं। ये शक्तियाँ सांविधानिक सरकार के परिचालन के विरुद्ध कार्य करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना की धुन के रूप में संविधानवाद की संकल्पना में हमारी आस्था को ही डिगा देती है। आज संविधानवाद को अनेक समस्याओं से रू-ब-रू होना पड़ रहा है। ये समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

- युद्ध-युद्ध संविधानवाद की सबसे बड़ी समस्या है, युद्ध की स्थिति में सांविधानिक राज्य की संरचनात्मक स्थिति में परिवर्तन आ जाता है। युद्ध के काल में ही उत्पन्न संकट का मुकाबला करने के लिए, सरकार पूर्ण और निरपेक्ष शक्ति का दावा करती है और विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करने के नाम पर लोगों की आवश्यक स्वतंत्रताओं को कुचलने की सीमा तक चली जाती है। वस्तुतः युद्धकाल के दौरान साविधानिक सरकार का ढाँचा नष्ट हो जाता है। अतः जब तक यह स्थिति रहेगी, तब तक किसी भी राज्य में सांविधानिक शासन पूर्ण रूप से स्थापित न हो सकेगा।

- आन्तरिक आपात अथवा संकटकालीन व्यवस्थाएँ-सांविधानिक सरकार का निलम्बन तभी न्यायोचित ठहराया जा सकता है, जबतक वस्तुतः संकटकालीन अवस्थाएँ हों। ऐसी स्थिति में संविधानवाद के नष्ट होने या कमजोर होने का भय बना रहता है।आपातकाल का मुकाबला करने के लिए संविधान में विशेष व्यवस्थाएँ की जाती है, जिस के अनुसार, संविधान के मूल-स्वरूप को नष्ट किए बिना, सरकार असाधारण शक्तियों का प्रयोग कर सकती है। संविधान में ऐसे प्रावधान इसलिए किए जाते हैं, जिससे कि संविधानवाद की रूपरेखा समाप्त न हो और आपातकाल की समाप्ति के बाद संविधान पुनः सामान्य स्थिति में आ जाए। इस प्रकार के प्रावधान के बावजूद आपातकालीन शक्तियों के कारण संविधानवाद के तत्वों को नष्ट होने की पूरी आशंका रहती है।
- सामाजिक आर्थिक संकटों का मुकाबला कभी-कभी किसी देश में सरकार को सामाजिक-आर्थिक विपन्नता दूर करने के लिए असाधारण शक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है। इसके लिए कभी-कभी साविधानिक नियमों एवं सिद्धान्तों की उपेक्षा करनी पड़ती है। जैसे अमेरिका की 'न्यू डील योजना' के तहत कार्यपालिका द्वारा असाधारण शक्तियों का प्रयोग आर्थिक संकट को दूर करने के लिए किया गया था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 360 के अन्तर्गत, आर्थिक संकट का मुकाबला करने के लिए कार्यपालिका को विशेष अधिकार प्रदान किए गए हैं।
- आधुनिक संविधान की मुख्य समस्या ऐसी सांविधानिक संरचनाओं का पता लगाना है, जो जनसाधारण और विभिन्न वर्गों के हितों में सामंजस्य स्थापित करने का साधन बन सके और समाज के बदलते हुए मूल्यों, माँगों और आकांक्षाओं की पूर्ति में योग दे सके। हम विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में विभिन्न सांविधानिक संरचनाओं को इस दृष्टि से परखना चाहते हैं कि, वे एक नई समाजिक व्यवस्था की स्थापना में कितनी कुशल सिद्ध होंगी।
- इसकी एक मुख्य समस्या यह भी है कि सांविधानिक संरचनाओं को आधुनिक समाज के महान साध्यों की सिद्धि का साधन कैसे बनाया जाए ? अब हमें इस बात में विशेष दिलचस्पी नहीं रहती कि किसी देश के संविधान में क्या लिखा है ? हम राजनीति को एक विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में समझना चाहते हैं।

- एकदलीय पद्धति-लोकतंत्र की सफलता के लिए यदि दल पद्धति आवश्यक है, तो संविधानवाद की रक्षा के लिए दो राजनीतिक पार्टियों का होना अत्यावश्यक है। एकदलीय पद्धति स्वेच्छाचारिता का प्रतीक है। एकदलीय राजनीतिक प्रवृत्ति में सत्तारूढ़ दल मनमानी करने लगता है।
- सस्थागत समस्या-सावधानवाद को सम्भवतया सबसे बड़ा समस्या इसकी आधुनिक ससदीय प्रणाली की क्रियाशीलता और गतिशीलता को लेकर है। आर्थिक महत्व के विषय आधुनिक राज्य के लिए अधिक आवश्यक हो गये हैं, जो संसदीय प्रणाली को केन्द्रीय प्रभुता के ढाँचे में सफलतापूर्वक हल नहीं किये जा सकते।
- समाजवाद और अन्तरराष्ट्रवाद-संविधानवाद के लिए समाजवाद और अंतरराष्ट्रवाद भी कभी-कभी समस्या के रूप में उपस्थित होते हैं। यद्यपि विचारकों के मत में समाजवाद और अन्तरराष्ट्रवाद से संविधानवाद को खतरा नहीं है, तथापि कभी-कभी इसके कारण संविधानवाद का विकास अवरुद्ध होता पाया गया है।

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त संविधानवाद के सम्मुख और भी अनेक समस्याएँ एवं चुनौतियाँ हैं। विकासशील देशों का राजनीतिक उथल-पुथल तथा अन्य समस्याएँ संविधानवाद के लिए गम्भीर चुनौती प्रस्तुत करती है। इसके कारण कभी-कभी संविधानवाद का भविष्य अंधकारमय दीख पड़ता है।

प्रो. सी. एफ. स्ट्राँग ने संविधानवाद की समस्याओं का उपर्युक्त समस्याओं के हल के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं-

- सुदृढ़ शासन-समाज को अराजकता तथा अव्यवस्था से बचाने के लिए एक सुदृढ़ शक्ति से युक्त राज्य का होना आवश्यक है। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि कोई व्यक्ति विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का लाभ उठाकर अराजकता तो नहीं फैला रहा है।
- योग्य शासन-शासक को शासन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिक संविधानवाद में सुम्प्रभुता जनता में निहित होती है, अतः शासक को सदैव ही नियमानुसार जनता के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।
- योग्य शासन-शासक को शासन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि आधुनिक संविधानवाद में सम्प्रभुता जनता में निहित होती है, अतः शासक को सदैव ही नियमानुसार जनता के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

- बुद्धिमत्तापूर्ण शासन-संविधानवाद को जीवित रखने के लिए आवश्यक है कि समाज का बहुत बड़ा भाग शासन में रुचि ले। बुद्धिजीवियों को भी इस बात का आभास कराया जाये कि, वे भावी राजनीति के स्वयं निर्माता हैं तथा शासन के तीनों अंगों का प्रजातांत्रिक ढंग से संगठन किया जाना चाहिए और नागरिकों के मौलिक अधिकारों को किसी प्रकार की चोट नहीं पहुँचनी चाहिए।
- प्रशासन संबंधी सुधार अथवा संघवाद का प्रश्रय-संविधानवाद के विकास एवं सुरक्षा के लिए संघात्मक शासन व्यवस्था ज्यादा अनुकूल सिद्ध हो सकती है। संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकता तथा क्षेत्रीय स्वायत्तता का समन्वय होता है। इसलिए संविधानवाद को संघवाद को प्रश्रय देना चाहिए। एकात्मक शासन व्यवस्था में प्रशासन की समस्यायें भी संविधानवाद के लिए एक खतरा है। जहाँ एकात्मक शासन व्यवस्थाएँ हैं, वहाँ भी सत्ता को अधिक से अधिक विकेंद्रित किया जाए, जिससे राजनीतिक शक्तियाँ एक बिन्दु पर संग्रहीत न हो जाएँ। प्रो. स्ट्राँग का सुझाव है कि, एकात्मक राज्य भी संघवाद की योजना की तरह अपने छोटे राजनीतिक निकायों में, शक्तियों को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं कि केन्द्रीय सरकार के साथ वही शक्तियाँ रह जाएँ जो सम्पूर्ण देश के सामान्य हित के लिए आवश्यक हों।
- अंतरराष्ट्रीय संगठन का निर्माण-प्रो. स्ट्राँग के विचार में, "अंतरराष्ट्रीय संगठन राजनीतिक संविधानवाद की निरन्तर सुरक्षा की आवश्यक शर्त है।" यह संविधानवाद के हित में होगा यदि यह अन्तरराष्ट्रवाद के मुख्य सिद्धान्तों को अपने-आप में समाहित कर ले या उनके साथ सुनिश्चित ढंग से समायोजन करें। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय संगठन से ही अंतरराष्ट्रीय अराजकता से बचा जा सकता है।
- आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता-संविधानवाद को राष्ट्रीय स्तर पर आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मान्यता देनी चाहिए। यदि यह मान्यता न होगी तो विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और राज्य के बँटवारे की आशंका हो सकती है। बंगलादेश का निर्माण इस अभाव का प्रतिफल कहा जा सकता है। केवल राष्ट्रीय आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को भी मान्यता दे देने से समस्या का निदान नहीं हो जाएगा। कभी-कभी छोटे-छोटे राष्ट्रीय समूह पृथकतावादी आन्दोलन कर राष्ट्रीय एकता की नींव को कमजोर कर देते हैं। पंजाब में अकाली आन्दोलन, मिजोरम में मिजोफ्रंट द्वारा आन्दोलन पृथकतावादी आन्दोलन के उदाहरण हैं। इसके लिए राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता है।

- लोकतांत्रिक मॉडेल की स्थापना-स्वेच्छाचारी या सर्वाधिकारी सरकार संविधानवाद का शत्रु है। संविधानवाद के पोषण एवं विकास के लिए यह आवश्यक है कि राजनीतिक संगठन के अन्तर्गत लोकतंत्रात्मक मॉडेल अपनाया जाए। संविधानवाद में इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए। जितना अधिक लोकतांत्रिक तत्वों को प्रश्रय दिया जाएगा, सर्वाधिकारवाद का भय उतना ही कम होगा। यह आवश्यक है कि लोगों में विश्वास दिलाया जाए कि, राज्य का महत्वपूर्ण निर्णय लेने में वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहभागी हैं। इसके लिए विधायिका में प्रतिनिधित्व का विस्तार, लोक निर्णय, प्रारंभण आदि पद्धतियों जो बड़े पैमाने पर लागू करने का प्रयास किया जाना उचित होगा।

5.4.4.संविधानवाद का महत्व (Importance of constitutionalism)

संविधानवाद का महत्व अनेक है और इसमें निम्नलिखित पहलू शामिल हैं:

- अधिकारों और स्वतंत्रताओं की सुरक्षा: संविधानवाद व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों के लिए एक सुरक्षात्मक ढांचा प्रदान करता है। इसमें भाषण, धर्म और सभा की स्वतंत्रता का अधिकार शामिल है । सरकार के लिए स्पष्ट सीमाएँ निर्धारित करके, यह सुनिश्चित करता है कि इन अधिकारों का उल्लंघन न हो।
- व्यवस्था और स्थिरता बनाए रखना: स्पष्ट नियमों और प्रक्रियाओं के माध्यम से, संविधानवाद शासन के लिए एक सर्वमान्य रोडमैप प्रदान करके राजनीतिक स्थिरता में योगदान देता है। इससे संघर्ष और सत्ता संघर्ष को रोकने में मदद मिलती है जो राज्य को अस्थिर कर सकते हैं।
- लोकतंत्र को बढ़ावा देना: संविधानवाद और लोकतंत्र अक्सर साथ-साथ चलते हैं। यह सुनिश्चित करके कि सरकारी शक्ति निरंकुश नहीं है, संविधानवाद एक ऐसा माहौल बनाता है जहाँ लोकतांत्रिक प्रथाएँ पनप सकती हैं।
- जवाबदेही को बढ़ावा देना: संविधानवाद जवाबदेही की संस्कृति को बढ़ावा देता है। सार्वजनिक अधिकारी संविधान से बंधे होते हैं और लोगों के प्रति जवाबदेह होते हैं, जिससे भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग की संभावना कम हो जाती है।

5.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

(अ).संविधानवाद की उत्पत्ति सबसे पहले कहाँ हुई थी?

(आ).'The Prince' पुस्तक के लेखक कौन है ?

(इ). पुस्तक पॉलिटिकल साइंस: ऐन इन्ट्रोडक्शनके लेखक कौन है ?

(ई).संविधानवाद की तीन अवधारणाएं कौनसी है?

(उ).‘‘संविधानवाद का अर्थ है निरंकुश शासन के विपरीत नियमानुकूल शासन।’ यह परिभाषा किस विद्वान ने दी है।

5.6.सारांश (Summary)

विश्व के किसी भी देश में चाहे शासन का जो भी स्वरुप उस देश का एक संविधान अवश्य होता है। शासन के लोकतंत्रात्मक स्वरुप शासन संविधान के अनुरुप व उसके नियंत्रण में चलता है। किन्तु शासन के अन्य रुपों में चाहे वह सैनिक शासन हो या तानाशाही शासन, इन व्यवस्थाओं में शासन, संविधान को दर किनार करते हुए एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समुह के निर्देशन में चलता है। संविधान लिखित रूप में भी हो सकता है और अलिखित रुप में भी। आवश्यक यह है कि कुछ एसे नियम-कानून हों जिनके अनुरुप राज्य की शासन-प्रणाली चल सके। जिस पर विद्वानों ने इसकी अलग-अलग परिभाषा दी है। संविधान के विभिन्न स्वरुपों के आधार पर इसका वर्गीकरण किया गया है। संवैधानिक सरकार से आशय एसी सरकार से है जो संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरुप गठित, नियंत्रित व संचालित होती है। परन्तु एसा भी नहीं है कि जिस राज्य में संविधान हो वहां संवैधानिक सरकार भी हो। लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में संवैधानिक सरकार तो हो सकती है। किन्तु शासन के अन्य रुपों में इसकी कोई गारंटी नहीं कि वहां संविधान के साथ-साथ संवैधानिक सरकार हो, क्यों कि संवैधानिक सरकारें विधि के अनुरुप व लोक कल्याण पर आधारित होती हैं।

संविधानवाद एक आधुनिक विचारधारा है, जो नियंत्रित राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना पर जोर देती है। कहा जा सकता है कि संविधानवाद सीमित शासन का प्रतीक है। एक आधुनिक विचारधारा होने के कारण संविधानवाद की तीन प्रचलित अवधारणाएं हैं। पहला- पाश्चात्य् अवधारणा, दुसरी- साम्यवादी अवधारणा व

तीसरी - विकासशील लोकतांत्रिक अवधारणा। संविधानवाद के तत्व व विशेषताएं संविधानवाद की प्रकृति व महत्व को स्पष्ट करती है।

5.7.सूचक शब्द (Key Words)

- **संविधानवाद-**संविधानवाद उन मान्यताओं, आस्थाओं तथा मानव मूल्यों का नाम है, जिनका संविधान में वर्णन तथा समर्थन होता है और जिनकी उपलब्धि तथा सुरक्षा हेतु राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियंत्रणों एवं प्रतिबंधों की व्यवस्था होती है।
- **संविधान-** वह विधान, कानून या सिद्धांत जिसके अनुसार किसी राज्य, राष्ट्र या संस्था का संघटन, संचालन तथा व्यवस्था होती है।
- **कानून का शासन**- इसका अर्थ है कि कानून सर्वोपरि है तथा वह सभी लोगों पर समान रूप से लागू होती है।

5.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

- **संविधानवाद का अर्थ ,परिभाषा व संविधान से संविधानवाद का वर्णन कीजिए।**
- **संविधानवाद के उदय व विकास का वर्णन कीजिए।**
- **संविधानवाद की विभ्भिन अवधारणाओं वर्णन कीजिए।**
- **संविधानवाद के विभ्भिन तत्वों व आधारों का वर्णन कीजिए।**
- **संविधानवाद की समस्याओं व महत्व का वर्णन कीजिए।**

5.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

(अ).यूनान के एथेंस नगर में

(आ).मैकियावेली ने

(इ). पिनाक और स्मिथ

(ई).संविधानवाद की पाश्चात्य अवधारणा,संविधानवाद की साम्यवादी अवधारणा

संविधानवाद की विकासशील देशों की अवधारणा

(उ). के०सी० व्हीयर ने।

5.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।
- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ . बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज , अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी . गेना , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी . जौहरी , स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।
- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

Subject : Comparative Politics (Political Science)	
Course Code : POLS 301	Author **: Dr. Parveen sharma**
Lesson No. : 6	Vetter **:**
संवैधानिक संरचना: -कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका **Constitutional Structure: -Executive, Legislation and Judiciary.**	

अध्याय की सरंचना

6.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

6.2.परिचय (Introduction)

6.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

6.3.1.व्यवस्थापिका का अर्थ और परिभाषा(Meaning and Definition of Legislature)

6.3.2.व्यवस्थापिका के प्रकार(Types of legislature)

6.3.3.व्यवस्थापिका के कार्य (functions of the legislature)

6.3.4.कार्यपालिका (Executive)

6.3.4.1.कार्यपालिका का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definition of Executive)

6.3.5.कार्यपालिका के निर्माण अथवा चुनाव के तरीके (Methods of selection and formation of executive)

6.3.7.कार्यपालिका के कार्य (Functions of the Executive)

6.4 पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

6.4.1 न्यायपालिका (Judiciary)

6.4.1.1.न्यायपालिका का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of Judiciary)

6.4.2.न्यायपालिका का महत्व (Importance of Judiciary)

6.4.3.न्यायपालिका के कार्य (Functions of Judiciary)

6.4.4.न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of the Judiciary)

6.4.5.विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में अन्तर्सम्बन्ध

(Interrelationship between legislature, executive and judiciary)

6.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

6.6.सारांश (Summary)

6.7.सूचक शब्द (Key Words)

6.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

6.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

6.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

6.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी –

- **व्यवस्थापिका व इसके कार्यों की को जान पाएंगे।**
- **कार्यपालिका का अर्थ और परिभाषा दीजिये व इसके कार्यों की विस्तार जान पाएंगे।**
- **न्यायपालिका व इसके कार्यों को जान पाएंगे।**
- **न्यायपालिका के महत्व को जान पाएंगे।.**
- **न्यायिक पुनर्विलोकन को जान पाएंगे।**

6.2.परिचय (Introduction)

सरकार के कार्यों के कुशल संचालन के लिए उसे तीन अंगों में बांटा गया है। इनमें से विधायिका तो कानून निर्माण करती है, कार्यपालिका उन्हें लागू करती है तथा न्यायपालिका संविधान व सरकार की मर्यादा को बनाए रखती है। आज कार्यपालिका और विधायिका के कार्यों में तालमेल हो चुका है। विधायिका वित्तीय और प्रशासनिक कार्य भी करने लगी है और कार्यपालिका, विधायिका कानून निर्माण में भी योगदान देती है। आज जनता की भावनाओं को व्यक्त करने और उनकी इच्छानुसार शासन चलाने के लिए यह आवश्यक है कि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि संसद (विधायिका) के रूप में विधि-निर्माण और नीति-निर्माण के साथ-साथ कार्यपालिका पर भी अंकुश रखने का प्रयास करें। जो शासन व्यवस्था जन-प्रतिनिधित्व पर आधारित नहीं है तो वह लोकतन्त्र विरोधी है।

6.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

6.3.1.व्यवस्थापिका का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definition of Legislature)

साधारण शब्दों में विधायिका या व्यवस्थापिका सरकार का वह अंग है जो कानून निर्माण का कार्य करता है। इसे आमतौर पर संसद के नाम से जाना जाता है। संसद शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द **'Parler'** जिसका शाब्दिक अर्थ है - बातचीत करना या बोलना तथा लेटिन शब्द **'Parliamentum'** से हुई है। संसद को अंग्रेजी में **'Parliament'** कहा जाता है। लेटिन शब्द **'Parliamentum'** का प्रयोग भी बातचीत के लिए ही होता रहा है। इस प्रकार संसद शब्द का प्रयोग व्यक्तियों की उस संस्था के लिए प्रयोग किया जाता है जो चर्चा या विचार-विमर्श के लिए एकत्रित हुए हैं। आज सरकार के कार्यों के सन्दर्भ में संसद को व्यवस्थापिका या विधायिका का नाम दिया जाता है, जिसका सम्बन्ध कानून निर्माण से है। कुछ विद्वानों ने व्यवस्थापिका को परिभाषित करते हुए कहा है:-

गिलक्राइस्ट के अनुसार - ''विधानमण्डल सरकार की शक्ति का अधिक भाग है, जिसका सरकार के वित्त तथा कानून निर्माण दोनों पर अधिकार होता है। ''

एलन बाल के अनुसार - ''विधायिका, कार्यपालिका का परामर्शदात्री निकाय है।''

आधुनिक समय में व्यवस्थापिका की सही परिभाषा फाईनर ने ही दी है। उसका कहना है कि ''विधायिका सरकार का वह अंग है जिसका कार्य जनमत या जनता की इच्छा को कानून निर्माण में लगाना और कार्यपालि

के कार्यों का निर्देशन, निरीक्षण एवं नियन्त्रण करना है।' अतः सार रूप में कहा जा सकता है कि व्यवस्थापिका सरकार का कानून निर्मात्री अंग है जो अध्यक्षात्मक सरकार मंे तो कार्यपालिका से स्वतन्त्र होता है, लेकिन संसदीय सरकार में कार्यपालिका पर नियन्त्रण भी रखता है। इस दृष्टि से उसके कार्य कानून निर्माण व कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखना दोनों है।

6.3.2.व्यवस्थापिका के प्रकार (Types of legislature)

(क).एकसदनात्मक व्यवस्थापिका (Unicameral legislature)

जिस व्यवस्थापिका में एक सदन हो उसे एकसदनात्मक व्यवस्थापिका कहा जाता है। अनेक विद्वानों का मत है कि एकसदनात्मक व्यवस्थापिका ही लोकतंत्र के लिए उपयुक्त है। फ्रांस के विद्वान विधिवेत्ता ऐबे सिएज के कथनानुसार द्वितीय सदन एक अनावश्यक सदन है। उसने द्वितीय सदन की अनुपयोगिता की चर्चा करते हुए कहा है, "द्वितीय सदन यदि प्रथम सदन से सहमति व्यक्त करता है तो यह अनावश्यक है और यदि असहमति व्यक्त करता है तो शैतानी करता है" सिएज ने यह भी कहा है कि कानून लोगों की इच्छा का फल है। लोग एक ही समय में एक ही विषय पर दो भिन्न इच्छाएँ नहीं कर सकते।फ्रांस और इंगलैंड में क्रमशः 1891 तथा 1651 ई0 में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका अपनाने का प्रयोग किया गया था, परंतु कई कारणों से वह प्रयोग सफल नहीं हो सका।

एकसदनात्मक व्यवस्थापिका की उपयोगिता के संबंध में यह कहा जाता है कि यह लोकतंत्र के अनुकूल है तथा इसके अंतर्गत दो सदनों के बीच पारस्परिक संघर्ष या तनाव का वातावरण नहीं रहता। आज अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि कई दृष्टियों से द्विसदनात्मक व्यवस्था ज्यादा उपयुक्त और उपयोगी है। आज यद्यपि चीन, यूनान, इस्टोनिया, युगोस्लाविया तथा कुछ अन्य देशों में एकसदनात्मक व्यवस्थापिका बनी हुई है, तथापि अधिकांश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका को ही स्थान दिया गया है।

(ख).द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका(Bicameral Legislature)

I. दो सदनों वाली व्यवस्थापिका को द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका कहा जाता है। आज विश्व के अधिंकाश देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान किया गया है। कई विद्वान यह मानते हैं कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका इंगलैंड की देन है। विलोबी ने कहा है, "यदि ब्रिटिश संसद द्विसदनात्मक न होती तो शायद

विश्व के अन्य विधानमंडल भी द्विसदनात्मक नहीं होते।" पोलॉस्की नामक विद्वान ने कहा है, "यह केवल ऐतिहासिक संयोग की बात है कि इंगलैंड की व्यवस्थापिका द्विसदनात्मक थी और अन्य देशों ने उसी का अनुसरण किया।"

जिन देशों में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था है, वहाँ एक सदन को प्रथम सदन तथा दूसरे को द्वितीय सदन कहा जाता है। प्राचीन काल में द्वितीय सदन को उच्च सदन कहा जाता था। प्रथम सदन लोकप्रिय सदन होता है तथा द्वितीय सदन विशेष हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन है। इंगलैंड की लाईस सभा वहाँ के उच्च घराने के लॉडों एवं पियरों का प्रतिनिधित्व करती है। संघात्मक शासन-व्यवस्था के अंतर्गत द्वितीय सदन राज्यों या संघ की ईकाईयों का प्रतिनिधित्व करता है। उच्च सदन या द्वितीय सदन की रचना में भी भिन्नता पाई जाती है। इंगलैंड में लॉईस सभा के संगठन का आधार वंशपरंपरानुगत सिद्धांत है, अमेरिका, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, पौलैंड द्वितीय सदन प्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होता है। भारत में द्वितीय सदन अप्रत्यक्ष ढंग से निर्वाचित होता है तथा इसके कुछ सदस्यु मनोनीत भी होते है।

i. द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के गुण (Merits of Bicameral Legislature)

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के गुण इस प्रकार है-

- द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत द्वितीय सदन प्रथम सदन की निरंकुशता पर रोक के रूप में काम करता है। यदि एक ही सदन हो तो वह मनमाने ढंग से जन विरोधी कानून भी पारित कर दे सकता है। लिकॉक के कथनानुसार, "एकसदनात्मक व्यवस्थापिका निरंकुश तथा अनुत्तरदायी होती है तथा भावनाओं के प्रवाह में बह जाती है।" जे० एस० मिल ने भी कहा है, "द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का प्रावधान होना चाहिए जिससे कोई भी सदन असीमित शक्तियों के दूषित प्रभाव का शिकार न हो।"
- आमतौर से प्रथम सदन जल्दबाजी में विधिनिर्माण के क्रम में अनेक प्रकार की भूलें या गलतियाँ कर देता है, जिनका सुधार द्वितीय सदन के द्वारा किया जाता है। लेकी ने कहा है, "द्वितीय सदन कानून पर सुधारात्मक, रोकात्मक तथा क्रमबद्धात्मक प्रभाव डालता है।"

- लोकप्रिय सदन में, प्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्य होने के कारण, अधिकांश सदस्यों को कानूनी भाषा का पूर्ण ज्ञान नहीं रहता जिसके कारण प्रथम सदन द्वारा पारित विधेयकों में भाषा की अनेक अशुद्धियाँ रह जाती हैं, जिसे द्वितीय सदन में दूर करने का प्रयास किया जाता है।
- एकसदनात्मक व्यवस्थापिका में विशेष हितों का प्रतिनिधित्व संभव नहीं है, क्योंकि इसके अंतर्गत सदन का संगठन प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत द्वितीय सदन में विशेष हितों का प्रतिनिधित्व आसानी से हो सकता है।
- कुछ ऐसे लोग होते हैं, जिनकी सेवा या योगदान की व्यवस्थापिका को आवश्यकता होती है, परंतु वे लोग चुनाव लड़कर लोकप्रिय सदन में नहीं आ सकते। भारत में जिस ढंग से तथा जिस आधार पर चुनाव संपन्न होता है, अधिकांश अच्छे लोग बलवती इच्छा एवं योग्यता रहने के बावजूद चुनाव नहीं लड़ सकते हैं। उस स्थिति में द्वितीय सदनों के माध्यम से ही विशेषज्ञ एवं प्रबुद्ध लोग व्यवस्थापिका में स्थान पाते हैं।
- एकसदनात्मक व्यवस्थापिका में एक सदन रहने के कारण विधि निर्माण तथा विधियों के संशोधन के संबंध में संपूर्ण भार एक ही सदन पर पड़ जाता है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत विधिनिर्माण-संबंधी कार्य दोनों सदनों में बँट जाने के कारण एक सदन पर कार्यभार अधिक नहीं रहता।
- दो सदन रहने के कारण किसी भी विधेयक या विषय पर वाद-विवाद या विचार-विमर्श का व्यापक अवसर मिलता है। एकसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत किसी विषय या विधेयक पर वाद-विवाद या विचार-विमर्श का अवसर केवल एक ही सदन में रहता है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत वाद-विवाद या विचार-विमर्श दोनों सदनों में होने के कारण किसी भी विधेयक पर वाद-विवाद का व्यापक अवसर प्रदान किया जाता है।
- संघात्मक शासन में द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की विशेष उपयोगिता होती है। संघीय शासन के अंतर्गत द्वितीय सदन इकाईयों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रथम सदन संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।
- द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका लोकतंत्र के सिद्धांतो के उपयुक्त है, क्योंकि इसके अंतर्गत शक्तियों या अधिकारों का एक जगह जमाव नहीं हो सकता है। एकसदनात्मक व्यवस्थापिका के अतंर्गत अधिकारों एवं शक्तियों का एक स्थल पर केंद्रित या जमाव होने के कारण लोकतंत्र के सिद्धांतों पर आघात पहुँचने की पूरी संभावना रहती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था एकसदनात्मक व्यवस्थापिका की व्यवस्था से श्रेष्ठ है। ब्लंश्ती ने कहा है, "इसमें संदेह नहीं कि एक आँख से दो आँखें अच्छी होती हैं।" गेटेल के कथनानुसार, "दो भवनों के रहने से विचार-विमर्श में सतर्कता एवं सुन्दर संतुलन तथा अधिक सावधानी से विश्लेषित एवं संगृहीत व्यवस्थापन की प्राप्ति होती है।" विश्व के अधिकांश देशों में द्वितीय सदन का अस्तित्व इसकी उपयोगिता का प्रतीक है।

II. द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के दोष (Demerits of bicameral legislature)-

द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के दोष इस प्रकार है-

प्रथम सदन लोकप्रिय सदन कहलाता है। इसका संगठन जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है। द्वितीय सदन का संगठन या तो प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर होता है या मनोनयन के आधार पर। द्वितीय सदन द्वारा प्रथम सदन पर किसी भी प्रकार अंकुश लोकप्रिय संप्रभुता के सिद्धांत पर अंकुश कहा जा सकता है।

- अनेक आलोचकों का यह मत है कि द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत द्वितीय सदन के रहने से अनावश्यक व्यय होता है। कई विद्वानों का मत है कि द्वितीय सदन की कोई विशेष उपयोगिता नहीं होती है, इसलिए उस पर होने वाला व्यय अनावश्यक व्यय है।
- द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका पद्धति के अंतर्गत द्वितीय सदन को अमीरों तथा कुछ विशेष वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाला सदन कहा जाता है। इंगलैंड की लॉडर्स सभा को 'धनवानों का गढ़' कहा जाता है।
- द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका पद्धति के अंतर्गत दोनों सदनों के बीच मतभेद या तनाव की स्थिति बनी रहती है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के संविधान के अंतर्गत दोनों सदनों के बीच गत्यावरोध की स्थिति को दूर करने के लिए आवश्यक प्रावधान किए गए हैं।
- द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली के अंतर्गत किसी भी विधेयक को पारित होने में काफी समय लगता है, क्योंकि विधेयक की दो-दो सदनों से एक ही प्रकार की प्रक्रिया अपनाकर पारित किया जाता है। इस प्रकार द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली में समय और अर्थ का दुरूपयोग होता है।

- आमतौर से द्वितीय सदन की बनावट का आधार अप्रत्यक्ष निर्वाचन या मनोनयन रहता है। यह व्यवस्था लोकतंत्र के सिद्धांत के प्रतिकूल है।
- कई विचारक यह मानते हैं कि कानून के निर्माण के लिए दो सदनों का होना अत्यावश्यक है। द्वितीय सदन प्रथम सदन की गलतियों एवं त्रुटियों को दूर करता है। यह विचार आधुनिक युग में विशेष महत्व नहीं रखता। प्रो० लॉस्की ने कहा है कि आज किसी विधेयक को कानून का रूप देने के लिए प्रथम सदन में लंबे अरसे तक विचार-विमर्श होता है, इसलिए आज के संदर्भ में कानून-निर्माण में द्वितीय सदन की विशेष उपयोगिता नहीं रह गई है। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली के गुण-दोषों पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अनेक त्रुटियों के बावजूद आज अधिकांश देशों मे द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका को मान्यता दी गई है। इसका गुणात्मक पक्ष इसकी कमजोरी या निषेधात्मक पक्ष से कहीं अधिक सशक्त है।

6.3.3.व्यवस्थापिका के कार्य (functions of the legislature)-

व्यवस्थापिका का गठन मूलतः विधिनिर्माण के लिए होता है, परंतु विधिनिर्माण के अतिरिक्त व्यवस्थापिका के अनेक कार्य हैं तथा इसकी शक्तियाँ भी व्यापक हैं। आधुनिक युग में राज्य का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है, जहाँ व्यवस्थापिक का प्रभाव या संबंध नहीं हो। व्यवस्थापिका की शक्तियों एवं कृत्यों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जाता है-

- **विधिनिर्माण -** व्यवस्थापिका का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विधिनिर्माण है। जनता की इच्छा को कानून के रूप में अभिव्यक्ति देने के लिए व्यवस्थापिका के अंतर्गत जनता के प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। कुछ बातों को छोड़कर कानून बनाने की प्रक्रिया सर्वत्र एक प्रकार की रहती है। अध्यक्षात्मक एवं संसदीय प्रणलियों में विधिनिर्माण की प्रक्रिया में भिन्नता पाई जाती है।संसदीय शासन प्रणाली के अंतर्गत मंत्रिपरिषद के किसी सदस्य के द्वारा ही सार्वजनिक विधेयक प्रस्तावित किए जाते हैं। विरोधी दल या निर्दलीय सदस्य द्वारा प्रस्तावित विधेयकों को गैरसरकारी विधेयक कहा जाता है। आम तौर से सरकारी सदस्यों द्वारा प्रस्तावित विधेयक ही कानून का रूप धारण करते हैं।साधारण विधेयक द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के अंतर्गत किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित होने के बाद विधेयक को राज्याध्यक्ष के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। आमतौर से राज्याध्यक्ष उस पर अपनी स्वीकृति

प्रदान कर देता है, परंतु कुछ स्थितियों में वह उसे पुनर्विचार के लिए व्यवस्थापिका के पास लौटा देता है। प्रत्येक सदन में विधि निर्माण के संबंध में तीन पठन होते हैं।द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका प्रणाली के अंतर्गत किसी भी विधेयक के संबंध में दोनों सदनों के बीच गत्यवरोध की स्थिति को दूर करने के लिए अलग-अलग प्रावधान किए गए हैं। भारत में लोकसभा और राज्यसभा के बीच गत्यवरोध को दूर करने के लिए संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था की गई है। इंगलैंड में लाईस सभा किसी विधेयक को एक वर्ष तक अपने पास रोक सकती है। एक वर्ष के बाद वह उसी रूप में पारित हो जाता है, जिस रूप में कॉमन्स सभा ने उसे पारित किया है। अमेरिका में साधारण विधेयकों के संबंध में प्रतिनिधि सभा और सिनेट के समान अधिकार हैं। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद ही कोई विधेयक कानून का रूप धारण कर सकता है।इस संबंध में विशेष रूप से एक बात उल्लेखनीय है। संसदीय शासन प्रणाली के अंतर्गत विधिनिर्माण में प्रमुख जिम्मेदारी कार्यपालिका की रहती है। सभी सार्वजनिक विधेयक मंत्रिपरिषद के सदस्य द्वारा प्रस्तावित किए जाते हैं। इसके विपरीत अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अंतर्गत विधिनिर्माण में राष्ट्रपति या उसके मंत्रिमंडल के सदस्यों का हाथ नहीं रहता है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अंतर्गत मंत्रिमंडल के सदस्य व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सदस्य नहीं होते।

- **कार्यपालिका पर नियंत्रण-** व्यवस्थापिका का दूसरा प्रमुख कार्य कार्यपालिका पर नियंत्रण है। संसदीय शासन प्रणाली के अंतर्गत व्यवस्थापिका निम्नलिखित ढंग से कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है-

(क).मंत्रिपरिषद के सदस्य सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(ख).व्यवस्थापिका सरकार की आलोचना कर सकती है, सरकारी नीति पर वाद-विवाद कर सकती है तथा सरकार के विरूद्ध निंदा का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(ग).व्यवस्थापिका के सदस्य मंत्रियों से उनके विभागों के बारे में आवश्यक प्रश्न पूछ सकते हैं।

(घ).व्यवस्थापिका के अंतर्गत राज्याध्यक्ष के अभिभाषण पर वाद-विवाद कर भी वह कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(ङ).बजट में कटौती का प्रस्ताव पारित कर भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(च).स्थगन प्रस्ताव के जरिए भी व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर नियंत्रण रखती है।

(छ).सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण ढंग कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने का है, अविश्वास का प्रस्ताव। व्यवस्थापिका के प्रथम सदन को मंत्रिपरिषद के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित करने का अधिकार है। प्रथम सदन द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पारित किए जाने पर मंत्रिपरिषद अपदस्थ हो जाती है।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में व्यवस्थापिका कार्यपालिका पर प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण नहीं रखती है. फिर भी अध्यक्षातम्क शासन प्रणाली के अतर्गत नियंत्रण का स्वरूप कहीं अधिक प्रभावशाली है। अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तित्यों एवं संधि के प्रस्तावों पर सिनेट का अनुसमर्थन आवश्यक है। इस प्रकार, अमेरिका की सिनेट राष्ट्रपति के प्रतिद्वंद्वी के रूप में काम करती है। अन्य शासन-प्रणालियों के अंतर्गत भी कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का प्रत्यक्ष या परोक्ष नियंत्रण रहता है।

- **वित्तीय कार्य-**कार्यपालिका वित्तीय लेन-देन एवं संचालनों के लिए उत्तरदायी है, परंतु अंतिम रूप से व्यवस्थापिका कार्यपालिका के वित्तीय संचालनों पर नियंत्रण रखती है। हर देश में प्रतिवर्ष कार्यपालिका बजट के रूप में अपने आय-व्यय का विवरण व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुत करती है। व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत होने के बाद ही कार्यपालिका टैक्स लगा सकती है तथा विभिन्न मदों पर व्यय कर सकती है। व्यवस्थापिका को बजट में कटौती करने का अधिकार प्राप्त है। अनुदान की माँगे, विनियोग विधेयक आदि पर व्यवस्थापिका की स्वीकृती आवश्यक है। संसदीय शासन-प्रणाली तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली दोनों के अंतर्गत व्यवस्थापिका का वित्तीय स्थिति पर नियंत्रण रहता है। इंगलैंड की सरकारी वित्तीय स्थिति के संबंध में यह कहा जाता है कि सरकार धन की माँग करती है, कॉमन्स सभा स्वीकार करती है तथा लार्ड्स सभा उसका अनुसमर्थन करती है। यही स्थिति प्रायः सभी देशों में है।
- **विमर्शात्मक कार्य-**व्यवस्थापिका एक विमर्शात्मक निकाय के रूप में भी काम करती है। व्यवस्थापिका के अंतर्गत प्रस्तुत किए गए सभी सरकारी प्रस्तावों पर विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद किया जाता है। व्यवस्थापिका सरकारी नीतियों पर भी वाद-विवाद करती है।
- **न्यायिक कार्य**-कई स्थितियों में व्यवस्थापिका को न्यायिक कार्य भी करने पड़ते हैं। अमेरिका में प्रतिनिधि सभा द्वारा राष्ट्रपति के विरूद्ध लगाए गए महाभियोग के प्रस्ताव के संबंध में द्वितीय सदन सिनेट न्यायालय की तरह सुनवाई करती है। ब्रिटेन में लाईस सभा देश के सर्वोच्च न्यायालय के रूप में भी काम करती है,

परंतु इस स्थिति में केवल कानूनी लॉर्ड ही भाग लेते हैं। स्विट्जरलैंड में राष्ट्रीय सभा संविधान की व्याख्या का कार्य करती है. इसलिए इसे न्यायिक कार्य की संज्ञा दी गई है।

- **विविध कार्य**-उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त व्यवस्थापिका को और भी कई प्रकार के कार्यों का संपादन करना पड़ता है। संविधान में संशोधन, जनता की शिकायतों की सुनवाई तथा निवारण, राज्याध्यक्षों का चुनाव आदि भी व्यवस्थापिका के मुख्य कार्य है। स्विट्जरलैंड की राष्ट्रीय सभा मंत्रिपरिषद के सदस्यों, न्यायाधीशों तथा प्रधान सेनापति की नियुक्ति करती है। व्यवस्थापिका को नियुक्ति के साथ-साथ पदच्युति का भी अधिकार है। भारत में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने का प्रस्ताव व्यवस्थापिका द्वारा ही पारित होता है। अमेरिका में कांग्रेस ही राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग पारित कर सकती है। ब्रिटेन में कॉमेन्स सभा मंत्रिपरिषद को अविश्वास के प्रस्ताव पर अपदस्थ कर सकती है।

6.3.4.कार्यपालिका (Executive)

कार्यपालिका सरकार की इच्छा या विधायिका के कानूनों को अमली जामा पहनाने वाला अंग है। इसे आमतौर पर सरकार का दूसरा तथा विधायिका का पूरक और समकक्षी अंग कहा जाता है। कार्यपालिका का जन्म शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिफलहै। जैसे जैसे सरकार के कार्यों में वृद्धि होती गई, वैसे वैसे सरकार द्वारा एक ही संस्था के द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्यों का विभाजन सरकार व प्रशासन चलाने के लिए आवश्यक होता गया। इससे सरकार के तीन अंगों का जन्म हुआ। व्यवस्थापिका को तो कानूननिर्माण का उत्तरदायित्व दिया गया, जबकि कार्यपालिका को उन कानूनों का क्रियान्वयन करने वाला अंग माना गया। इसलिए आजभी कार्यपालिका के लिए सरकार के नियम-क्रियान्वयन विभाग का प्रयोग किया जाता है। सरकार का यह अंग संगठन की दृष्टिसे सभी देशों में समानता ही रखता है। संसदीय देशों में इसका विधायिका से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है, जबकि अध्यक्षात्मक शासन वाले देशों में यह सम्बन्ध स्वतन्त्र व अप्रत्यक्ष हो जाता है। आज कार्यपालिका के अन्तर्गत प्रशासन को भी शामिल किया जाता है,क्योंकि राजनीतिक कार्यपालिका और प्रशासन के कार्य आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं और राजनीतिक इच्छा का वास्तविक संचालन अनेक देशों में प्रशासकीय अंगों द्वारा ही किया जाता है। इसलिए अनेक विद्वानों द्वारा कार्यपालिका को अलग पहचान देनेके लिए राजनीतिक कार्यपालिका, शब्द का ही प्रयोग किया जाने लगा है। आज सभी

देशों में सरकार का यह अंग सबसे महत्वपूर्णअंग बन चुका है। इसके बिना सरकार पंगु है। इसके निर्माण या चुनाव के तरीके भी सभी देशों में अलग अलग हैं। इंग्लैण्ड में यह वंशानुगत आधार पर चुना जाता है तो जर्मनी, दक्षिण अमेरिका, चिल्ली, घाना आदि में इसको प्रत्यक्ष रूप से चुनाव प्रणाली के आधारपर अनता द्वारा निर्वाचित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह निर्णायक मंडल द्वारा निर्वाचित किया जाता है तो भारतव स्विटजरलैंड में इसे व्यवस्थापक मण्डल द्वारा चुना जाता है। सभी देशों में इसका कार्यकाल भी निर्वाचन के तरीके की तरह अलग-अलग है। भारत में इसका कार्यकाल पांच वर्ष, स्विटजरलैंड में एक वर्ष, अमेरिका में चार वर्ष, फ्रांस में सात वर्ष तथा अर्जेन्टाइना में छः वर्ष है।

6.3.4.1.कार्यपालिका का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definition of Executive)

साधारण अर्थ में कानूनों का क्रियान्वयन करने वाली संस्था कार्यपालिका कहलाती है। आज इसका अर्थ सीमित और व्यापक दोनों अर्थों में किया जाता है। सीमित अर्थ में तो राज्य के प्रधान तथा उसके मन्त्रिमण्डल को ही कार्यपालिका कहा जाता है। व्याप्क अर्थ में कार्यपालिका के अन्तर्गत नीति को अमली जामा पहनाने वाले प्रशासकीय अंग भी शामिल हो जाते हैं। कार्यपालिका को कुछ विद्वानों ने सीमित और व्यापक दोनों अर्थों में निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:-

- **मेक्रिडीस के अनुसार-**'' राजनीतिक कार्यपालिका, राजनीतिक समाज के शासन के लिए औपचारिक उत्तरदायित्व निभाने वाली संस्थागत व्यवस्थाएं हैं।''
- **गिलक्राइस्ट के अनुसार-** '' कार्यपालिका सरकार का वह अंग है जो कानून के रूप में अभिव्यक्त जनता की इच्छा को कार्य में परिणत करती है। यह वह धुरी भी है जिनके चारों ओर राज्य का वास्तविक प्रशासन घूमता है।''
- **ला पालोम्बारा के अनुसार-** '' कार्यपालिका से आशय मुख्य कार्यपालक, विभागों के अध्यक्ष तथा सरकारी सोपान में उच्चतम स्तर के सार्वजनिक प्रशासकों से है। इसमें वे व्यक्ति, सिविल कर्मचारी तथा अन्य लोग जो मुख्य कार्यपालक की मदद के लिए भर्ती किए जाते हैं, शामिल होते हैं।''
- **गार्नर के अनुसार-** '' व्यापक तथा सामूहिक अर्थ में कार्यपालिका के अन्तर्गत व सभी अधिकारी, राज्य कर्मचारी तथा एजेन्सियां आ जाती हैं जिनका कार्य राज्य की इच्छा को, जिसे विधानमण्डल ने प्रकट कानून का रूप दे दिया है, कार्यरूप में परिणत करना है।''

इस प्रकार कार्यपालिका का अर्थ सीमित और व्यापक दोनों अर्थों में किया जाता है। आज कार्यपालिका तथा प्रशासन में अन्तरकरने के लिए सरकार तथा राजनीतिक कार्यपालिका जैसे शब्दों का प्रचलन बढ़ गया है। आधुनिक अर्थों में कार्यपालिका के लिएराजनीति विज्ञान में सरकार तथा राजनीतिक कार्यपालिका जैसे शब्दों का प्रचलन आम बात है। अब कार्यपालिका के अन्तर्गत उनव्यक्तियों को शामिल किया जाता है जो नीति निर्धारण, योजना-निर्माण, कानूनों का क्रियान्वयन तथा सैनिक व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों या विदेश नीति का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज प्रशासकीय अधिकारियों को कार्यपालिका से दूर रखा जाता है। यद्धपि व्यवहारमें कार्यपालिका को प्रशासन से दूर करना कठिन कार्य है, लेकिन सैद्धान्तिक तौर पर तो यह प्रयास किया ही जाता है। आम व्यक्तिकी दृष्टि में तो प्रशासन ही कार्यपालिका है और कार्यपालिका ही प्रशासन है।

6.3.5.कार्यपालिका के निर्माण अथवा चुनाव के तरीके (Methods of selection and formation of executive):-

- **वंशानुगत आधार पर निर्वाचन:-** यह व्यवस्था ब्रिटेन में प्रचलित है। इस व्यवस्था के तहत चुना हुआ कार्यपालक (सम्राट) आजीवन अपने पद पर बना रहता है।
- **जनता द्वारा निर्वाचन:-** इस विधि का प्रयोग प्रत्यक्ष निर्वाचन के लिए किया जाता है। आज यह प्रणाली चिली, घाना तथा दक्षिणी अमेरिका के कुछ राज्यों में है। इस प्रणाली द्वारा चुना हुआ कार्यपालक प्रजा का वास्तविक प्रतिनिधि होने के कारण देश का भी वास्तविक शासक होता है। उसकी शक्तियां नाममात्र की नहीं हो सकती। यह प्रणाली अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में तो ठीक रह सकती है, संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में नहीं।
- **निर्वाचित निर्वाचक:-**मण्डल द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन:- जनता प्रत्यक्ष रूप से कार्यपालिका का निर्माण नहीं करती बल्कि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही निर्वाचक मण्डल के रूप में उसका निर्वाचन करते हैं। अमेरिका तथा स्पेन में राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक-मण्डल द्वारा ही किया जाता है।
- **व्यवस्थापक-मण्डल द्वारा निर्वाचन:-** इस प्रणाली के तहत व्यवस्थापिका के द्वारा ही कार्यापालिका का निर्वाचन किया जाता है। भारत तथा स्विट्जरलैण्ड में यही पद्धति अपनाई जाती है।

6.3.6.कार्यपालिका के प्रकार (Types of executive)-

आधुनिक युग में कार्यपालिका के कई प्रकार हैं। अलग-अलग राज्य में कार्यपालिका के अलग- अलग प्रकार हैं। आधुनिक कार्यपालिका के मुख्यतः निम्नलिखित रूप हैं-

(क).राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका यों तो संकुचित दृष्टिकोण से कार्यपालिका के अंतर्गत असैनिक सेवा के सदस्य नहीं आते, फिर कार्यपालिका का वर्गीकरण राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका में किया जाता है। राजनीतिक कार्यपालिका वह कार्यपालिका है, जो निर्वाचित होती है तथा जो एक निश्चित अवधि के लिए अपने पद पर बनी रहती है। इसके विपरीत स्थायी कार्यपालिका वह कार्यपालिका है जो स्थायी है तथा जिसका निर्वाचन से कोई संबंध नहीं है। स्थायी कार्यपालिका राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ रहती है।

(ख).नाममात्र की एवं वास्तविक कार्यपालिका जब कार्यपालिका केवल नाममात्र का प्रधान होती है, तब उसे नाममात्र की कार्यपालिका कहा जाता है। इसे सांविधानिक कार्यपालिका भी कहा जाता है। संसदीय शासन-प्रणाली में नाममात्र की तथा वास्तविक दोनों प्रकर की कार्यपालिका होती है। ब्रिटेन का सम्राट् तथा भारत का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका के उदाहरण हैं। ये दोनों अपने- अपने राज्य के मात्र सांविधानिक प्रधान हैं। जब कार्यपालिका सांविधानिक दृष्टिकोण से प्रधान नहीं होते हुए भी यथार्थ में प्रधान होती है, तब उसे वास्तविक कार्यपालिका कहा जाता है। ब्रिटेन एवं भारत का मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका के उदाहरण हैं। अमेरिका का राष्ट्रपति तथा फ्रांस का राष्ट्रपति सांविधानिक एवं वास्तविक दोनों कार्य...

(ग).एकल और बहुल कार्यपालिका जब कार्यपालिका की शक्तियाँ एक निश्चित व्यक्ति के हाथ में निहित होती हैं, तब उसे एकल कार्यपालिका कहा जाता है। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस में एकल कार्यपालिका है।

जब कार्यपालिका की शक्तियाँ किसी एक व्यक्ति में निवास न कर कुछ व्यक्तियों के समूह में निवास करती है तब उसे बहुल कार्यपालिका कहा जाता है। स्विट्जरलैण्ड की संघीय परिषद तथा सोवियत रूस की प्रेजीडियम बहुल कार्यपालिका के उदाहरण है। स्विट्जरलैण्ड तथा सोवियत रूस में कार्यपालिका की शक्तियाँ सभी सदस्यों में समान से बँटी हुई हैं। इन संस्थाओं का प्रधान मात्र औपचारिक प्रधान होता है। उसे किसी भी प्रकार का विशेष अधिकार प्राप्त नहीं होता।

(घ).संसदीय एवं अध्यक्षात्मक कार्यपालिका संसदीय और अध्यक्षात्मक प्रणालियों में कार्यपालिका के स्वरूप भिन्न होते हैं। संसदीय शासन प्रणाली के अंतर्गत कार्यपालिका दो प्रकार की होती है-सांविधानिक और

वास्तविक। वास्तविक कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। भारत और ब्रिटेन में मंत्रिमंडल वास्तविक कार्यपालिका है और व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के प्रति उत्तरदायी होती है। वास्तविक कार्यपालिका में ही वास्तविक शक्तियाँ निहित रहती है।

अध्यक्षात्मक कार्यपालिका सांविधानिक और वास्तविक एक ही होती है। साथ-ही-साथ वह व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। अमेरिका का राष्ट्रपति अध्यक्षात्मक कार्यपालिका का उदाहरण है। वह यथार्थ रूप में वास्तविक शक्तियों का प्रयोग करता है। वह तथा उसके सचिव कांग्रेस के किसी सदन के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। इसके साथ ही वह राज्य का प्रधान भी होता है।

6.3.7.कार्यपालिका के कार्य (Functions of the Executive)

प्राचीन काल में जब राज्य का स्वरूप सैनिक राज्य का था तब कार्यपालिका के कार्य समिति थे, परतु आधुनिक राज्य में कार्यपालिका के कार्यों के क्षेत्र एवं प्रकृति में मौलिक अंतर हुआ है। साथ- ही-साथ उसके कार्यों में वृद्धि भी हुई है। आधुनिक राज्य में कार्यपालिका के निम्नलिखित मुख्य कार्य हैं.

प्रशासकीय कार्य -कार्यपालिका के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रशासकीय कार्य हैं। कार्यपालिका अपने देश की सीमा के अंतर्गत विधियों को लागू करती है, प्रशासन की विभिन्न एजेंसियों को गठित करती है तथा उनके लिए पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है। कार्यपालिका प्रशासन के विभिन्न विभागों एवं एजेंसियों के बीच सांमजस्य स्थापित करती है। संक्षेप में, आंतरिक दृष्टि से कार्य लिका कानूनों को लागू करने, प्रशासन का निर्देशन, निरीक्षण एवं नियंत्रण करने तथा प्रशासन के विभिन्न विभागों एवं एजेंसियों के बीच ताल-मेल रखने तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करती है।

कूटनीतिक कार्य- कार्यपालिका कूटनीतिक कार्यों का भी संपादन करती है। इसके अंतर्गत विदेशी मामले भी आ जाते हैं। आधुनिक युग में विदेशी क्षेत्रों में कार्यपालिका के कार्य बढ़ गए हैं। वह विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों एवं राजनयिकों की नियुक्ति करती है तथा विदेशों से आने वाले राजदूतों का प्रमाणपत्र ग्रहण करती है। विदेशों के साथ संधि एवं समझौते करने तथा उन्हें लागू करने में कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। संधियों एवं समझौते से विदेशों के साथ आर्थिक, राजनीतिक, व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने की जिम्मेदारी भी कार्यपालिका की ही हैं।

सैनिक कार्य-आधुनिक युग में मुख्य कार्यपालक को ही सेना का प्रधान कहा जाता है। भारत का राष्ट्रपति सेना के तीनों अंगों का सर्वोच्च सेनापति है। कार्यपालिका ही सेना के प्रधानों की नियुक्ति करती है तथा उसे युद्ध या अन्य प्रयोजनों के लिए आदेश देती है। युद्ध, युद्धविराम की घोषणा करना भी कार्यपालिका के ही कार्य हैं।

विधायिनी कार्य-कार्यपालिका विधायिनी कार्यों का भी संपादन करती है। संसदीय शासन प्रणाली के अंतर्गत तो विधिनिर्माण की वास्तविक जिम्मेदारी कार्यपालिका की होती है। विधेयकों को प्रस्तावित करने से लेकर उन्हें पारित करने की जिम्मेदारी कार्यपालिका की है। विधिनिर्माण में सहभागी होने के साथ-साथ कार्यपालिका अध्यादेश भी जारी करती है।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में शक्तियों के पृथकरण के कारण कार्यपलिका सक्रिय रूप से विधि निर्माण की प्रक्रियाओं में तो भाग नहीं लेता, परंतु संदेश भेजने के अधिकार एवं निषेधाधिकार के कारण वह विधायन की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। आधुनिक युग में प्रदत्त विधायन के कारण भी विधायिनी क्षेत्र में कार्यपालिका की भूमिका सक्रिय एवं महत्त्वपूर्ण हो गई है।

वित्तीय कार्य-देश की वित्तीय व्यवस्था के प्रबंध एवं संचालन की जिम्मेदारी कार्यपालिका की है। देश के आय-व्यय के लिए बजट बनाने तथा विधानमंडल के सामने उसे प्रस्तुत करने, विधाविका द्वारा स्वीकृत राजस्व की राशि को वसूलने, उनका टन करने, तथा प्रशासन के संबंध में आवश्यक व्यय करने का अधिकार कार्यपालिका के हैं। कार्यपालिका नए टैक्स लगाने, पुराने टैक्सों में संशोधन करने या उठने का प्रस्ताव विधायिका के सम्मुख रखती है। कार्यपालिका देश की संचित निधि का संरक्षक होती है। विधायिका की स्वीकृति के अभाव में वह आकस्मिक निधि से राशि निकालकर भी व्यय कर सकती है।

न्यायिक कार्य-कार्यपालिका को न्यायिक कार्यों का भी संपादन करना पड़ता है। वह न्यायधीशों की नियुक्ति करती है, न्यायालय द्वारा दंडित व्यक्तियों के दंड को कम कर सकती है, स्थगित कर सकती है तथा क्षमा प्रदान कर सकती है।

अन्य कार्य-कार्यपालिका को उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार के कार्यों का भी संपादन करना पड़ता है। देश के आर्थिक एंव व्यापारिक विकास में भी कार्यपालिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

कार्यपालिका को संकटकालीन स्थितियों में कुछ विशेष प्रकार के कार्यों का संपादन करना पड़ता है। उस समय वह असामान्य शक्तियों का भी प्रयोग करती है। उदाहरण के लिए, भारत की कार्यपालिका को संकटकालीन स्थिति का मुकाबला करने के लिए संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। फ्रांस में भी कार्यपालिका को आपातकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं।

6.4. पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

6.4.1 न्यायपालिका (Judiciary)

राजनीतिक शक्ति की स्वेच्छाचारिता से नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा के लिए सभी लोकतन्त्रीय देशों में स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। यह सरकार का ऐसा अंग है जो विधायिका और कार्यपालिका को अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने से रोकता है। न्यायपालिका किसी भी सभ्य समाज का आधार है। सभ्य समाज में प्रत्येक नागरिक और समाज यह आशा करता है कि उसके साथ कोई अन्याय न हो और उसका जीवन सुचारु ढंग से चलता रहे। इसके लिए वह स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की कामना रखता है। यह निष्पक्ष न्यायपालिका ही कानून का शासन स्थापित करके नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा करती है और सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक जीवन को नियन्त्रित भी रखती है। यह सरकार का तीसरा अंग होने के नाते शासन की कार्यकुशलता में वृद्धि करने का साधन भी है।

6.4.1.1.न्यायपालिका का अर्थ व परिभाषा (Meaning and definition of Judiciary)-

साधारण अर्थ में न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जिसका प्रमुख कार्य संविधान की व्याख्या करना तथा कानूनों को भंग करने वालों को दण्ड देना है। इस तरह कानूनों की व्याख्या करने व उनका उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करने की संस्थागत व्यवस्था को न्यायपालिका कहा जाता है। यह उन व्यक्तियो का समूह है जिन्हें न्याय करने का अधिकार प्राप्त है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का एक ऐसा अंग भी है जो सरकार के हाथों में राजनीतिक शक्ति के अत्यधिक केन्द्रीकरण की रोकथाम और लोकतन्त्र की धांधलियों या बहुमत के निरंकुश शासन से नागरिकों की स्वतन्त्रता व अधिकारों की सुरक्षा करती है। ब्राईस ने इसे राज्य के लिए एक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि उसकी क्षमता से अधिक सरकार की उत्तमता की कसौटी माना है। कुछ विद्वानों ने न्यायपालिका को निम्न रूप में परिभाषित भी किया है-

- .**वाल्टन एच0 हेमिल्टन के अनुसार-** "न्यायिक प्रक्रिया न्यायधीशों के द्वारा मुकद्मों का निर्णय करने की मानसिक प्रविधि है।"
- **लास्की के अनुसार-**"न्यायपालिका अधिकारियों का ऐसा समूह है, जिसका कार्य, राज्य के किसी कानून विशेष के उल्लंघन की शिकायत, जो विभिन्न नागरिकों व राज्य के बीच एक दूसरे के खिलाफ होती है, का समाधान व फैसला करना है।"
- **रॉले के अनुसार-**"न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जिसका कार्य अधिकारों का निश्चय और उन पर निर्णय देना, अपराधियों को दण्ड देना तथा निर्बलों की अत्याचार से रक्षा करना है।"
- **ब्राइस के अनुसार-**"न्यायपालिका किसी सरकार की उत्तमता को जांचने की कसौटी है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि न्यायपालिका सरकार का ऐसा अंग है जो सरकार की निरंकुशता से नागरिकों को बचाता है,कानून की व्याख्या करता है और गलत कार्य करने वालों को दण्ड देता है। गार्नर ने इसे सभ्य समाज का मेरुदण्ड कहा है।

6.4.2.न्यायपालिका का महत्व (Importance of Judiciary)

समाज की उत्पत्ति के साथ-साथ न्याय की मांग का भी सिलसिला प्रारंभ हुआ। अनेक विद्धानो ने कहा है कि मनुष्य स्वभाव से संघर्षशील प्राणी है। मनुष्यो के पारस्परिक संघर्षों एव मतभेदो ने न्याय को जन्म दिया। प्राचीन काल मे एक या दो व्यक्ति मिलकर व्यक्तियों के झगड़ों का निबटारा करते थे। ज्यो-ज्यो समाज सभ्य और उन्नत होता गया, न्यायपद्धति मे भी विकास होता गया। आदिकाल से लेकर आज तक किसी-न-किसी रूप मे न्याय विभाग का अस्तित्व सदैव रहता है। तथा सामान्य जनता के द्दष्टिकोण से न्यायिक कार्यों का संपादन सदा से ही महत्व का विषय रहा है। गार्नर के कथानुसार, "न्याय विभाग के अभाव में एक सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है।" मनुष्यो के पारस्परिक संघर्षो और मतभेदो को दूर करने तथा न्याय देनेवाली संस्था को न्यायपालिका कहा जाता है।

सरकार के तीन अंगो-व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका मे न्यायपालिका का विशिष्ट महत्व है। सरकार के जितने भी मुख्य कार्य है, उनमे न्यायकार्य निःसंदेह अति महत्वपूर्ण है, क्योकि इसका संबंध नागरिको से होता है। चाहे कानून के निर्माण की मशीनरी कितनी भी विस्तृत और वैज्ञानिक क्यो न हो, चाहे

कार्यपालिका का संगठन किंजा भी पूर्ण क्यो न हो, परंतु फिर भी नागरिक का जीवन दुखीः हो सकता है और उसके जान-माल को खतरा उत्पन्न हो सकता है, यदि न्याय करने में देर हो जाए या न्याय में दोष रह जाए अथवा कानून की व्याख्या पक्षपातपूर्ण या भ्रामक हो। ब्राइस ने न्यायपालिका के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, "न्याय विभाग की कुशलता से बढकर सरकार की उत्तमता की दूसरी कोई भी कसौटी नहीं है क्योकि किसी ओर चीज से नागरिक की सुरक्षा और हितो पर उतना प्रभाव नहीं पडता जितना कि उसे इस ज्ञान से कि वह एक निश्चित, शीघ्र एवं निष्पक्ष न्यायशासन पर निर्भर रह सकता है।न्यायपालिका लोकतंत्र का प्रहरी है। कानून का पालन करने तथा कानून के प्रति आस्था जगाने मे, न्यायपालिका की विशिष्ट भूमिका रहती है। लोकतंत्र में जनता को समानता पर आधूत न्याय मिलना आवश्यक है। नागरिक की स्वतंत्रता, समानता तथा उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा करने में भी न्यायपालिका विशिष्ट भूमिका अदा करती है।संघात्मक शासन मे न्यायपालिका का विशेष महत्व है। संघात्मक शासन में संघ और ईकाइयो के बीच सदैव संघर्ष की संभावना रहती है। न्यायपालिका के अभाव में इस संघर्ष को दूर नहीं किया जा सकता। अतः एक स्वतंत्र एव शक्तिशाली न्यायपालिका संघात्मक शासन की प्रमुख विशेषता है।उपर्युक्त विश्लेषण इस बात को स्पष्ट करता है कि न्यायपालिका आधुनिक समाज की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। न्यायपालिका के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओ में स्पष्ट किया जा सकता है-

- **न्यायपालिका सभ्य समाज का प्रतीक है-**अगर राज्य में न्यायपालिका नहीं हो तो नागरिक आपस मे लड़ते-झगड़ते रहेंगे और समाज में अराजकता का साम्राज्य बना रहेगा। न्यायपालिका नागरिको के झगडो और मतभेदो को दूर कर समाज में व्यवस्था कायम रखने में सहायक होती है।
- **कानून के प्रति आस्था-** न्यायपालिका देश के प्रचलित कानून के आधार पर लोगों के झगड़ो को दूर कर लोगों के मन में कानून के प्रति आस्था पैदा करती है।
- **विधि का शासन-**विधि के शासन की स्थापना मे भी न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि न्यायपालिका नहीं रहे तो राज्य मे व्यक्तिविशेष का अधिनायकवाद स्थापित हो सकता है। कानून की मर्यादा को प्रसारित कर न्यायपालिका विधि का शासन लागू करती है।
- **लोकतंत्र का प्रहरी-**समय पर कानून की व्याख्या कर तथा जनता के प्रतिनिधियो द्वारा निर्मित कानून तथा परंपराओ को मान्यता देकर न्यायपालिका लोकतंत्र की रक्षा करने में समर्थ होती है।

- **नागरिको के अधिकारो एंव स्वतंत्रता की रक्षा-**न्यायपालिका नागरिको के अधिकारो एवं स्वतंत्रता की रक्षा करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यही कारण है कि न्यायपालिका को नागरिको के मौलिक अधिकारो का संरक्षक कहा जाता है।
- **संघ और इकाईयो के बीचके विवादों को दूर करने में विशेष सहायक -**संघात्मक शासन में महत्व संघात्मक शासन मे न्यायपालिका का विशेष महत्व है। न्यायपालिका संघ और इकाईयो के बीचके विवादों को दूर करने में विशेष सहायक सिद्ध होती है। स्वतंत्र और शक्तिशाली न्यायपालिका संघात्मक शासन की पूर्वशर्त है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि एक सभ्य समाज के लिए न्यायपालिका अनिवार्य शर्त है। ब्राइस के शब्द मे, यदि न्याय का दीप अंधेरे मे बुझ जाए तो वह अंधेरा कितना गहन होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।"

6.4.3.न्यायपालिका के कार्य (Functions of Judiciary)-

सरकार के अन्य अंगो की तरह न्यायपालिका के कार्य भी इंगित कर दिए गए है। आधुनिक राज्य मे न्यायपालिका निम्नलिखित मुख्य कार्यों का संपादन करती हैः-

- न्यायपालिका का सर्वप्रथम तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य है. झगड़ों एवं विवादो का फैसला करना। पुराने जमाने में पंचो के द्वारा आपसी झगड़ों को दूर किया जाता है। अब यह काम न्यायपालिका करती है। न्यायपालिका नागरिको के आपसी झगड़ों एंव विवादों का फैसला करती है।
- न्यायपालिका कानून का उल्लंघन करनेवालों को दंड देती है। समाज में अनेक प्रकार के कानून बनाए जाते है। यदि इन कानूनों का पालन नहीं हो तो समाज मे विश्रंखलता तथा अराजकता का साम्राज्य फैल जाएगा। न्यायपालिका कानून का उल्लंघन करनेवालें को दंड देकर कानून की मर्यादा बरकरार रखती है।
- कानूनों की व्याख्या करना भी न्यायपालिका का मुख्य कार्य है। विधायिका द्वारा पारित कानूनों मे कई अस्पष्टताएँ तथा कैई त्रुटियाँ रह जाती है। न्यायालय इन अस्पष्टताओं की व्याख्या कर निंहित त्रुटियों को दूर करती है।

- संविधान की रक्षा करना न्यायपालिका का सबसे महत्वपूर्ण एंव पुनीत कार्य है। संविधान देश की शासन-व्यवस्था का आधार है। यह देश का मौलिक कानून संविधान की पवित्रता बनी रहती है।
- न्यायपालिका कानून-निर्माण का भी कार्य करती है। समय-समय पर कानूनों की व्याख्या करने के क्रम मे न्यायपालिका नए कानून का भी निर्माण करती है। औचित्य के आधार पर भी कानून का निर्माण किया जाता है। न्यायपालिका द्वारा निर्मित कानून को केस-लॉ कहा जाता है। लिकॉक के कथानुसार, "न्यायधीशों द्वारा दिया गया निर्णय अप्रत्यक्षा से कानून पूरक होता है। इस दृष्टि से न्यायालय अर्द्ध-विधानमंडल का रूप धारण करके कई वर्तमान कानूनों का निर्माण करता है।"
- न्यायपालिका पर नागरिक के अधिकारों की रक्षा करने की भी जिम्मेदारी रहती है। न्यायपालिका को नागरिकों के अधिकारों का संरक्षक माना जाता है। मौलिक अधिकारों की रक्षा के क्रम मे न्यायालय विभिन्न प्रकार के लेख एंव आदेश जारी करता है। भारत के अनुच्छेद 32 एवं 226 के अंतर्गत नागरिको के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय एंव उच्च न्यायालय क्रमशः आदेश एवं लेख जारी कर सकते है।
- न्यायपालिका को प्रशासनिक विभागों या प्राधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों के विरूद्ध अपील सुनने का अधिकार है। भारत में न्यायालय श्रम न्यायधिकरण, आयकर विभाग, चुनाव आयोग आदि के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता है।
- अनेक राज्यों मे न्यायपालिका परामर्श देन का भी कार्य करती है। भारत के कई मामलो मे राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श ले सकता है। ब्रिटेन मे प्रिवी कौसिल भी परामर्श देनें का कार्य करती थीं।
- न्यायपालिका प्रशासकीय कार्य भी संपादित करती है। अपने अधीन काम करनेवाले कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनकीं सेवा-संबंधी शर्तों को निर्धारित करना, अधीनस्थ न्यायालयों का निरीक्षण एवं अधीक्षण न्यायपालिका के कुछ प्रशासकीय कार्य है।

आधुनिक युग मे न्यायपालिका के कार्यों में व्यापकता और विविधता दोनों पाई जाती है। प्रो० मसालदन ने कहा है, "न्यायपालिका के समस्त कार्यों को दो भागों में रखा जा सकता है-एक सरकार के अन्य अंगो पर नियंत्रण लगाने का कार्य, दूसरा व्यक्ति के अधिकारों से संबंधित कार्य।" आज के संदर्भ में दोनों प्रकार के कार्य समान महत्व के हो गए है और न्यायपालिका दोनों पर समानरूप से ध्यान देती है।

6.4.4.न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of the Judiciary)

न्यायपालिका की प्रभावशीलता के लिए यह आवश्यक है कि न्यायपालिका को स्वतंत्रता प्रदान की जाए। लोकतंत्र की रक्षा सही अर्थ में तभी की जा सकती है जब न्यायपालिका को सशक्त और स्वतंत्र बनाया जाए। संघात्मक शासन के अंतर्गत तो न्यायपालिका का स्वतंत्र होना अनिवार्य है। साम्यवादी देशों को छोड़कर प्रायः सभी देशों मे न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाए रखने का प्रयास किया गया है। अनेक देशों ने अपने संविधान के अंतर्गत न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के संबंध मे आवश्यक प्रावधान किए है। अमेरिका, भारत आदि देशों मे न्यायपालिका की स्वतंत्रा पर अत्यधिक बल दिया गया है। न्यायपालिका की स्वतंत्रा के लिए कुछ विधियां है जिन्हे प्रत्येक देशों मे अपनाया जाता हैः-

- न्यायपालिका की स्वतंत्रा के लिए न्यायधीशों की नियुक्ति सबसे महत्वपूर्ण परिवर्त्य है। न्यायपालिका के न्यायधीशों के चुनाव के चार मुख्य तरीके है:-

1. कार्यपालिका द्वारा नियुक्ति,

ii. व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचन,

iii. जनता द्वारा चुनाव, और

iv. न्यायिक सेवा प्रतियोगिता द्वारा चुनाव।।

आम तौर से न्यायधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका के द्वारा ही की जाती है। अनेक दोष के बावजूद कार्यपालिका द्वारा न्यायधीशों की नियुक्ति को सर्वाधिक समर्थन मिला है। इस संबंध मे लास्की ने कहा है, इस विषय में सभी बातो को देखते हुए न्यायधीशों के पदों को राजनीति का शिकार नहीं बनना चाहिए। कुछ देशों मे न्यायधीशों को व्यवस्थापिका या जनता द्वारा निर्वाचित करने की व्यवस्था की गई है। जहां तक निर्वाचित न्यायधीशों का प्रश्न है. इसके पक्ष और विपक्ष में तर्क दिए गए है, परंतु अधिकांश विद्वानों ने इस पद्धति को अस्वीकार किया है।व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित न्यायधीशों की पद्धति को भी सर्वमान्यता नही मिली है, क्योंकि समीक्षकों का यह मत है कि व्यवस्थापिका द्वारा निर्वाचित न्यायपालिका के हाथों की कठपुतली बन जाएगी। कुल मिलाकर स्थिति यह है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के दृष्टिकोण से मुख्य कार्यपालक द्वारा की गई नियुक्ति बेहतर है, बशर्ते उसके अंतर्गत राजनीतिक आधार न हो।

- न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए न्यायधीशों की नियुक्ति का आधार भी एक प्रबल तत्व है। निष्पक्ष स्वतंत्रता का अर्थ है कि न्यायधीशों में भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए और उन पर विधानमंडल तथा कार्यकारिणी का नियंत्रण नहीं होना चाहिए।" अच्छी योग्यता तथा अच्छे चरित्रवाला व्यक्ति अच्छा न्याधींश हो सकता है।
- न्यायपालिका को स्वतंत्र बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह राजनीतिक दलबंदी से ऊपर हो। सोवियत रूस मे साम्यवादी दल के सदस्य या समर्थक ही न्यायधीश नियुक्त होते है, इसलिए सोवियत रूस मे न्यायपालिका को स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता है। स्वतंत्रता और निष्पक्षता के आधार पर ही अमेरिका के सर्वोच्च न्यायलय के न्यायधीशों के प्रारंभ मे रजनीतिक मसलों पर परामर्श देने से अस्वीकार कर दिया था।
- न्यायधीशों की पदच्युति भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता का एक प्रमुख बिंदु है। न्यायाधीशों के पद की सुरक्षा न्यायपालिका की स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण पहलू है। यदि न्यायधीशों को कार्यपालिका मनमाने ढंग से हटा देती है तो निश्चित रूप से न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अपहरण होगा। अपने पद पर बने रहने के लिए न्यायधीशों कार्यपालिका के विरूद्ध जाने का प्रयास नही करेगें, यही कारण है कि सभी देशों में न्यायाधीशोंको पदच्युत करने के लिए जटिल प्रक्रिया अपनाई जाती है। भारत और अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों को हटाने के लिए विधायिका के दोनों सदनों द्वारा प्रस्ताव पारित होना आवश्यक है। न्यायधीशों को हटाने की जटिल प्रक्रिया न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक शर्त है।
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए न्यायधीशों के निश्चित एव पर्याप्त वेतन-भत्ते आवश्यक है। कम वेतन और भत्ते से न्यायधीशों को भ्रष्ट होने का भय रहता है। हैमिल्टन के कथानुसार, "यह मानव- स्वभाव है कि जो मनुष्य अपनी आजीविका की दृष्टि से शक्तिसंपन्न है, उसके पास संकल्प का भी बडा बल होता है।" भारत मे आपातकाल को छोडकर न्यायधीशों के वेतन एवं भर्ती में कटौती नही होती, फिर भी यह कहा जा सकता है कि भारत मे न्यायधीशों के वेतन एंव भत्ते अपर्याप्त है। अभी कुछ दिनों पूर्व भारत के उच्चतम एंव उच्च्व न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन एवं भत्ते में वृद्धि की गई है।
- न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए लंबी कार्यावधि आवश्यक है। अमेरिका में न्यायधीश 70 वर्ष तक अपने पद पर बने रहते है, यद्यपि सांविधानिक प्रावधानों के अंतर्गत उनके अवकाश-ग्रहण के लिए आयु निर्धारित

नही है। छोटी कार्यावधि के कारण न्यायधीश हमेशा संशकित रहते है। भारत मे भी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश 65 वर्ष तक अपने पद पर बने रहते है।

उपर्युक्त विश्लेषण इस बात को प्रतिपादित करता है कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए कुछ शर्तों का पालन होना आवश्यक है। भारत और अमेरिका मे न्यायपालिका के स्वतंत्रता के लिए संविधान मे आवश्यक प्रावधान रखे गए है। व्यवहार मे भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रयास किया गया है। भारत मे उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के स्थानांतरण को लेकर व्यापक विवाद उठ खडा हुआ था। न्यायधीशों के स्थानांतरण को न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अवरोधक समझा गया था। पूरे राष्ट्रीय स्तर पर इस विवाद पर विचार-विर्मश किया गया। ब्रिटेन मे न्यायपालिका उस सीमा तक स्वतंत्र नही है जिस सीमा तक वह भारत और अमेरिका में है।

6.4.5.विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका में अन्तर्सम्बन्ध (Interrelationship between legislature, executive and judiciary)-

आज का युग कल्याणकारी सरकारों का युग है। आज आर्थिक विकास व राजनीतिक स्थायित्व का प्रश्न विकासशील देशों को कचोट रहा है। ऐसी अवस्था में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त लागू करके सरकार के तीनों अंगों को एक दूसरे का विरोधी बनाना प्रासंगिक नहीं है। व्यवहार में कार्यपालिका और विधायिका की पारस्परिक निर्भरता को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। आज यह कहना बिल्कुल गलत है कि सरकार का कौन सा अंग अधिक महत्वपूर्ण है ? इसी कारण राबर्ट सी0. बोन ने संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्थाओं में कार्यपालिका तथा विधायिका के सहमिलन की बात पर जोर दिया है। लेकिन अनेक विद्वान इस बात पर भी जोर देने लगे हैं कि व्यवस्थापिका के कार्यों का हास हुआ है और कार्यपालिका की शक्तियां बढ़ी हैं। यदि कार्यपालिका तथा विधायिका की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो कार्यपालिका को अधिक शक्तिशाली बना दिया है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यवस्थापिकाएं भी आज नई नई भूमिकाएं अदा कर रही हैं। आज कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिकाएं कार्य करने लगी हैं जो पहले उनके द्वारा नहीं किए जाते थे। उनके शक्ति संतुलन की बात करने की बजाय उनके द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाए रखने के लिए किए जाने वाले कार्यों पर चर्चा करना अधिक प्रासंगिक होगा। आज मुख्य विवाद कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका के बीच न होकर राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग को लेकर

है। कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका राजनीतिक शक्ति के रूप में जन इच्छा को अमली जामा पहनाने वाली संस्थाएं हैं। कार्यपालिका तो विधायिका की इच्छा का संचालन करती हैं और विधायिका, कार्यपालिका को अपनी इच्छा बताती है। संसदीय शासन प्रणाली वाले देशों में तो इन दोनों में पारस्परिक निर्भरता बहुत अधिक होती है। इसमें कार्यपालिका विधानमण्डल की कृपा पर ही कार्य करती है। यदि उसके खिलाफ संसद में अविश्वास का मत प्रापत हो जाए तो उसे त्यागपत्र देना पड़ सकता है। लेकिन यदि संसदीय सरकार में प्रधानमन्त्री वास्तविक कार्यपालक के रूप में सरकार को विचार करने के लिए नाममात्र के कार्यपालक राष्ट्रपति को प्रार्थना करे तो कार्यपालिका के साथ-साथ विधायिका भी भंग हो जाती है। इसलिए संसदीय देशों में कार्यपालिका तथा विधायिका में आपस में गहरा सम्बन्ध होता है। यहां पर नाममात्र व वास्तविक कार्यपालिका में भेद होने के कारण कार्यपालिका तथा विधायिका का आपस में पड़ने वाले प्रभाव का पता लगाना कठिन होता है। अध्यक्षात्मक देशों में शक्तियों के पृथक्करण के कारण कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका की स्वतन्त्र भूमिकाओं का पता लगाना आसान होता है। सर्वसत्ताधिकारवादी देशों में तो ये तीनों अंग आपस में इस तरह गुंथे होते हैं कि उनको अलग-अलग पहचानना कठिन होता है। उनमें शक्तियों का केन्द्रीयकरण ही सरकार के तीनों अंगों के सम्बन्धों का निर्धारक होता है। संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन प्रणालियों में न्यायपालिका को शेष दोनों अंगों से कुछ पृथक सा अस्तित्व प्रदान किया जाता है ताकि विधायिका और कार्यपालिका में शक्ति के प्रयोग को लेकर होने वाले टकराव को रोका जा सके। वास्तव में कार्यपालिका और विधायिका तो जन इच्छा को अमली रूप देती है और न्यायपालिका इस कार्य में उनकी मदद करती है। आज प्रदत व्यवस्थापन की व्यवस्था न तो कार्यपालिका तथा विधायिका को काफी निकट ला दिया है और न्यायिक शक्ति ने उनके कार्यों को औचित्यपूर्ण बनाने में सहयोग दिया है। आज समस्या विधायिका और कार्यपालिका के बीच टकराव की न होकर नौकरशाही के बढ़ते प्रभाव की है, जिससे कार्यपालिका व विधायिका दोनों चिन्तित हैं। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो प्रजातन्त्र में सर्वोच्च शक्ति व्यवस्थापिका में ही निहित रहती हैं। विधि-निर्माण के साथ-साथ विधानपालिका, कार्यपालिका पर नियन्त्रण भी रखती है। वह प्रश्नों, वाद-विवाद, मन्त्रिमण्डलीय नीति की आलोचना, नीति को अस्वीकृत करने, कटौती प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव, अविश्वास प्रस्ताव आदि विधियों से कार्यपालिका पर अपना दबाव बनाने का प्रयास करती रहती है। अध्यक्षात्मक शासन प्रणालियों में भी व्यवस्थापिका शक्ति पृथक्करण के बावजूद

भी कार्यपालिका पर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास करती है। इनके लिए वह अनुमानित बजट को स्वीकृति देती हैय नीति पर भी व्यापक वाद-विवाद के बार स्वीकृति देती हैय राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों पर जांच आयोग नियुक्त कर सकती है विभागीय कार्यों सम्बन्धी मांगों पर विस्तृत स्वीकृति देती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कार्यपालिका, विधायिका के हाथ की कठपुतली है। आज दलीय व्यवस्था के कारण स्थिति काफी पलट गई है। जब तक मन्त्रिमण्डल का संसद में बहुमत है तब तक संसद मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण करने की नहीं सोच सकती। दलीय बहुमत कार्यपालिका को स्वामी बना देता है। वह अपने दलीय बहुमत के कारण ही अपनीनीति और कार्यों पर संसदीय स्वीकृति प्राप्त करने में सफल रहती है। सरकार का दलीय बहुमत विरोधी दल की इच्छा को भी धूल में मिला देता है। संसदीय व्यवस्था में संसद के अधिवेशनों के समय, उसमें किए जाने वाले कार्यों, उसका अवसान व विघटन सभी कार्य मन्त्रीमण्डल (कार्यपालिका) ही निश्चित करता है। इस प्रणाली में यदि संसद को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रिमण्डल का अस्तित्व नष्ट करने की छूट है तो मन्त्रिमण्डल को भी वह अधिकार है कि वह निम्न सदन को भंग कराकर नए चुनाव करा सकता है। इसलिए विधायिका और कार्यपालिका पारस्परिक सामंजस्य बनाए रखने का ही प्रयास करते हैं। इसी तरह वित्तीय क्षेत्र में भी वास्तविक शक्ति कार्यपालिका के पास ही है। मन्त्रीमण्डल ही बजट तैयार करवाता है, उसे पारित करवाता है और लागू करता है तथा समस्त आर्थिक नियोजन पर अपना नियन्त्रण रखता है। वित्त पर संसदीय नियंत्रण तो नाममात्र का है। संसद तो केवल वित्त विधेंयक की आलोचना ही कर सकती है, न कोई नया कर लगा सकती है और न ही खर्चे की सीमा में वृद्धि कर सकती है। इस प्रकार कार्यपालिका विधायिका से भारी पड़ती है। अध्यक्षात्मक देशों में कार्यपालिका और विधायिका की पृथक शक्तियां होने के बावजूद भी दोनों का आपस में सम्बन्ध बना रहता है। विधायिका और कार्यपालिका के बाद न्यायपालिका की बारी आती है। न्यायपालिका इन दोनों से सर्वोच्च व स्वतन्त्र मानी जाती है। न्यायपालिका को भारत तथा अमेरिका की शासन प्रणालियों में यह अधिकार है कि वह कार्यपालिका तथा विधायिका के असंवैधानिक निर्णयों व कानूनों को अवैध घोषित कर दे। इस न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति द्वारा न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधायिका पर अपना नियन्त्रण कायम रखने में सफल रहती है। न्यायपालिका मौलिक अधिकारों तथा नागरिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा करके, अपराधिक तत्वों पर रोक लगाकर, कानूनों की व्याख्या करके कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों के काम को आसान बना देती है। कई बार महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सरकार

न्यायपालिका से परामर्श भी लेती है। इसी तरह न्यायपालिका कार्यपालिका तथा विधायिका के अतिक्रमण से नागरिकों की रक्षा भी करती है। लेकिन कई बार संसदीय शासन प्रणाली में संसद की सर्वोच्चता के कारण विधायिकाएं तथा कार्यपालिकाएं न्यायिक निर्णयों को पलट देती हैं और संविधान में संशोधन का नया अध्याय जोड़ देती है। इससे न्यायिक सर्वोच्चता व स्वतन्त्रता में कमी आती है। लेकिन ऐसा सदा नहीं होता। संसद न्यायधीशों के वेतन व भत्ते भी निर्धारित करती है। आवश्यकता पड़ने पर उन सुविधाओं में कटौती भी कर सकती है। इस तरह न्यायपालिका और अन्य दोनों अंगों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका सरकार के प्रमुख अंग हैं। इनके आपसी सहयोग के बिना कोई भी सरकार अपने उद्देश्यों में कामयाब नहीं हो सकती। इन अंगों के पारस्परिक सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध ही सरकार को सफलता दिला सकते हैं। इसी आवश्यकता को महसूस करते हुए आज कार्यपालिका तथा विधायिका में सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करने के तरीकों पर विचार किया जाने लगा है। संसदीय सरकारों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वह लोकतन्त्र के समानता व सहयोग के आदर्श पर चले और न्यायपालिका के आदेशों व निर्णयों का सम्मान करे।विभिंन्न देशों में न्यायपालिका की संरचना व कार्य आदि में अंतर मिलता है। इस अध्याय में ब्रिटेन, चीन, अमेरिका, स्विर्जलैंड की न्यायपालिका की व्यवस्था का अध्ययन किया गया।

6.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

(अ).सरकार की इच्छा या विधायिका के कानूनों को अमली जामा पहनाने वाला अंग कौनसा है?

(आ).साधारण अर्थ में कानूनों का क्रियान्वयन करने वाली संस्था क्या कहलाती है?

(इ).जहां पर शासन की सारी शक्तियां एक ही व्यक्ति में निहित रहती हैंउस कार्यपालिका को क्या कहते है ?

(ई).सरकार का वह अंग है जो कानून निर्माण का कार्य करता है ,क्या कहलाता है ?

(उ).भारत,स्विटजरलैंड ,अमेरिका ,फ्रांस,अर्जेन्टाइना में कार्यपालिका का कार्य कल कितना होता है ?

6.6.सारांश (Summary)

सरकार के कार्यों के कुशल संचालन के लिए उसे तीन अंगों में बांटा गया है। इनमें से विधायिका तो कानून निर्माण करती है, कार्यपालिका उन्हें लागू करती है तथा न्यायपालिका संविधान व सरकार की मर्यादा को बनाए रखती है। कार्यों की प्रकृति एवं सार्वजनिक उत्तरदायित्व के दृष्टिकोण से व्यवस्थापिका तीनों अंगों में सर्वोच्च है। व्यवस्थापिका का कार्य है-विधिनिर्माण करना। तुलनात्मक राजनीति की आधुनिक शब्दावली के अंतर्गत व्यवस्थापिका के स्थान पर नियम-निर्माण विभाग का प्रयोग किया जाता है।

व्यवस्थापिका के संगठन के कई आधार है। अलग-अलग देश मेंव्यवस्थापिका के संगठन के लिए अलग-अलग आधार अपनाया जाता है। कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है तथा कुछ देशों में व्यवस्थापिका का संगठन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। आमतौर से द्वितीय सदन के संगठन का आधार अप्रत्यक्ष होता है।

आधुनिक युग में व्यवस्थापिका के निर्वाचन का आधार राजनीतिक दल है। राजनीतिक दलों के आधार पर ही व्यवस्थापिका का संगठन होता है। व्यवस्थापिका के संगठन में उम्र, लिंग, स्थान आदि तत्त्वों को भी ध्यान में रखा जाता है। आमतौर से विश्व के अधिकांश देशो में प्रथम सदन के संगठन में वयस्क मताधिकार को ही आधार माना जाता है। कुछ विशेष प्रकार के हितों तथा अल्पसंख्यकों को मान्यता देने के लिए कुछ विशेष प्रकार की व्यवस्थाएँ अपनाई जाती है, जैसे आरक्षण, मनोनयन आदि। कार्यपालिका सरकार का वह अग है, जिसका कार्य व्यवस्थापिका द्वारा पारित विधेयको का कार्यान्वयन करना है। विधियों को लागू करने वाली शक्ति को कार्यपालिका कहा जाता है। कार्यपालिका का दो अर्थ में प्रयोग किया जाता है: व्यापक अर्थ में तथा संकुचित अर्थ में। व्यापक अर्थ में कार्यपालिका के अंतर्गत वे सभी कर्मचारी आते हैं, जिनका संबंध प्रशासन से होता है। संकुचित अर्थ में कार्यपालिका के अंतर्गत वे सभी कर्मचारी आते है, जिनका संबंध नीति-निर्माण तथा उसके कार्यन्वयन से है। अमेरिका में राष्ट्रपति तथा उसके सचिव उसके अंतर्गत आते हैं। पलेम्बरा ने सरकार, कार्यपालिका और नौकरशाही में अंतर बरता है। मैक्रीडिस ने कहा है कि राजनीतिक कार्यपालिका राजनीतिक समाज के शासन के लिए औपचारिक उत्तरदायित्व निभानेवाली संस्थागत व्यवस्था है। आधुनिक युग में राजनीतिविज्ञान के अंतर्गत कार्यपालिका में कार्यपालिका के प्रधान तथा मंत्रिमंडल को लिया जाता है। असैनिक सेवा तथा इस स्तर के कर्मचारी कार्यपालिका के अंतर्गत नहीं आते हैं। राजनीतिक शक्ति की स्वेच्छाचारिता से नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा के लिए सभी लोकतन्त्रीय देशों में स्वतन्त्र व

निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। यह सरकार का ऐसा अंग है जो विधायिका और कार्यपालिका को अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करने से रोकता है। न्यायपालिका किसी भी सभ्य समाज का आधार है। सभ्य समाज में प्रत्येक नागरिक और समाज यह आशा करता है कि उसके साथ कोई अन्याय न हो और उसका जीवन सुचारु ढंग से चलता रहे। इसके लिए वह स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की कामना रखता है। यह निष्पक्ष न्यायपालिका ही कानून का शासन स्थापित करके नागरिक स्वतन्त्रताओं व अधिकारों की रक्षा करती है और सम्पूर्ण सामाजिक व राजनीतिक जीवन को नियन्त्रित भी रखती है। यह सरकार का तीसरा अंग होने के नाते शासन की कार्यकुशलता में वृद्धि करने का साधन भी है।

6.7.सूचक शब्द (Key Words)

- **सदाचारपर्यंत:** आजीवन सुचितापूर्ण व्यवहार ।
- **कार्यपरायणता**: ईमानदारीपूर्ण कार्य करना ।
- **निर्वचन**: कानून की व्याख्या करना ।
- **संविधानिक** -संविधान या किसी संस्था के नियमों से संबंध रखने वाला।
- **तुलनात्मक -**जिसमें दो या अधिक चीजों की समानता और असमानता दिखाई गई हो।
- **निर्वाचक-**अनेक वस्तुओं में से कुछ वस्तुओं का प्रतिनिधि के रूप में चयन करना।
- **कूटनीति-**लोगों को ठेस पहुँचाए या नाराज किए बिना अपने व्यवहार के कौशल से अपने हितों की रक्षा की नीतिय व्यवहार कुशलता।
- **विधायिका या व्यवस्थापिका-** सरकार का वह अंग है जो कानून निर्माण का कार्य करता है।
- **न्यायिक पुनरावलोकन-** उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके अन्तर्गत कार्यकारिणी के कार्यों की न्यायपालिका द्वारा पुनरीक्षा का प्रावधान हो ।
- **सम्प्रभुता-** किसी भौगोलिक क्षेत्र या जन समूह पर सत्ता या प्रभुत्व के सम्पूर्ण नियंत्रण पर अनन्य अधिकार को सम्प्रभुता कहा जाता है ।

6.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

- **व्यवस्थापिका को परिभाषित कीजिए व इसके कार्यों की व्याख्या कीजिए।**

- **कार्यपालिका का अर्थ और परिभाषा दीजिये व इसके कार्यों की विस्तार से व्याख्या किजिए।**
- **न्यायपालिका को परिभाषित कीजिए व इसके कार्यों की विस्तार से व्याख्या कीजिए**.
- **न्यायपालिका के महत्व की विस्तार से व्याख्या कीजिए**.
- न्यायिक पुनर्विलोकन की व्याख्या कीजिए ।

6.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

(अ).कार्यपालिका

(आ).कार्यपालिका

(इ).एकलकार्यपालिका

(ई).व्यवस्थापिका

(उ).भारत में इसका कार्यकाल पांच वर्ष, स्विटजरलैंड में एक वर्ष, अमेरिका में चार वर्ष, फ्रांस में सात वर्ष तथा अर्जेन्टाइना में छः वर्ष है।

6.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।
- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ . बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज , अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी . गेना , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी . जौहरी , स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।
- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

Subject : Comparative Politics (Political Science)	
Course Code : POLS 301	Author **: Dr. Parveen sharma**
Lesson No. : 7	Vetter **:**
अनौपचारिक संरचनाएं-राजनीतिक दल और दबाव समूह **Informal Structures–Political Parties and Pressure Groups**	

अध्याय की सरंचना

7.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

7.2.परिचय (Introduction)

7.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

7.3.1.राजनीतिक दल का अर्थ और परिभाषा(Meaning and Definition of Political Party)

7.3.2.राजनीतिक दल की विशेषताएं(Features of Political Party)

7.3.3.लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका व कार्य (Role and Function of Political Parties in Democracy)

7.3.4.दलीय-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण (Classification of party systems)

7.3.5.दल-प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of the party system)

7.3.5.1.दल प्रणाली के गुण (Merits of party system)

7.3.5.2.दल दल प्रणाली के दोष (Demerits of the party system)-

7.3.5.दल-प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of the party system)

7.4 पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

7.4.1 दबाव समूह (Pressure Groups)

7.4.1.1. दबाव समूहों का अर्थ, परिभाषा (Meaning and definition of pressure groups)

7.4.2.हित समूह व दबाव समूह में अन्तर (Difference between interest group and pressure group)

7.4.3.दबाव समूह व राजनीतिक दल में अन्तर (Difference between pressure group and political party)

7.4.4.दबाव समूहों की विशेषताएं (Characteristics of pressure groups)

7.4.5.दबाव समूहों के प्रकार (Types of pressure groups)

7.4.6.दबाव समूहों के कार्य(Functions of pressure groups)

7.4.7.दबाव समूहों के निर्धारक तत्त्व (Defining elements of pressure group)

7.4.8.दबाव समूहों की प्रभावकारिता के कारण (Reasons for the effectiveness of pressure groups)

7.4.9.दबाव समूहों के कार्य व भूमिका (Functions and roles of pressure groups)

7.4.10.दबाव समूहों की आलोचना (Criticism of pressure groups)-

7.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

7.6.सारांश (Summary)

7.7.सूचक शब्द (Key Words)

7.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

7.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

7.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

7.1.अधिगम उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्यन के पश्चात् विद्यार्थी-

- **दबाव समूहों का अर्थ, परिभाषा व विशेषता को समझ पाएंगे ।**
- **हित समूह व दबाव समूह में अन्तर को समझ पाएंगे ।**
- **दबाव समूह व राजनीतिक दल में अन्तर को समझ पाएंगे ।**
- **दबाव समूहों के प्रकार व कार्य व भूमिका को समझ पाएंगे ।**
- **राजनीतिक दल के अर्थ , परिभाषा और महत्त्व को समझ पाएंगे ।**

7.2.परिचय (Introduction)

दल-प्रणाली किसी भी शासन व्यवस्था का आवश्यक अंग है। दलीय व्यवस्था ही वह ताना-बाना है जिसके चारों ओर राजनीतिक व्यवस्था गति करती है। लोकतन्त्र और तानाशाही शासन व्यवस्था वाले देशों में राजनीतिक दलों का बराबर महत्व है। लोकतन्त्रीय देशों में जहां राजनीतिक दल जनइच्छा की अभिव्यक्ति का साधन हैं, वहीं तानाशाही देशों में वे शासक वर्ग के हितों का सम्पादन करने वाले प्रभावशाली यन्त्र हैं। साम्यवादी देशों में भी दली-प्रणाली का उतना ही महत्व है, जितना भारत व अमेरिका जैसे लोकतन्त्रीय देशों में है। साम्यवादी देशों में तो व्यवहार में राजनीतिक दल ही सब कुछ है।

7.3.अध्याय के मुख्य बिन्दु (Main Points of the Text)

7.3.1.राजनीतिक दल का अर्थ और परिभाषा(Meaning and Definition of Political Party)

राजनीतिक दल (Political party)लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं। यह दल चुनावों में उम्मीदवार उतारते हैं और उन्हें निर्वाचित करवा कर दल के कार्यक्रम लागू करवाने क प्रयास करते हैं। राजनैतिक दलों के सिद्धान्त या लक्ष्य प्रायः लिखित दस्तावेज के रूप में होता है। विभिन्न देशों में राजनीतिक दलों की अलग-

अलग स्थिति व व्यवस्था है। कुछ देशों में कोई भी राजनीतिक दल नहीं होता। कहीं एक ही दल होता है। कहीं मुख्यतः दो दल होते हैं। किन्तु बहुत से देशों में दो से अधिक दल होते हैं। लोकतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में राजनैतिक दलों का स्थान केन्द्रीय अवधारणा के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनैतिक दल किसी समाज व्यवस्था में शक्ति के वितरण और सत्ता के आकांक्षी व्यक्तियों एवं समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे परस्पर विरोधी हितों के सारणीकरण, अनुशासन और सामंजस्य का प्रमुख साधन रहे हैं। इस तरह से राजनैतिक दल समाज व्यवस्था के लक्ष्यों, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तनों, परिवर्तनों के अवरोधों और सामाजिक आन्दोलनों से भी सम्बन्धित होते हैं। राजनैतिक दलों का अध्ययन समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री दोनों करते हैं, लेकिन दोनों के दृष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर है। समाजशास्त्री राजनैतिक दल को सामाजिक समूह मानते हैं जबकि राजनीतिज्ञ राजनीतिक दलों को आधुनिक राज्य में सरकार बनाने की एक प्रमुख संस्था के रूप में देखते हैं।

साधरण शब्दों में राजनीतिक दल एक ऐसा संगठन है जो सम्पूर्ण देश या समाज के व्यापक हित के सन्दर्भ में अपने सेवार्थियों के हितों को बढ़ावा देने के लिए निश्चित सिद्धान्तों, नीतियों और कार्यक्रम का समर्थन करता है और उन्हें कार्यान्वित करने के उद्देश्यसे राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है। राजनीतिक दल को अनेक विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है:-

- **मसलदान के अनुसार-**''एक राजनीतिक दल उस स्वेच्छिक समूह को कहते हैं जो कुछ सामान्य राजनीतिक व सामाजिक सिद्धान्तों के आधार पर तथा कुछ सामान्य लक्ष्यों और आदर्शों की पूर्ति के लिए शासन चलाने का प्रयत्न करता है तथा अपने सदस्यों को सत्तारूढ़ करने की चेष्टा करता है और उसके लिए चुनाव तथा अन्य साधनों का भी प्रयोग करता है।''
- **फ्रेडरिक के अनुसार-**''एक राजनीतिक दल उन व्यक्तियों का समूह है जो अपने नेताओं के लिए शासकीय नियन्त्रण प्राप्त करने अथवा उसे बनाए रखने के उद्देश्यों से स्थायी रूप से संगठित होते हैं और आगे अनुशासित रहकर लाभ प्राप्त करने के प्रयास करते हैं।''
- **मैकाइवर के अनुसार-** '' राजनीतिक दल वह समुदाय है जिसका संगठन किसी भी विशेष सिद्धान्त या नीति के समर्थन के लिए हुआ और वह संविधानिक साधनों द्वारा सरकार बनाने के लिए इस सिद्धान्त या नीति का सहारा लेता हो।''

- **गिलक्राइस्ट के अनुसार-**''राजनीतिक दल व्यक्तियों के उस समुदाय को कहते हैं जिसके सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं और जो एक राजनीतिक इकाई की तरह कार्य करके सरकार पर नियन्त्रण करने की चेष्टा करते हैं।''
- **मैक्स वेबर के अनुसार-**"राजनीतिक दल स्वेच्छा से बनाया हुआ वह संगठन है जो शासन शक्ति को अपने हाथ में लेना चाहता है और इसको हस्तगत करने के लिए प्रचार तथा आन्दोलन का सहारा लेता है। इस शासन शक्ति को हाथ में लेने के पीछेएक ही उद्देश्य हो सकता है जो या तो वस्तुनिष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति है या व्यक्तिगत स्वार्थ या दोनों है।"
- **गैटल के अनुसार-**"राजनीतिक दल नागरिकों का वह समुदाय है जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है औरअपने मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार को नियन्त्रित करना तथा अपनीसामान्य नीति की पूर्ति करना चाहता है।"
- **लीकॉक के अनुसार-**"राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो एक जगह मिलकर एक राजनीतिकइकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक जैसे होते हैं और वे सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिएमतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।"
- **रेने तथा केन्डल के अनुसार-**"राजनीतिक दल संगठित स्वायत्त समूह है जो सरकार की नीतियों एवं कर्मचारियों पर अन्नतःनियन्त्रण प्राप्त करने की आशा में चुनाव में उम्मीदवारों का नामांकन करता है और चुनाव लड़ता है।"
- **राबर्ट सी0 बोन के अनुसार**-"राजनीतिक दल व्यक्तियों का ऐसा संगठन है जो अपने उद्देश्यों को सरकार पर औपचारिकनियन्त्रण प्राप्त करके, समाज में मूल्यों के अधिकारिक वितरण में प्राथमिकता के प्रकरण बनाकर, प्राप्त करता है।"
- **पालोम्बरा के अनुसार-**"राजनीतिक दल एक औपचारिक संगठन है जिसका स्व-चेतन व प्रमुख उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को सार्वजनिक पदों पर पहुंचाना तथा उन पर नियन्त्रण बनाए रखना है जो अकेले या किसी से मिलकर शासन तन्त्र पर अपनानियन्त्रण करेंगे।"

- **कोलमेन के अनुसार-**"राजनीतिक दल वे समुदाय हैं जो औपचारिक रूप से इस उद्देश्य से संगठित होते हैं कि उन्हें वास्तविकअथवा सम्भावित सम्प्रभु राज्य सरकार की नीति और उसके सेवीवर्ग के ऊपर वैधानिक नियन्त्रण प्राप्त करना और बनाए रखनाहै, चाहे अकेले या मिलकर या वैसे ही अन्य समुदायों के साथ चुनाव प्रतियोगिता करके।"

इस प्रकार राजनीतिक दल के बारे में अनेक विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएं दी हैं जो राजनीतिक दल के सिद्धान्त, संगठन,कार्यक्रम, प्रकृति आदि पर प्रकाश डालती हैं।

7.3.2.राजनीतिक दल की विशेषताएं(Features of Political Party)

- राजनीतिक दल विशिष्ट सिद्धान्तों के आधार पर संगठित व्यक्तियों का समूह है।
- राजनीतिक दल बहुत सारे व्यक्तियों का स्थायी संगठन है।
- राजनीतिक दल अपने सदस्यों के हितों को ध्यान में रखते हुए समाज के व्यापक हित को बढावा देना चाहता है।
- राजनीतिक दल के सदस्यों में सामान्य लक्ष्यों व सिद्धान्तों पर आम सहमति पाई जाती है।
- राजनीतिक दल का कार्यक्रम स्पष्ट होता है।
- राजनीतिक दल अपने सिद्धान्तों, नीतियों व कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए राजनीतिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है।
- राजनीतिक दल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए चुनावों में भाग लेता है।
- राजनीतिक दल अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण तथा संविधान व कई बार असंविधानिक साधन अपनाता है।
- राजनीतिक दल राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति के बाद अपने सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप देना शुरू कर देता है।

7.3.3.लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों की भूमिका व कार्य (Role and Function of Political Parties in Democracy)

राजनीतिक दलों के कार्य व भूमिकाएं निम्नलिखित हैं:-

- **जनमत तैयार करना (To mould Public Opinion):-** लोकतन्त्रीय देशों में राजनीतिक दल ही जनमत का निर्माण करते हैं। साधारण जनता को तो देश की समस्याओं का ज्ञान नहीं होता, राजनीतिक दल उन समस्याओं का स्पष्टीकरण करके जनता को अपने पक्ष में करने के प्रयास करते रहते हैं। इससे जनता धीरे-धीरे संगठित होकर मजबूत जनमत का निर्माण कर देती है।
- **जनता की राजनीतिक शिक्षा देना (To Impart Political Education to the Citizen):-** राजनीतिक दल लोगों में राजनीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके लिए वे जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित करने का प्रयास करते हैं। जनता से देश की समस्याओ की जानकारी देते चुनावों के समय वे अपना घोषणापत्र लेकर जनता के बीच में जाते हैं। इससे जनता को राजनीतिक समस्याओं का ज्ञान भी हो जाता है और राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। इस तरह जनता राजनीतिक रूप से शिक्षित हो जाती हैं।
- **जनता तथा सरकार के बीच कड़ी का कार्य करना (To serve as a link between the people and the Government):-** राजनीतिक दल जनता और सरकार के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं। जिस दल की सरकार होती है, वह जनता में सरकार की नीति का प्रचार करता है और जनता को सरकार के साथ सहयोग करने की अपील भी करता है। राजनीतिक दल निर्वाचक समूह ही जानकारी देने, प्रशिक्षित करने और सक्रिय बनाने का कार्य करते हैं जिससे जनता में सरकार की नीतियों के प्रति जागरूकता पैदा होती है। वे नीतियों के बारे में जनता को ज्ञान देने के साथ-साथ जनता की भावनाएं और सरकार तक पहुंचाते हैं और उन्हें दूर करवाने का प्रयास भी करते हैं।
- **चुनाव लड़ना व सरकार बनाना (To fight election and to form Government)**:- लोकतन्त्र में जनता अपने प्रतिनिधियों के आधार पर ही शासन करती है। चुनावों में जीतकर उनका एक ही ध्येय होता है - सत्ता व शासन पर नियन्त्रण। जिस दल को चुनावों में बहुमत प्राप्त होता है, वही सरकार बनाता है और जनता के साथ किए गए वायदे को पूरा करने के लिए व्यावहारिक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।
- **सरकार की आलोचना करना (To oppose the Government):-** संसदीय शासन प्रणाली में एक दल तो सरकार चलाता है और दूसरा सरकार की नीतियों पर नजर रखता है ताकि गलत कार्य करने की दशा में सरकार की आलोचना की जा सके। विरोधी दल की आलोचना रचनात्मक होने के कारण

सत्तारूढ़ दल जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का सदा ध्यान रखता है। संसदीय सरकार मंे कार्यपालिका का विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होना विरोधी दल को महत्वपूर्ण बना देता है। यदि अविश्वास का मत पारित हो जाए तो सत्तारूढ़ सरकार का स्थान विरोधी दल भी ले सकता है। इसलिए विरोधी दल की उपस्थिति लोकतन्त्र को मजबूत आधार प्रदान करती है तथा इससे सरकार की निरंकुशता पर रोक लग जाती है।

7.3.4.दलीय-व्यवस्थाओं का वर्गीकरण (Classification of party systems)

आधुनिक समय में दल-व्यवस्थाओं का राजनीतिक समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां दल नहीं है। विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में दलीय प्रणाली अवश्य विद्यमान है। राजनीतिक व्यवस्था कें स्वरूप व संरचनातथा राजनीतिक दलों की प्रकृति, उद्देश्यों, संरचना आदि के आधार पर विश्व में अनेक दलीय-प्रणालियां विद्यमान हैं। अनेक विद्वानोंने राजनीतिक दलों की विशेषताओं, दलों के पारस्परिक सम्बन्ध, दल का इतिहास, राजनीतिक व्यवस्था की संरचना, सामाजिकसंरचना व संस्कृति, दलों की विचारधारा, दलों की संख्या, दलों के संगठन आदि के आधार पर दलीय-व्यवस्थाओं का अनेक भागोंमें वर्गीकरण किया है। आज अनेक विद्वानों ने दलों की संख्या के आधार पर दलीय-व्यवस्थाओं को निम्नलिकखत तीन भागों में बांटा गया है:-

(अ).एकदलीय प्रणाली (Single Party System)

(आ).द्विलीय प्रणाली (Bi&Party System)

(इ).बहु-दलीय प्रणाली (Multi&Party System)

(ई).एकदलीय प्रणाली (Single Party System)

(अ).एकदलीय प्रणाली -ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें शासन का सूत्र एक ही राजनीतिक दल के हाथों में रहे। कर्टिस ने इसकोपरिभाषित करते हुए कहा है-"एकदलीय पद्धति की यह विशेषता है कि इसमें सत्तारूढ़ दल का या तो सभी अन्य गुटों पर प्रभुत्वहोता है जो सभी राजनीतिक विरोधों को अपने में समा लेने का प्रयास करता है, या वह बहुत ही अतिवादी स्थिति में उन सभी विरोधीगुटों का दमन कर देता है जिन्हें प्रति क्रांतिकारी या शासन के प्रति तोड़फोड़ करने वाला दल समझा जाता है, क्योंकि उनमें राष्ट्रीय इच्छा को

विभाजित करने वाली शक्तियां होती हैं।" इस व्यवस्था के अन्तर्गत केवल एक ही दल को कार्य करने की अनुमति प्राप्तहोती है और सरकार पर उसी का वर्चस्व लम्बे समय तक भी बना रह सकता है। यह व्यवस्था सर्वाधिकारवादी और लोकतन्त्रीयदो प्रकार की होती है। भारत में 1967 तक लोकतन्त्रीय व्यवस्था का प्रचलन रहा। अन्य दलों के होते हुए भी वहां पर केन्द्र सरकार स्वतन्त्रता के बाद 1967 तक कांग्रेस की ही रहीं। इस प्रकार की दल व्यवस्थाएं भारत, जापान, मैक्सिको, कीनिया,ब्राजील आदि देशों में है। इसके विपरीत सर्वाधिकारवादी एक-दलीय व्यवस्थाएं इटली, जर्मनी, पुर्तगाल, चीन, सोवियत संघ,पोलैण्ड, हंगरी, वियतनाम, उत्तरी कोरिया, क्यूबा, पूर्वी जर्मनी, बुलगारिया, चौकोस्लोवाकिया, अलबानिया, स्पेन आदि देशों में रहीहै और कुछ में तो अब भी विद्यमान है।

एकदलीय प्रणाली के गुण-विभिन्न दलों के संघर्ष के अभाव में यह राष्ट्रीय एकता को कायम रखती है, क्योंकि सभी नागरिक एक ही विचारधारासे बंधे रहते हैं। एक ही दल की कार्यपालिका तथा मन्त्रिमण्डल होने क कारण सह स्थायी सरकार की जनक है। किसी दूसरे दल के प्रभाव के बिना इसमें सुद्दढ़ व मजबूत शासन की स्थापना होती है। लम्बे समय तक एक ही सरकार के रहने के कारण इसमें दीर्घकालीन योजनाओं को लागू करना संभव है। सरकार के सदस्यों में पारस्परिक विरोध न होने के कारण शासन के निर्णय शीघ्रता से लिए जाते हैं जिससे शासन में दक्षता आती है। ये गुटबन्दी की कमियों से सर्वर्था दूर है।

एकदलीय प्रणाली के दोष- यह प्रणाली नागरिकों की स्वतंत्रता का हनन करने वाली होने के कारण अलोकतांत्रिक है। यह प्रणाली निरंकुशता की जनक है।इसमें सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व नहीं मिल सकता। इसमें मनुष्यों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता। यह लोगों को राजनीतिक शिक्षा देने में असमर्थ है। इसमें विरोधी दल को सकारात्मक भूमिका की अनुपस्थिति है। इसमें चुनाव एकमात्र ढोंग है। यह बहुमत पर आधारित प्रणाली नहीं है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि एकदलीय प्रणाली एक तरह से तानाशाही शासन व्यवस्था की ही परिचायक है।जिन देशों में यह विद्यमान है, वहां नागरिकों की स्वतन्त्रता का हनन हो रहा है, अधिकसारों के नाम पर नागरिकों पर कर्त्तव्य थोपेजा रहे हैं। इस प्रणाली की तानाशाही ने ही सोवियत संघ को बिखेर दिया था। तानाशाही के बल पर शासन को चलाना और वैधताबनाए रखने का प्रयास कदापि सफल नहीं हो सकता। जिस देश में जनतन्त्रीय भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया जाता है, वहांपर थोड़ी सी भी ढील मिल जाने पर

जनता उस शासन का तखता ही पलट देती है। निरन्तर शक्ति बनाए रखना ही इस शासनप्रणाली के अस्तित्व का एक मात्र आधार है। विश्व में चीन ही एकमात्र ऐसा देश है जहां यह प्रणाली लम्बे समय से कार्य कर रहीहै। आज आइवरी कोस्ट, केन्या, मलावी, जांबिया, लाइबेरिया, गिनी, सोवियत संघ, घाना आदि देशों में इस शासन प्रणाली के विनाशका उदाहरण हमारे सामने यह तर्क प्रस्तुत करता है कि जनसहभागिता के अभाव में एकदलीय प्रणालियां अधिक दिन तक चलने वालीनहीं हैं, देर-सवेर इनका अन्त अवश्यम्भावी है।

(आ).द्वि-दलीय प्रणाली (Bi&Party System):- द्वि-दलीय राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शासन का सूत्र दो दलों के हाथ में रहता है। ये दोनों राजनीतिक दलइतने सशक्त होते हैं कि किसी तीसरे दल को सत्ता में नहीं आने देते। इन दो दलों के अतिरिक्त अन्य दलों की राजनीतिक व्यवस्थामें कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती। ब्रिटेन तथा अमेरिका द्वि-दलीय व्यवस्था के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। ब्रिटेन में लम्बे समय सेकंजर्वेटिव पार्टी तथा लेबर पार्टी ही कार्यरत् है। इसी तरह अमेरिका में लम्बे समय से दो ही दलों द डैमोक्रेटिक तथा रिपब्लिकनका वर्चस्व है। इंग्लैण्ड में साम्यवादी दल तथा उदारवादी दल भी हैं, लेकिन उनका कोई महत्व नहीं है, अमेरिका और ब्रिटेन में इनदो दलों को छोड़कर कभी किसी अन्य दल को सरकार बनने का अवसर नहीं मिला है। इनमें से एक दल तो सत्तारूढ़ रहता है,जबकि दूसरा दल अल्पमत में होने के कारण विरोधी दल की भूमिका अदा करता है। राजनीतिक शक्ति का द्वि-दलीय विभाजन होनेके कारण ही इसे द्वि-दलीय प्रणाली कहा जाता है। बेल्जियम, आयरलैण्ड तथा लकजमबर्ग, पश्चिमी जर्मनी, कनाडा आदि देशों मेंभी द्वि-दलीय व्यवस्थाएं ही प्रचलित हैं।

द्वि-दलीय प्रणाली के गुण-इसमें सरकार स्थिर होती है, क्योंकि इसमें मन्त्रिमण्डल और विधानमण्डल दोनों में एक ही दल का बहुमत होता है। कठोरदलीय अनुशासन के कारण न तो मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास किया जा सकता है और न ही समय पूर्व चुनावकराए जा सकते हैं।

इसमें सरकार बहुमत पर आधारित होने के कारण अधिक दृढ़ या शक्तिशाली होती है। इसी कारण वह अपनीनीति को आसानीसे लागू कर सकती है। बिलों पर वाद-विवाद करते समय मन्त्रिमण्डल को बहुमत के कारण अधिक कठिनाई से बिन पासकरवाने नहीं पड़ते। प्रत्येक बिल सरलता से पास हो जाता है।

इसमें स्थायी सरकार होने के कारण दीर्घकालीन योजनाएं लागू की जा सकती हैं और नीति को भी प्रभावी रखा जा सकता है। इसमें सरकार अच्छे या बुरे शासन के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, क्योंकि मन्त्रीमण्डल में एक ही दलके सदस्य होते हैं। अतः यह प्रणाली उत्तरदायी सरकार को जन्म देती है।

यह जनमत की भावना पर आधारित प्रणाली है। इसमें जनता प्रत्यक्ष रूप से सरकार का चुनाव करती है। जनता की इच्छाके अनुसार ही कोई राजनीतिक दल सत्तारूढ़ होता है। स्पष्ट बहुमत के कारण इसमें सरकार बनाना आसान होता है। इसी कारण यह बहुदलीय प्रणाली की तरह भ्रष्ट तरीकों सेसरकार बनाने के दोषों से जनता को राजनीतिक शिक्षा भी मिलती है। इसमें संगठित विरोधी दल होता है जो सरकार की रचनात्मक आलोचना करके सरकार को जनता की इच्छा का ध्यान दिलातारहता है। इससे सरकार जन-इच्छा के प्रति जागरूक बनी रहती है। इसमें निरंकुशता की भावना नहीं है। शासन का संचालन जनतंत्रीय भावनाओं को ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

द्वि-दलीय प्रणाली के दोष- इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही की स्थापना हो जाती है, क्योंकि विधानमण्डल में मन्त्रिमण्डल का बहुमत रहने के कारण हरबिल को पास कराने में सुविधा रहती है। इसमें विधानमण्डल मन्त्रिमण्डल के हाथों का खिलौना बनकर रह जाता है, क्योंकि बहुमत के नशे में मन्त्रिमण्डल विधानमण्डलपर हर अनुचित व उचित दबाव डाल सकता है। इसमें मतदाताओं की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है, क्योंकि उनके सामने दो ही दल होते हैं, जिनमें से एक को ही वे चुन सकते हैं।य4द्ध इसमें सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, क्योंकि जटिल सामाजिक संरचना में जन-प्रतिनिधित्व के लिए कई दलोंका होना आवश्यक होता है।इसमें सारा देश दो परस्पर विरोधी गुटों या विचारधाराओं में बंट जाता है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस प्रणाली में निर्वाचकों की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है और संसद की स्थिति मन्त्रिमण्डलके हाथों में एक खिलौने जैसी हो जाती है। लेकिन फिर भी यह प्रणाली सर्वोत्तम मानी जाती है। संसदीय व अध्यक्षात्मक सरकारोंकी सफलता के लिए इसका होना बहुत आवश्यक है। स्थिर प्रशासन व उत्तरदायी सरकार के रूप में आज यह प्रणाली अमेरिकाऔर ब्रिटेन में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। अतः निःसंदेह रूप से यह प्रणाली बहुत ही महत्वपूर्ण है।

(इ).बहुदलीय प्रणाली (Multi&Party System)- जिस देश में दो से अधिक राजनीतिक दल ऐसी स्थिति में हों कि चुनाव में उनमें से किसी को स्पष्ट बहुमत न मिल पाए, वहां बहुदलीयप्रणाली मिलती है। इससे सरकार एक दल की भी बन सकती है और कई दलों को मिलाकर सांझा सरकार भी बन सकती है।सांझा सरकार बनने का प्रमुख कारण यह होता है कि इसमें किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वोट विभिन्नहितों का प्रतिनिधित्व बल करने वाली पर्टियों में वितरित हो जाते हैं। ऐसी दल प्रणाली विश्व के अनेक देशों में पाई जाती हैं। भारतइसका सर्वोत्तम उदाहरण है। यह दल प्रणाली-स्थायी और अस्थायी दो तरह की होती है। स्थायी बहुदलीय प्रणाली वह है जिसमेंअनेक दल सत्ता के लिए संघर्ष तो करते हैं, लेकिन उनका ध्येय सरकार चलाने के साथ-साथ यह भी रहताहै कि राजनीतिक व्यवस्थामें अस्थिरता न आए। स्विट्जरलैंण्ड में ऐसी ही प्रणाली है। वहां पर सोशल डैमोक्रेटस, रेडिकल डैमोक्रेटस, लिब्रल डैमोक्रेट ओरसाम्यवादी दल राजनीतिक विघटन की स्थिति पैदा किए बिना ही सत्ता प्राप्ति का संघर्ष करते हैं। इसके विपरीत अस्थायी बहुदलीयप्रणाली में राजनीतिक अस्थिरता की राजनीतिक दलों को कोई चिन्ता नहीं होती है, उनका लक्ष्य तो सत्ता प्राप्त करना है। भारततथा फ्रांस में ऐसी ही प्रणालियां हैं।

बहुदलीय प्रणाली के गुण- इसमें सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व मिल जाता है, क्योंकि विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक राजनीतिकदल राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान रहते हैं। इसमें जन-साधारण को विचारों की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और राष्ट्र दो विरोधी गुटों या विचारधाराओं में नहीं बंटता। इसमें मतदाताओं को चुनाव की स्वतंत्रता रहती है। वे किसी एक दल को अच्छा मानकर उसका समर्थन कर सकते हैं।

इसमें मन्त्रिमण्डल की तानाशाही स्थापित नहीं होती, क्योंकि कई बार कई दल मिलाकर ही सरकार बनती है, जिसका संसदमें मिला-जुला ही बहुमत रहता है। इसमें विधानमण्डल मन्त्रिमण्डल के हाथों का खिलौना नहीं बनता, क्योंकि इसमें मन्त्रिमण्डल को विधानमण्डल में एक दल केबहुमत पर निर्भर न रहकर विधानमण्डल के ही बहुमत पर निर्भर रहना पड़ता है। इसमें सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि सरकार जनहित विरोधी कार्य करती है तो वह समय से पूर्व भी टूटसकती है। इसमें स्थानीय स्वशासन की भावना का विकास होता है।

इस प्रणाली का स्वरूप प्रजातांत्रिक है। इसमें राष्ट्रीय सरकार की परिकल्पना सम्भव है।

बहुदलीय प्रणाली के दोष- इसमें सरकार कई दलों से मिलकर बनी होने के कारण निर्बल और अस्थायी होती है, जो किसी भी समय टूट सकती है।इसमें सरकार दीर्घकालीन योजनाओं को लागू नहीं कर सकती और न ही दृढ़ नीतियों का निर्माण करके उन्हें लागू कर सकती है।इसमें सरकार का निर्माण करने में काफी मुसीबतें आती हैं। सरकार बनाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों में जो सौदेबाजीहोती है, वह राजनीतिक भ्रष्टाचार का ही उन्नत रूप है।इसमें दल-बदली को बढ़ावा मिलता है और अनुशासनहीनता बढ़ती है। इसमें प्रायः संगठित विरोधी दल का अभाव रहता है। इसमें विभिन्न दलों के सदस्यों को मिलाकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता है जो दल शासन का निर्माण नहीं कर सकता। इसमें शासनाध्यक्ष या प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत कमजोर होती है। किसी एक दल द्वारा समर्थन वापिस ले लेने पर सरकारगिर जाती है।सांझा-सरकार होने के कारण इसमें उत्तरदायित्व का अभाव पाया जाता है। यह अवसरवादिता और सिद्धान्तहीनता की जनक है। यह अस्थिर सरकार की जनक होने के कारण देश पर चुनावी बोझ लादने वाली है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि बहुदलीय प्रणाली किसी भी देश में अधिक सफल नहीं रही है। निर्बल व अनुत्तरदायीसरकार के रूप में इसकी निरन्तर आलोचना होती रही है। इसमें कभी भी स्थिर सरकारों का निर्माण नहीं हुआ है। यद्यपि भारतमें वर्तमान वाजपेयी सरकार ने अपना पूरा कार्यकाल निकाला है। सांझी-सरकार होते हुए भी ऐसी स्थिरता देना अपने आप में एकअनूठा उदाहरण है। लेकिन फ्रांस में 1870 से 1914 तक 88 सरकारों का निर्माण हुआ। बहुदलीय प्रणाली का इतिहास बताता है किसांझा सरकारें कभी अधिक सफल नहीं रही हैं। ऐसे अवसर बहुत ही कम आए हैं जब बहुदलीय प्रणाली में किसी एक दल को स्पष्टबहुमत मिलने पर सरकार बनाई गई हो। भारत में 1967 तक ही बहुदलीय प्रणाली अधिक सफल रही है। आज कम ही ऐसे देशहैं जहां बहुदलीय प्रणाली के अन्तर्गत स्थिर सरकारों का निर्माण हुआ है। यदि बहुदलीय प्रणाली के दोषों में से कुछ का भी निवारणकर दिया जाए तो यह प्रणाली स्थिर सरकारों के मार्ग पर चल सकती है। भारतीय संसद ने हाल ही में दल-बदल विरोधी कानूनपास करके निर्धारित अवधि तक किसी भी विधायक को विधानमण्डल में दूसरे दल का प्रतिनिधित्व करने पर रोक लगा दी है। इससेसांझा सरकार का आधार मजबूत होने के प्रबल आसार हैं और बहुदलीय प्रणाली की सफलता के भी। लेकिन वर्तमान में तो यहअस्थिर सरकारों की जनक ही है।

7.3.5.दल-प्रणाली का मूल्यांकन (Evaluation of the party system)

दलीय-व्यवस्था का उपरोक्त विवरण इस बात की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि प्रजातन्त्रीय देशों में तो दल-प्रणाली कास्वरूप लोकतन्त्रीय है, लेकिन सर्वाधिकारवादी देशों में राजनीतिक दल अलोकतांत्रिक तरीके से काम करते प्रतीत होते हैं। कुछविद्वानों ने तो लोकतन्त्र सहित सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं के संचालन के लिए राजनीतिक दलों के महत्व पर विचार किया है।मुनरो ने तो दलीय शासन को ही लोकतन्त्रीय शासन कहा है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में दलीय प्रजातन्त्र विकृत प्रजातन्त्र है। सर्वोदयीविचारधारा दल विहीन प्रजातन्त्र की बात करती है। इस तरह दल-प्रणाली प्रशंसा उसके अन्तर्निहित गुणों के आधार पर की जातीहै और आलोचना उसके दोषों के आधार पर।

7.3.5.1.दल प्रणाली के गुण (Merits of party system)

- **लोकतन्त्र की रक्षक**-लोकतन्त्र में दलों का बहुत महत्व होता है। जनता को राजनीतिकशिक्षा देने व उनमें राजनीतिक चेतना का विकास करने, जनता को सार्वजनिक नीति के निर्माण में भागीदार बनाने, जनमत कानिर्माण करने, चुनाव लड़ने, सरकार बनाने तथा किसी दल के रूप में सरकार की आलोचना करने का कार्य लोकतन्त्र मेंराजनीतिक दल ही करते हैं। यदि राजनीतिक दल न हों तो यह पता लगाना कठिन हो जाएगा कि किस व्यक्ति कोविधानमण्डल में बहुमत प्राप्त है। यदि बहुमत का पता न होगा तो राष्ट्रपति सरकार बनाने के लिए किसे आमन्त्रित करेगा।इसलिए लोकतन्त्र के मूल सूत्र की दृष्टि से कार्य करने के लिए सरकार को राजनीतिक दलों की ही सहायता लेनी पड़तीहै। लीकॉक का कथन सही है-"लोकतन्त्र और दल प्रणाली में कोई विरोध नहीं है, वरन् उसी से लोकतन्त्र सम्भव है।" अतःसरकार को व्यवहारिक रूप देकर लोकतन्त्र की रक्षा राजनीतिक दल ही करते हैं।
- **दृढ़ सरकार की स्थापना में सहायक**-राजनीतिक दलमतदाताओं को संगठित करके चुनावों में बहुमत प्राप्त करके सरकार बनाते हैं। जिस दल की सरकार होती है, वह सदा बहुमतको बनाए रखने के लिए जन-भावना का ख्याल रखता है। जब सरकार को पता होता है कि उसे विधानमण्डल में बहुमतप्राप्त है तो वह निर्भय होकर नीतियों का निर्माण करते उन्हें लागू कर सकती है। यदि जनमत बिखरा हुआ हो और उसे संगठितकरने वाले राजनीतिक दल न हों तो सरकार बनाना और चलाना दोनों कठिन होता है। दलीय अनुशासन ही सुदृढ़ सरकारका आधार है। राजनीतिक दल ही सरकार को शक्ति प्रदान करते हैं और

उसकी वैधता की परीक्षा चुनावों में करा देते हैं।वास्तव में राजनीतिक दल ही जनमत को संगठित करके स्थिर सरकार को जन्म देते हैं।

- **जनमत का निर्माण**-लोकतन्त्र में बहुमत का शासन होता है। इसलिए जनमत को संगठितकरना बहुत जरूरी होता है। इस संगठित जनमत का निर्माण करने में राजनीतिक दल ही बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।इसके लिए वे जनता के बीच में विभिन्न कार्यक्रम लेकर जाते हैं। पत्र-पत्रिकाएं छपवाते हैं, नए नेताओं की भर्ती करते हैं,कर्मठ सदस्यों को संगठन में लेते हैं, विचार-गोष्ठियों का आयोजन करते हैं, सरकार की नीतियों में जनता को परिचित करवातेहैं और सरकार की गलत नीतियों पर आलोचना करने के लिए जनमत की सहायता लेते हैं। इस तरह वे बिखरी हुई जनताको सामान्य सिद्धान्त पर सहमति के निकट लाकर रख देते हैं।
- **सरकार पर नियन्त्रण**-लोकतन्त्रीय देशों में राजनीतिक दलों का भविष्य लोकमत पर टिकाहोता है। इसलिए वे सरकार की समस्त गतिविधियों पर नजर रखते हैं। विरोधी दल के रूप में दल ही सरकार की निरंकुशतारोकते हैं। सरकार की गलत नीतियों की आलोचना करके वे सरकार को चेता देते हैं और सरकार की मनमानी नहीं करने देते हैं। संसद सत्र के दौरान राजनीतिक दलों के द्वारा ही सरकार की गलत नीतियों पर हंगामा किया जाता है और उनमें बदलाव लाने के लिए बाध्य भी कर दिया जाता है। भारत में सांझा-सरकार होने के कारण इस नियन्त्रण में कुछ कमी अवश्यआ जाती है, क्योंकि संगठित विरोधी दल का प्रायः अभाव ही रहता है। लेकिन यह बात तो सत्य है कि लोकतन्त्र में प्रत्येकराजनीतिक दल जनता के भावी कोप से बचने के लिए जनविरोधी कार्यों से दूर ही रहता है।
- **जनता को राजनीतिक शिक्षा देकर, राजनीतिक चेतना पैदा करना -** राजनीति दल जनता की उदासीनता दूर करके उसमें सरकार के प्रतिरुचि पैदा करते हैं। इसके लिए जनता के बीच में जाते हैं और आम जनता का ध्यान राष्ट्रीय समस्याओं की तरफ खींचते हैं।सरकार की नीति पर जन-सहमति प्राप्त करने के लिए वे नीति पर अपने तर्क रखते हैं। इसके लिए वे जनसम्पर्क के साधनोंका भी प्रयोग करते हैं। चुनावी प्रचार के द्वारा राजनीतिक दल आम जनता को भी राजनीति में जोड़ लेते हैं। इससे लोगोंमें देश की समस्याओं के प्रति चिन्ता उत्पन्न होती है और राजनीतिक चेतना का विकास होता है।

- **जनता और सरकार के बीच कड़ी का कार्य करना -**राजनीतिक दल जनता और सरकार को जोड़ते हैं। सत्तारूढ़ दल जनता को अपने पक्ष में करने के लिए अपनीनीतियों कीप्रशंसा करता है और जनता को सरकार का सहयोग करने की अपील करता है। अपनीनीतियों को जनता तक पहुंचाने केसाथ-साथ वे जनता की समस्याओं को भी सरकार तक पहुंचाते हैं और दूर करवाने के प्रयास भी करते हैं। एकात्मक सरकारमें केन्द्रीय सरकार को प्रादेशिक समस्याओं से राजनीतिक दल ही परिचित कराते हैं। इस तरह राजनीतिक दल ही जनताऔर सरकार को जोड़ते हैं।
- **राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करना -**लावेल का कहना है कि राजनीतिकदल विचारों के व्यापारी हैं। एक दल में अनेक धर्मों, भाषाओं, वर्गों, जातियों के लोग होते हैं। साथ रहकर कार्य करने से उनमेंआपसी एकता बढ़ती है और पारस्परिक द्वेष की भावना का अन्त होता है। जो दल आर्थिक और राजनीतिक आधार पर बनेहोते हैं उनमें राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करने की शक्ति बहुत ज्यादा होती है। समान राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं कोलेकर आन्दोलन करने से राष्ट्रीय एकता मजबूत होती है।
- **सामाजिक और आर्थिक सुधार -** राजनीतिक दल राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथसामाजिक व आर्थिक समस्याओं के सुधार के प्रयास भी करते हैं। राजनीतिक दलों का ध्येय आधुनिकीकरण को क्रियान्वितकरना होता है। इसके लिए वे परम्परागत मूल्यों को छोड़ने का प्रयास करना चाहते हैं और प्रचलित गलत रीति-रिवाजों कोसमाप्त करना चाहते हैं। भारत में छुआछूत के विरुद्ध कांग्रेस ने ही जोरदार आवाज उठाई थी। जाति-प्रथा, जमींदारी प्रथा,दहेज प्रथा, नारी शिक्षा, नारी की स्वतन्त्रता आदि समस्याओं पर राजनीतिक दलों ने ही आन्दोलन चलाए हैं।
- **कार्यपालिका तथा विधायिका में सहयोग पैदा करना -** गिलक्राइस्ट का कहना है कि "दलीय-व्यवस्था ने ही अमेरिकन संविधान की जटिलता को तोड़ा है।" इसका तात्पर्य यहहै कि अमेरिका में शक्ति पृथक्करण के कारण कार्यपालिका और विधायिका स्वतन्त्र शक्तियों की स्वामी होने के कारण अपनेअपने क्षेत्रों में सर्वोच्च हैं। इससे प्रशासनिक एकरूपता का ह्रास होता है। अमेरिका में कार्यपालिका और विधायिका को साथ चलकर कार्य करने के लिए राजनीतिक दलों ने ही तैयार किया है। दलों की समन्वयकारी भूमिका सरकार की सफलता के लिए आवश्यक मानी जाती है। कार्यपालिका और

विधायिका का आपसी सहयोग ही अच्छे शासन का आधार है। संसदीयसरकार में भी एक दल का विधायिका व मन्त्रिमण्डल में बहुमत रहने पर सरकार ठीक कार्य करती रहती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दल-व्यवस्था के कारण ही नागरिकों में राजनीतिक चेतना का विकास होता है, शासन मेंलोचशीलता आती है, अच्छे कानूनों का निर्माण होता है, जनता की इच्छा का संचालन होता है, राष्ट्रीय एकता में वृद्धि होती है,सामाजिक-आर्थिक विकास होता है, सभी वर्गों को शासन में प्रतिनिधित्व मिलता है और निरंकुश होने में बची रहती है। सार रूपमें यह कहना गलत नहीं होगा कि दल-पद्धति ही सच्चे लोकतन्त्रीय शासन का मेरुदण्ड है।

7.3.5.2.दल दल प्रणाली के दोष (Demerits of the party system)-

दल प्रणाली समाज को विभिन्न वर्गों व गुटों में बांटकर राष्ट्रीय एकता को भंग करती है। इससे देशभक्ति की भावना कम होनेलगती है।दल प्रणाली लोगों को दलीय-स्वार्थों से बांधकर राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुंचाती है।कठोर दलीय अनुशासन व्यक्ति की स्वतन्त्रता को कुचल देता है।राजनीतिक दल भ्रष्टाचार के वाहक हैं। बहुमत हासिल करके सरकार बनाने के चक्कर में जनता को तरह तरह के प्रलोभनदेकर वोट खरीदे जाते हैं। इससे समाज में नैतिकता का पतन होता है।बहुदलीय प्रणाली के कारण राजनीतिक अस्थिरता पैदा होती है और संकटकाल में भी सरकार दृढ़ निर्णय नहीं ले पाती, क्योंकिविरोधी दल प्रायः टकराव की स्थिति में ही रहते हैं।राजनीतिक दल समाज में साम्प्रदायिकता का जहर फैलाते हैं।राजनीतिक दल देश व समाज का संकीर्ण क्षेत्रीय विभाजन कर देते हैं। क्षेत्रवाद ही राष्ट्रीय एकता के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा होता है। विरोधी दल आलोचना में ही अधिक समय नष्ट करते हैं, इससे जनहित की हानि होती है। कई बार तो वे जनता को इस कद्रगुमराह कर देते हैं कि उससे समाज के विघटन की स्थिति पैदा हो जाती है।चुनाव जीतने के बाद राजनीतिक दल नागरिक हितों की बलि दे देते हैं। उनकी सर्वोच्च प्राथमिकता तो अपने सदस्यों को खुशकरने की ही होती है। दल-प्रणाली में आम जनता की बजाय पूंजीपति वर्ग का ही अधिक फायदा होता है। सरकार पूंजीपति वर्ग की कठपुतली कीतरह ही कार्य करती है। दल-पद्धति योग्य व ईमानदार व्यक्तियों को शासन से दूर कर देती है। बहुदलीय व्यवस्था में तो प्रायः धूर्त व्यक्ति ही सत्तामें पहुंचते हैं। इससे समाज में अवसरवादिता, लालचीपन, बेईमानी, घूसखोरी जैसे अनैतिक साधनों को अधिक शक्ति मिलने लगती है, क्योंकिराजनीतिक दल अनैतिकता के सबसे बड़े पोषक होते हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि दल-प्रणाली में अनेक दोष हैं, लेकिन फिर भी दलों को समाज से समाप्त करनान तो सम्भव है और न ही उचित। आज सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का ताना-बाना दल-प्रणाली पर ही आधारित है। दलों के बिनान तो देश का भला हो सकता है और न समाज का। आज आवश्यकता इस बात की है कि दलीय व्यवस्था के दोषों को दूर कियाजाए। इसके लिए जनता का जागरूक होना और सरकार का दल-व्यवस्था के दोषों को हटाने के प्रति वचनबद्ध होना जरूरी है।आज दल हमारे समाज का आवश्यक अंग बन चुके हैं। यह बात भी सही है कि सभी देशों में दल प्रणाली दोषयुक्त नहीं है। अमेरिका तथाब्रिटेन में दल-व्यवस्था का आधार काफी मजबूत है, क्योंकि वहां की जनता और सरकार इसको सफल बनाने के लिए वचनबद्ध हैं। भारतमें दलीय-प्रणाली ने समाज को जो हानि पहुंचायी है, उसको देखकर जनता को राजनीतिक दलों के लिए देश-हित एक तुच्छ वस्तु है।आज दलीय-व्यवस्था की दोषपूर्ण व्यवस्था पर देश-हित में प्रतिबन्ध लगाना अपरिहार्य है। दल-विहीन प्रजातन्त्र की धारणा न तो सम्भव है और न ही उचित। दल समाज का अभिन्न अंग है, इसलिए इसके दोषों को दूर करके इसे समाज में बनाए रखना ही उचित है।

7.4 पाठ का आगे का मुख्य भाग (Further Main Body of the Text)

7.4.1 दबाव समूह (Pressure Groups)

राजनीतिक दल व्यक्ति और शासन के मध्य सम्पर्क सूत्र के रूप में दलों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । राजनीतिक दल एक ओर यदि जन भावनाओं एवं आवश्कताओं को शासन वर्ग तक पहुँचाते है तो दूसरी ओर वे शासक वर्ग की नीतियों , कार्यक्रमों तथा इरादों को जनता के समक्ष रखते हैं । यह कार्य वे सदा विशुद्ध निरपेक्ष भाव में नहीं करते तथा इस कार्य को करते समय वे अपने दलगत हित को भी ध्यान में रखते हैं अतः शासन और व्यक्ति के पारस्परिक सम्पर्क के लिए माध्यम के रूप में विभिन्न समूह भी राजीतिक दलों की ही तरह व्यक्ति और राज्य तथा शासन के बीच के महत्वपूर्ण सूत्र होते हैं । प्रमुख दलों का आकार अत्यन्त बड़ा होने के कारण कतिपय विद्वानों की मान्यता तो अब यह हो गई है कि दलों के माध्यम से व्यक्ति और शासन का सीधा सम्पर्क प्रायः नहीं होता है तथा न तो व्यक्ति ही निर्णय लेने वाली शक्तियों के सम्पर्क कर पाता है और न शासन ही व्यक्ति के हितों के विषय में सोच पाता है । अतः शासन और व्यक्ति के पारस्परिक सम्पर्क के लिए माध्यम के रूप में ऐसे समूहों का प्रयोग किया जाना अति आवश्यक है इस प्रकार के संगठनों को जो

अपने - अपने संगठन की शक्ति के द्वारा सार्वजनिक नीतियों तथा शासकीय निर्णयों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते है उन्हें हितकर समूह व दबाव समूह कहा जाता है ।

7.4.1.1. दबाव समूहों का अर्थ, परिभाषा (Meaning and definition of pressure groups)

दबाव समूहों का अर्थ- साधारण शब्दों में दबाव समूह लोगों के उस संगठित समूह को कहा जाता है जो अपने सदस्यों के हितों की सिद्धि के लिए सरकार की निर्णयकारिता को प्रभावित करता है। यद्यपि दबाव समूह के लिए कुछ विद्वान हित समूह का भी प्रयोग करते हैं, लेकिन बिना राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित किए कोई भी हित समूह दबाव नहीं कहला सकता। हित समूह में प्रभावकारिता की शक्ति आ जाने पर ही वह दबाव समूह का रूप लेता है। यही प्रभावकारिता समूह के हितों को प्राप्त करने में मददगार होती है। दबाव गुट समूह को कई विद्वानों ने इस प्रकार से परिभाषित किया है:-

- **हेनरी ए0 टर्नर के अनुसार-**"दबाव समूह गैर-राजनीतिक संगठन है जो सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने का प्रयास करता है।
- **मैकाइवर के अनुसार-**"दबाव समूह ऐसे संगठित या असंगठित व्यक्तियों का संकलन है जो दबाव के दांव-पेचों का प्रयोग करता है।
- **ओडिगार्ड के अनुसार-**"दबाव समूह ऐसे लोगों का औपचारिक संगठन है जिसके एक अथवा अधिक सामान्य उद्देश्य एवं स्वार्थ हों और घटनाक्रम को, विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण और शासन को इसलिए प्रभावित करने का प्रयास करे कि उनके हितों की रक्षा और वृद्धि हो सके।"
- **मायरन वीनर के अनुसार-**"हित अथवा दबाव समूह ऐसा ऐच्छिक समूह है जो प्रशासकीय ढांचे से बाहर रहकर सरकारी कर्मचारियों के नामांकन अथवा नियुक्ति, सार्वजनिक नीति के निर्माण, उनके प्रशासन और निर्वाचन को प्रभावित करने का प्रयास करता है।"
- **वी0ओ0 की के अनुसार-**"दबाव समूह सरकारी नीति को प्रभावित करने के लिए बनाए जाने वाले संगठन है।"
- **डेल के अनुसार-**"दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया के भाग होते हैं और सरकारी नीति की दिशा निर्धारित करने या बदलने का प्रयास करते हैं, लेकिन स्वयं सरकार नहीं बनाना चाहते।"

- **हिचनर तथा हर्वोल्ड के अनुसार**-"दबाव समूह सामान्य उद्देश्यों वाला कोई ऐसा व्यक्तियों का समूह है जो सार्वजनिक नीति को प्रभावित करके राजनीतिक गतिविधियों द्वारा अपने उद्देश्य पूरा करना चाहता है।"
- **बी0 के0 गोखले के अनुसार**-"दबाव समूह वे निजी समुदाय हैं जो सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करके अपने हितों को बनाए रखना चाहते हैं।"
- **एस0 ई0 फाइनर के अनुसार**-"दबाव समूह मुख्य रूप में स्वतन्त्रा और राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ संस्थाएं होती हैं जो सत्तारूढ़ सरकार के राजनीतिक स्वरूप की ओर ध्यान दिए बिना ही राजनीतिक दलों और नौकरशाही के साथ सौदा करती हैं।"
- **एच0 जिगलर के अनुसार**-"दबाव समूह एक ऐसा संगठित समूह है, जो अपने सदस्य को औपचारिक रूप से सरकारी पदों पर नियुक्त किए बिना ही सरकारी निर्णयों को प्रभावित करने की चेष्टा करता है।"
- **सी0एच0 ढिल्लों के अनुसार**-"हित समूह ऐसे लोगों का समूह है जिनके उद्देश्य समान होते हैं। जब हित समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार से कुछ चाहने लगते हैं तो, तब वे दबाव समूह कहलाते हैं।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दबाव समूह और हित समूह में अन्तर है। अपने प्राथमिक स्वरूप में प्रत्येक दबाव समूह एक हित समूह ही होता है। जब वह अपने संगठित रूप में सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में सफल हो जाता है तो वह दबाव समूह की श्रेणी में आ जाता है। अनेक विद्वानों ने दबाव समूह व हित समूह का समान अर्थ में प्रयोग किया है। ऐसा करना बिल्कुल गलत है। समाज में हित समूह तो अनेक हो सकते हैं, लेकिन दबाव समूह की श्रेणी में कम ही आ पाते हैं। चूंकि हित समूह भी सरकार

की नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास करते रहते हैं, इसी कारण उनको प्रायः दबाव समूह ही समझ लिया जाता है।

7.4.2.हित समूह व दबाव समूह में अन्तर (Difference between interest group and pressure group)

यद्यपि कुछ विद्वान हित समूह और दबाव समूह में कोई अन्तर नहीं मानते, लेकिन दोनों में आधारभूत समानताएं होने के बावजूद भी अन्तर है। जब कोई समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीति को प्रभावित करने को तैयार हो जाता है तो उसे हित समूह कहा जाता हैं जब कोई हित समूह अत्यधिक सक्रिय होकर अन्य हित समूहों को पीछे धकेलकर अपने हितों की सिद्धि के लिए सरकार पर अपने दबाव बढ़ा लेता है तो उसे दबाव समूह की संज्ञा दी जाती है। कार्टर और हर्ज ने दबाव समूह और हित समूह में अन्तर बताते हुए लिखा है-"विभिन्न आर्थिक व्यावसायिक, धार्मिक, नैतिक और अन्य समूहों से परिपूर्ण आधुनिक बहुलवादी समाज के सामने अनिवार्य रूप से एक बड़ी समस्या यही है कि इन विभिन्न हितों तथा शासन और राजनीति के बीच में सम्बन्ध कैसे हों एक स्वतन्त्र समाज में हित समूहों को स्वतन्त्र रूप में संगठित होने की अनुमति होती है और जब ये समूह सरकारी तन्त्र और प्रक्रिया पर प्रभाव डालने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार कानूनों, नियमों और प्रशासकीय कार्यों को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते हैं तो वे हित-समूह, दबाव समूहों में बदलकर सरकार पर दबाव डालने वाले हो जाते हैं।" दबाव समूह और हित समूह में प्रमुख अन्तर हैं:-

- हित समूह अपनीहित सुरक्षा के लिए अनुनयनी तरीके काम में लाते हैं। अर्थात् वे सरकार से प्रार्थना करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह अपने हितों की पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव के तरीके प्रयोग करते हैं।
- हित समूह राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रखते, जबकि दबाव समूह राजनीतिक गतिविधियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं और सदैव राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं।
- हित समूहों का सम्बन्ध सामाजिक संरचना व प्रक्रिया से होता है। उनका लक्ष्य तो सदैव सामाजिक गतिशीलता है। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करते रहते हैं, क्योंकि यही गुण उन्हें हित समूहों से अलग करता है।
- समाज में हित समूह तो अनेक होते हैं, लेकिन दबाव समूह संख्या में कम होते हैं, क्योंकि सभी हित समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने में सक्षम नहीं होते।
- हित समूहों का सम्बन्ध सामाजिक गतिशीलता से है, जबकि दबाव समूहों का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने से है।
- हित समूह अपने लक्ष्य में कम सफल रहते हैं, क्योंकि उनके पास प्रभावशीलता का गुण नहीं होता। इसके विपरीत दबाव समूह प्रभावशीलता के गुण के कारण अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हित समूह और दबाव समूह में कुछ अन्तर है, इसलिए दोनों को एक मानना भारी भूल है। लेकिन फिर भी राजनीतिक अध्ययन में इन दोनों का समानार्थी प्रयोग ही होता आया है। आज तक किसी ने भी हित समूह और दबाव समूह को सर्वथा अलग करके अध्ययन करने की चेष्टा नहीं की, इसी कारण इनके समानार्थी प्रयोग की विसंगति जारी है।

7.4.3.दबाव समूह व राजनीतिक दल में अन्तर (Difference between pressure group and political party)

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह और राजनीतिक दल दोनों ही विद्यमान होते हैं। दोनों ही राजनीतिक गतिशीलता में अपनीअहम् भूमिका निभाते हैं। दोनों आपस में भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रखते हैं। दबाव समूह राजनीतिक दलों के साथ सहयोग करते हैं और राजनीतिक दल दबाव समूहों के। इसके बावजूद भी दोनों में अन्तर हैं:-

- राजनीतिक दल समुदाय के बहुत सारे वर्गों के बहुत सारे हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, यहां तक कि वे पूरे राष्ट्र के हितों की चिन्ता करते हैं। इसके विपरीत हित समूहों या दबाव समूहों के उद्देश्य सीमित होते हैं और वे विशेष समूह के हितों की ही देखरेख करते हैं।
- राजनीतिक दल अपने विशिष्ट हितों को प्राप्त करने के लिए सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, जबकि दबाव समूह सत्ताप्राप्त करने या सरकार का निर्माण करने की बजाय सरकार को प्रभावित करने तक ही सीमित रहते हैं।
- राजनीतिक दलों के संगठन का आधार व्यापक होता है, जबकि दबाव समूह का संगठन सीमित होता है। उसके सदस्यों की संख्या राजनीतिक दल की तुलना में कम होती है।
- राजनीतिक दलों की स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा होती है, जबकि दबाव समूह की कोई राजनीतिक विचारधारा या कार्यक्रम नहीं होता। उसका सम्बन्ध तो हितों की प्राप्ति तक ही सीमित रहता है।

- राजनीतिक दल चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़े करते हैं और उनको सफलता दिलाने के लिए हर सम्भव प्रयास करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़े नहीं करते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों के प्रत्याशियों की ही मदद करते हैं।
- राजनीतिक दल एक राजनीतिक संगठन है, जबकि दबाव समूह गैर-राजनीतिक संगठन है।
- राजनीतिक दलों की सदस्यता अनन्य होती है अर्थात् एक व्यक्ति एक ही समय में केवल एक ही राजनीतिक दल का सदस्य बन सकता है, जबकि एक व्यक्ति एक ही समय में अनेक हित या दबाव समूहों का सदस्य हो सकता है।
- राजनीतिक दल सरकार के अन्दर तथा बाहर दोनों जगह कार्य करते हैं, जबकि दबाव समूह सरकार के बाहर ही कार्य करते हैं।
- राजनीतिक दल दीर्घकालिक लक्ष्य रखते हैं जबकि दबाव समूहों के लक्ष्य अल्पकालिक होते हैं। इसी कारण राजनीतिक दलों की तुलना में उनकी प्रकृति कम स्थायी है।
- राजनीतिक दलों का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है, जबकि दबाव समूहों का सम्बन्ध मानव जीवन के किसी विशेष पहलु से होता है। इस तरह राजनीतिक दलों की तुलना में दबाव समूहों का कार्यक्षेत्र संकुचित व विशिष्ट होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि दबाव समूह और राजनीतिक दलों में काफी अन्तर है। लेकिन फिर भी राजनीतिक समाज में दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में समान भागीदार हैं। दबाव समूहों और राजनीतिक दलों में स्पष्ट अन्तर तो विकसित देशों में ही देखने को मिलता है, विकासशील देशों में नहीं, क्योंकि विकासशील देशों में तो दबाव समूह आंतरिक संगठन की दृष्टि से कमजोर है।

7.4.4.दबाव समूहों की विशेषताएं (Characteristics of pressure groups)

- दबाव समूह औपचारिक रूप से संगठित व्यक्ति समूह होते हैं।
- दबाव समूह के निर्माण का आधार स्वहित होता है और इसी की प्राप्ति करना इसका ध्येय भी होता है।
- दबाव समूह सरकार में भाग नहीं लेते, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से सरकार की नीतियों को प्रचारित करते हैं।
- दबाव समूह सदस्य संख्या, उद्देश्य, चुनाव आदि की दृष्टि से राजनीतिक दल से अलग होता है।

- दबाव समूहों का कार्यक्षेत्र राजनीतिक दलों की तुलना में सीमित होता है।
- दबाव समूह सरकार पर अपना प्रभाव राजनीतिक दलों के माध्यम से ही डालते हैं।
- दबाव समूह सभी प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं में पाए जाते हैं। इसी कारण इनकी प्रकृति सर्वव्यापी होती है।
- दबाव समूहों की सदस्यता ऐच्छिक होती है। एक व्यक्ति एक समय में अनेक दबाव समूहों का सदस्य बन सकता है।
- दबाव समूहों का कार्यकाल अनिश्चित होता है।
- दबाव समूहों गैर-राजनीतिक संगठन होते हैं।

7.4.5.दबाव समूहों के प्रकार (Types of pressure groups)

आज विश्व के सभी देशों में दबाव समूहों की संख्या इतनी अधिक है कि उनका वर्गीकरण करना कठिन हो गया है। इनमें से आकार,उद्देश्य, प्रकृति की दृष्टि से सभी दबाव समूह अलग-अलग भागों में बांटे जा सकते हैं। फ्रेडरिक, राबर्टस सी0 बोन, ब्लौण्डल, ऑमण्ड आदि विद्वानों ने दबाव समूहों को वर्गीकृत किया हैः-

ब्लौण्डल का वर्गीकरण-ब्लौण्डल ने दबाव समूहों के निर्माण के प्रेरक तत्वों के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा है। यह वर्गीकरण (1) साम्प्रदायिक दबाव समूह (2) साहचर्य दबाव समूहों के रूप में है। ब्लौण्डल का कहना है कि साम्प्रदायिक दबाव समूह सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर बनते हैं। इनके निर्माण में परिवार, प्रगति, धर्म, वर्ग आदि तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऐसे समूहों की सदस्यता जन्म से ही प्राप्त होती है। ब्लौण्डल ने सामप्रदायिक दबाव समूहों को भी दो भागों 1 प्रथागत तथा संस्थागत दबाव समूहों में बांटी है। प्रथागत दबाव समूह प्रथाओं, रीति-रिवाजों व रुढ़ियों पर आधारित होते हैं। भारत में ऐसे ही दबाव समूह हैं। जब एक धर्म व जाति के लोग औपचारिक रूप से संगठित होकर संस्था का निर्माण कर लेते हैं तो उससे संस्थागत दबाव समूहों का जन्म होता है। भारत में जाति व धर्म के आधार पर अनेक दबाव समूह सरकार की नीति को प्रभावित करते हैं। ब्लौण्डल ने दबाव समूह का दूसरा प्रकार साहचर्य दबाव समूह बताया है। इस प्रकार के दबाव समूहों का लक्ष्य विशिष्ट होता है। औद्योगिक विकास के साथ-साथ ऐसे दबाव समूहों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इन समूहों का विशिष्ट लक्ष्य साधन के रूप में राजनीतिक व्यवस्था में इनकी मांगों को प्रवेश कराने में समर्थ होता है। यह दबाव समूह साम्प्रदायिक दबाव समूहों से सदस्यता की प्रेरणा के

दृष्टिकोण से अलग होता है। ये दबाव समूह भी साम्प्रदायिक दबाव समूहों की तरह 1 संरक्षाणात्मक व उत्थानात्मक दबाव समूह, दो तरह के होते हैं। संरक्षणात्मक दबाव समूह अपने सदस्यों के सामान्य हितों की रक्षा करता है, जबकि उत्थानात्मक दबाव समूह विशिष्ट लक्ष्यों के साथ जन्म लेता है। गौर संरक्षण संघ, नारी स्वतन्त्रता संघ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। श्रमिक कल्याण संघ संरक्षात्मक दबाव समूह का, हरिजन सेवक संघ प्रथागत का तथा सैनिक-कल्याण परिषद संस्थात्मक दबाव समूह का प्रमुख उदाहरण है।

ऑमण्ड का वर्गीकरण- ऑमण्ड ने संरचना और हित संचारण के आधार पर दबाव समूहों को चार भागों- (1) संस्थात्मक (2) प्रदर्शनात्मक (3) असमुदायात्मक (4) समुदायात्मक में बांटा है। ऑमण्ड ने संस्थागत दबाव समूहों में उनको लिया है जो किसी राजनीतिक दल या अन्य समान हितों वाले वर्गों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत में संसद, नौकरशाही तथा राजनीतिक दलों में ऐसे ही समूह पाए जाते हैं। इसका उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक हितों की पूर्ति करना होता है। ये दबाव समूह विकसित देशों में अधिक पाए जाते हैं। मजबूत संगठन के स्वामी होने के कारण ये हितों का स्पष्टीकरण करने में अधिक सफल रहते हैं। दबाव समूहों का दूसरा प्रकार प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों का है जो भीड़, जलूस, दंगों, धरनों, हड़तालों आदि के रूप में अचानक ही राजनीतिक व्यवस्था में प्रवेश कर जाते हैं। इन्हें चमत्कारिक दबाव समूह भी कहा जाता है। ये दबाव समूह अस्त-व्यस्त प्रकृति के होते हैं। ये शासनतन्त्र को भ्रमग्रस्त करके अपने हितों की प्राप्ति करने में सफल व असफल दोनों हो सकते हैं। भारत, फ्रांस, इटली आदि देशों में इनका बहुत प्रभाव है। तीसरा वर्ग असमुदायात्मक या असाहचर्य दबाव समूहों का है। इनका जन्म, धर्म, रक्त सम्बन्ध, वंशानुगत या हित-संचार आदि तत्वों के आधार पर होता है। ये दबाव समूह धार्मिक नेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों आदि द्वारा संगठित व असंगठित होते रहते हैं। इनकी प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये हितों के साधन का काम निरन्तर न करके समय-समय पर ही करते हैं। आधुनिक युग में इनका महत्व सीमित है। दबाव समूहों की चौथी प्रकार, समुदायात्मक या साहचर्य दबाव समूहों का है। इस प्रकार के समूह विशेष व्यक्तियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए औपचारिक रूप से संगठित होते हैं। श्रमिक संघ, व्यापारिक संघ इस प्रकार के ही दबाव समूह हैं। इस प्रकार के दबाव समूह नियमों पर आधारित होते हैं और अपने हितों की प्राप्ति के लिए विधि-सम्मत प्रक्रिया अपनाते हैं। भारत व अमेरिका में इस प्रकार के काफी दबाव समूह हैं।

राबर्ट सी0 बोन का वर्गीकरण-राबर्ट सी0 बोन ने दबाव समूहों को प्रकृति व उद्देश्यों की दृष्टि से दो भागों (प) परिस्थिति-जन्य दबाव समूह (पप) अभिवृति जन्य दबाव समूह में बांटा है। परिस्थिति जन्य

दबाव समूहों का उद्देश्य अपने सदस्यों की वर्तमान आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं को सुधारना होता है। इनकी प्रकृति विशिष्ट होती है और यें अपने सदस्यों के हितों को साधने के लिए वैधानिक प्रक्रिया का ही उपयोग करते हैं। इनका ध्येय दीर्घकालीन हितों को प्राप्त करना होता है। दूसरा वर्ग अभिवृति जन्य समूहों का है जो कुछ मूल्यों पर आधारित होते हैं। ये समूह परिस्थिति जन्य समूहों से अलग होते हैं। इनका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन को प्राप्त करना है। इसके लिए ये शांतिपूर्ण तथा क्रांतिकारी दोनों साधनों का प्रयोग करते हैं। ये अपने लक्ष्यों को तेज गति की तकनीकों का प्रयोग करके अल्पकाल में ही प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं।

कार्ल फ्रेडरिक का वर्गीकरण- कार्ल फ्रेडरिक ने दबाव समूहों को दो श्रेणियों 1 सामान्य और विशिष्ट दबाव समूहों में बांटा है। जो दबाव समूह सामान्य लक्ष्यों को लेकर चलते हैं, वे सामान्य दबाव समूह और जिनके हित विशिष्ट प्रकार के होते हैं, वे विशिष्ट दबाव समूह कहलाते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि राबर्ट सी0 बोन का वर्गीकरण सामान्य होते हुए भी दबाव समूहों की प्रकृति,संगठन, उद्देश्यों तथा कार्यविधि को स्पष्ट करने वाला महत्वपूर्ण वर्गीकरण है। यह वर्गीकरण अन्य की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट तथा सुसंगत है। यह वर्गीकरण अपने आप में कुछ विशेष प्रकार के गुण लिए हुए है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि ऑमण्ड, फ्रेडरिक तथा ब्लौण्डल के वर्गीकरण का कोई महत्व नहीं है। ये सभी वर्गीकरण कुछ न कुछ महत्व अवश्य रखते है

भारत मे दबाव समूह निम्न प्रकार के है -

- व्यवसाय समूह - जैसे फिक्की , एसोचेम ,एमओ इत्यादी
- व्यापार संघ - जैसे AITUC , INTUC , HMS , CITU इत्यादि
- खेतिहर समूह - जैसे भारतीय किसान यूनियन , ऑल इंडिया किसान सभा , भारतीय किसान सभा इत्यादि
- छात्र संगठन - जैसे ABVP , NSUI , AISA इत्यादि

- पेशेवर समितियां - जैसे इंडियन मेडिकल एसोसिएशन , बार कॉंसिल ऑफ इंडिया इत्यादि
- धार्मिक संगठन - जैसे आरएसएस , विहिप , जमात - ए - इस्लामी , शिरोमणि अकाली दल इत्यादि
- जातीय समूह - जैसे हरिजन सेवक संघ , कायस्थ समूह , ब्राह्मण सभा , राजपूत समूह इत्यादि
- भाषागत समूह - तमिल संघ , नागरी प्रचारिणी सभा , हिंदी साहित्य सम्मेलन इत्यादि
- आदिवासी संघठन समूह - NSSCN , PLA , JMM , TNU इत्यादि
- विचारधारा समूह - जैसे अम्बेडकवादी ,गांधीवादी, पर्यावरणवादी इत्यादि

7.4.6.दबाव समूहों के कार्य(Functions of pressure groups)

दबाव समूह अपने हितों को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग-अलग ढंग से कार्य करने के तरीके अपनाते हैं। प्रत्येक दबाव समूह का कार्यात्मक व्यवहार भी अलग-अलग होता है, इसी कारण उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले हित-साधन भी अलग-अलग प्रकार के हो जाते हैं। अपने हितों की प्राप्ति के लिए दबाव समूहों द्वारा इन साधन या तकनीकें काम में लाई जाती हैं:-

- **लॉबिंग-** सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए हित व दबाव समूहों के सदस्य विधानमण्डल केविधायकों से सांठ-गांठ करते हैं। यही सांठ-गांठ विधायकों को दबाव समूहों के हित में नीति बनाने को बाध्य कर देती है। वे अपने प्रबल समर्थक विधायिकों द्वारा विधानमण्डल में अपने हितों की मांग रखते हैं और मजबूत लॉबी के कारण प्रायः सफल भी हो जाते हैं। अपनीलॉबी मजबूत करने के लिए वे विधायकों को रिश्वत देने से भी नहीं चूकते। अमेरिका में इस प्रकार की मजबूत लॉबी वाले हजारों दबाव समूह हैं जो सरकार द्वारा रजिस्टर्ड भी हैं। वहां पर कानून निर्माण मे इस लॉबिइंगब प्रक्रिया का व्यापक प्रभाव है। भारत में भी इस प्रकार की लॉबिइंग वाले कुछ औद्योगिक घराने हैं जो नीति-निर्माण की प्रक्रिया को सीधे संसद में ही प्रभावित करते हैं।
- **जनमत को प्रभावित करना-** दबाव समूह अपना पक्ष मजबूत करने के लिए जनता से सीधा सम्पर्क बनाए रखते हैं। अपनीवाक्पटुता के बल पर इनके सदस्य जनमानस में अपनीसमस्याओं का प्रचार करते हैं ताकि जनता की सहानुभूति भी प्राप्त की जा सके। इसके लिए वे समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो,

डी0वी0, इन्टरनेट, सार्वजनिक सभाएं तथा प्रचार आदि के साधन अपनाते हैं। ये जानते हैं कि जनमत यदि उनके पक्ष में हो गया तो उनके हितों को प्राप्त करने में कोई बाधा नहीं आएगी। लोकतन्त्र में तो जनमत ही एक ऐसा अस्त्र है जो सरकार की नीति को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए ये प्रतिवर्ष या मासिक रूप में अपनीविशेष रिपोर्ट, पुस्तक, पुस्तिकाएं आदि भी प्रकाशित करवाते रहते हैं।

- **चुनाव**-यद्यपि कोई भी दबाव समूह चुनावों में न तो प्रत्यक्ष रूप से अपने उम्मीदवार खड़े करता है और न ही सरकार में शामिल होने की लालसा रखता है। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक दबाव समूह चुनावी प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास करता है। सभी दबाव समूह चुनावों के समय अपने सहयोगी राजनीतिक दल को आर्थिक मदद भी देते हैं और चुनाव प्रचार में सहयोगी दलों के प्रत्याशियों के पक्ष में प्रचार भी करते हैं। उनकी सदैव यही इच्छा रहती है कि उनके समर्थक दल ही संसद में जाकर सरकार बनाएं ताकि उनके हितों का पूरा सम्मान हो सके। उनका चुनावी कार्यक्रम पर्दे के पीछे से ही चलता है। उन्हें पता होता है कि यदि किसी दल या उम्मीदवार का खुला समर्थन किया गया तो कालान्तर में उस दल का सरकार में प्रभाव समाप्त होते ही उनको ही अधिक हानि होगी। कई बार तो वे टिकट वितरण में अहम् भूमिका निभाते हैं। उनकी यही इच्छा रहती है कि उनके चहेतों को ही टिकट मिले और वे चुनाव जीतकर सरकार बनाएं। कई बार उनकी यह इच्छा पूर्ण हो जाती है, लेकिन कई बार नहीं। लेकिन दबाव समूह हार नहीं मानते। वे अगले चुनावों के लिए सांठ-गांठ कर लेते है। इस तरह यह लुका-छुपी का खेल खेलते रहते हैं और अपने हितों को प्राप्त करने का प्रयास जारी रखते हैं।
- **विधायिका को प्रभावित करना-** दबाव समूह चुनावों में राजनीतिक दलों की सहायता इसी कारण करते हैं ताकि विधायिका में उनके हितों का ख्याल रखने वाले पहुंच जाएं। वे संसदीय दल के व्यक्तियों के नामजद होने से सरकार में पहुंचने तक उनका पूरा ख्याल रखते हैं। विधायिका को प्रभावित करने के लिए तरीके प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में अलग अलग होते हैं। ब्रिटेन जैसे संसदीय शासन प्रणाली वाले देश में ये अनुशासित ढंग से कार्य करते हैं। लेकिन अमेरिका में वे शक्तियों के पृथक्करण के कारण विधायिका का पूरा फायदा उठाने में सफल रहते हैं। वहां पर दल के सचेतकों द्वारा विधायकों पर कठोर नियन्त्रण न होने के कारण वे रिश्वत आदि साधनों द्वारा अपना काम आसानी से निकाल लेते हैं। भारत, इटली तथा

फ्रांस में ये समूह संसद से बाहर रहकर ही सक्रिय रहते हैं। वे अपने हितों को प्राप्त करने के लिए विधायिका को प्रभावित करने के चक्कर में कई बार तो असंवैधानिक तरीकों का भी प्रयोग कर लेते हैं। ये दबाव समूह विधायिका की समितियों के आस-पास ही अधिक केन्द्रित रहते हैं। कई देशों में तो विधायी समितियों पर दबाव समूहों का पूरा प्रभाव है।इस प्रकार दबाव समूह अपने हितों को प्राप्त करने के लिए विधायिका को भी प्रभावित करने का पूरा प्रयास करते रहते हैं।

- **कार्यपालिका पर दबाव-** अनेक देशों में दबाव समूह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यपालिका तक हो भी प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। अध्यक्षात्मक देशों में ये राष्ट्रपति के चुनावों में पूरा समर्थन करते हैं और अपना पैसा पानी की तरह बहा देते हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनावों में दबाव समूहों की अहम् सक्रियता रहती है। संसदीय सरकार वाले देशों में भी ये विधायिका के माध्यम से कार्यपालिका को प्रभावित करने के प्रयास करते हैं। इन देशों में उत्तरदायी सरकार होने के कारण चुने हुए विधायिकों को स्थगन प्रस्तावों, ध्यानाकर्षण प्रस्तावों, निन्दा प्रस्तावों आदि द्वारा मन्त्रियों को प्रभावित करने पर जोर डालते हैं और यहां तक मजबूर कर देते हैं कि उनके हितों को बढ़ावा देने वाली नीति को ही क्रियान्वित करें। यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति किसी दबाव समूह की कृपा से ही विधायक बना हो, तो उसकी निष्ठा अवश्य ही उस दबाव समूह के प्रति रहेगी। कार्यपालिका की समितियों पर भी ये अपना नियन्त्रण रखने का प्रयास करते हैं। अपने हितों के लिए दबाव समूह कार्यपालिका से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखने का प्रयास करते रहते हैं। यदि शांतिपूर्ण ढंग से दबाव समूह कार्यपालिका पर नियन्त्रण व दबाव न बना सकें तो ये अहिंसात्मक तरीकों का प्रयोग करके सरकार पर दबाव बनाने से भी नहीं चूकते। भारत में टाटा समूह, बिड़ला समूह, डालमिया समूह और धीरुभाई अम्बानी समूह का कार्यपालिका पर पूरा प्रभाव है। औद्योगिक नीति के निर्माण में इन औद्योगिक घरानों के हितों का ख्याल अवश्य रखा जाता है।
- **नौकरशाही को प्रभावित करना-**दबाव समूह अपने हितों के लिए अधिकारीतन्त्र से भी सांठ-गांठ रखते हैं। आज राजनीतिक प्रक्रिया में निर्णयों व नीतियों को गति देने में यह नौकरशाही तन्त्र ही अहम् भूमिका निभाता हैं विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा नीति-निर्माण के लिए भेजी जाने वाली सूचनाएं इस अधिकारीतन्त्र के हाथों से ही गुजरती है। नौकरशाही ही कार्यपालिका व विधायिका को आवश्यक नीति-निर्माण के आंकड़े उपलब्ध कराती है। भारत जैसे देशों में तो नौकरशाही कार्यपालिका के साथ इतनी अधिक उलझी

हुई है कि कई बार लोग नौकरशाही को ही कार्यपालिका समझ बैठते हैं। नौकरशाही को अपने वश में करने के लिए दबाव समूह बेइमानी, घूसखोरी, भाई-भतीजावाद जैसे साधनों का प्रयोग भी करते हैं। यद्यपि नौकरशाही पर दबाव समूहों का प्रभाव सभी देशों में बराबर नहीं हैं। फ्रांस व इटली में एकदलीय व्यवस्था के कारण ये नौकरशाही के साथ ही सांठ-गांठ रखते हैं। इन देशों में दबाव समूह नौकरशाही को खुश करने के लिए साम-दाम-दण्ड-भेद सभी उपायों का सहारा लेते हैं।

- **न्यायपालिका को प्रभावित करना-**दबाव समूह न्यायपालिका को विधायिका तथा कार्यपालिका के माध्यम से प्रभावित करने की बजाय न्यायधीशों की नियुक्ति के समय ही कार्यपालिका पर दबाव बनाना शुरु कर देते हैं। अमेरिका और भारत में कार्यपालिका पर इस तरह का दबाव कई अवसरों पर देखा गया है। न्यायपालिका को दूर से ही प्रभावित करने का अधिक प्रयास रखते हैं, क्योंकि न्यायधीशों का कार्यपालिका तथा विधायिका की तरह चुनाव नहीं होता। अहिंसात्मक साधनों द्वारा न तो न्यायपालिका को प्रभावित करना अपेक्षित है और न ही संविधानिक। इसलिए वे अपने हितों के लिए कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित करवाने के लिए न्यायपालिका की ही शरण लेते हैं। वे पत्र-पत्रिकाओं में लेख छापकर, समाचार पत्रों में अपने विचार देकर न्यायधीशों के मन को प्रभावित करने के प्रयास भी करते हैं। 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कानूनों के विरुद्ध दबाव समूहों ने ही न्यायपालिका के पास अपील की थी।भारत में अनेक जनहितकारी याचिकाएं दबाव समूहों ने ही न्यायपालिका में प्रस्तुत की है।
- **हड़ताल, बन्ध और प्रदर्शन-** दबाव समूह जब अपनीबातें मनवाने में असफल हो जाते हैं तो वे अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं चूकते। वे हड़ताल करते हैं और आज जीवन को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। वे बन्ध की घोषणा भी करते हैं। कई बार तो वे हड़ताल में विपक्षी दल के विधायकों व समर्थकों तक को भी शामिल करते हैं। अपनीबात सरकार से मनवाने के लिए वे व्यापक स्तर पर प्रदर्शन भी करते हैं और कई बार मन्त्रियों तक का भी घेराव करते हैं। इन सभी गैर-कानूनी उपायों का प्रयोग करके वे सरकार पर दबाव बनाना चाहते हैं। इन साधनों के सफल रहने पर वे अपने उद्देश्यों में भी कामयाब हो जाते हैं। भारत में इस तरह के साधन दबाव समूहों द्वारा आमतौर पर प्रयोग किए जाते हैं।

- **प्रचार करना-**दबाव समूह अपने पक्ष में जनमत को तैयार करने के लिए तथा सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रचार का बहुत सहारा लेते हैं। वे समाचार पत्रों, रेडियो, टी0वी0 आदि संचार साधनों पर अपने विचारों का प्रसारण करवाते रहते हैं। कई बार दबाव समूह पत्र-पत्रिकाएं भी छपवाते हैं और जनमत को प्रभावित करने के लिए उन्हें निःशुल्क जनता में वितरित करते हैं। उनका प्रभावशाली प्रचार तन्त्र शासन-वर्ग को भावी संकटों तक का भी आभास करा देता है। इसी कारण भविष्य में राजनीतिक व्यवस्था को संकट से बचाने के लिए सरकार उनकी बात मान ही लेती है।
- **अनुनयन-** कई बार दबाव समूह सरकार से सीधी बातचीत भी करते हैं और प्रार्थनापूर्वक अपनी समस्याएंभी रखते हैं। सरकार विशाल जनमत के स्वामी होने के नाते उनकी बात को टालने का जोखिम उठाने से बचानेका ही प्रयास करती हैं और प्रायः उनकी मांगें स्वीकार कर ही लेती हैं। इस तरह अनुनयन द्वारा भी दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के प्रयास करते हैं। यदि इस तरीके से उनकी मांग न मानी जाती है तो वे सीधी कार्यवाही या सौदेबाजी के साधनों का प्रयोगकरना शुरु कर देते हैं।
- **गोष्ठियां करना-**अनेक दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श के लिए गोष्ठियों, सेमिनारों, वार्ताओं आदि का आयोजन करके विधायकों तक को भी उनमें बुलाते हैं ताकि अपनीसमस्या से उन्हें अवगत कराया जा सके। इससे विधायक व नौकरशाही उनकी मांगों के प्रति जागरुक हो जाती है और नीति-निर्माण करते समय उनकी बातों पर ध्यान देती है। भारत में दबाव समूहों के हितों को लेकर कई बार संसद में प्रश्नकाल के दौरान काफी नोक-झोंक होती है। जो विधायक दबाव समूहों के अनुग्रहित होते हैं, वे अनकी समस्याओं को संसद-सत्र में जोर-शोर से उठाते हैं।

7.4.7.दबाव समूहों के निर्धारक तत्त्व (Defining elements of pressure group)

प्रत्येक देश में दबाव समूहों की यह शाश्वत् इच्छा रहती है कि सार्वजनिक नीति को प्रभावित करके अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की जाए। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वे अपनीगतिविधियों का संचालन व समायोजन सरकारों को बाह्य संविधानिक संरचना के अनुसार करने की अपेक्षा, सरकारी तन्त्र के भीतर प्रभावी शक्ति-वितरण की व्यवस्था के अनुसार करते हैं। दबाव समूहों की गतिविधियों का संचालन प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में इसी कारण ही अलग तरह का होता है और उनके द्वारा प्रयोग किए जाने

वाले साधन भी अलग-अलग होते हैं। कई बार तो दबाव समूह एक ही राजनीतिक व्यवस्था में भी अलग-अलग परिस्थितियों में अलग अलग विधियों का प्रयोग करते हुए पाए जाते हैं। इसलिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि वे ऐसा क्यों करते हैं ? इसी में दबाव समूहों की कार्यविधि के निर्धारकों की समस्या छिपी है। एलेन बाल तथा एकसटीन ने दबाव समूहों की राजनीति का व्यापक विश्लेषण करके उसके निर्धारकों का पता लगाया है। एलेन बाल ने तो दबाव समूहों के निर्धारकों का संक्षिप्त ब्यौरा ही दिया है, जबकि हैरी एकसटीन ने दबाव समूहों के निर्धारकों पर विस्तार से चर्चा की है। कुछ अन्य विद्वानों ने भी दबाव समूह की राजनीति का विश्लेषण करने के बाद इन निर्धारकों का सामान्यीकरण किया है। दबाव समूहों की राजनीति या उनकी प्रभावशीलता को निर्धारित करने वाले प्रमुख तत्व हैं:-

- **राजनीतिक संस्थागत संरचना-**दबाव समूहों का अस्तित्व राजनीतिक व्यवस्था की संस्थागत संरचना से काफी घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। जिस शासन व्यवस्था में नीति-निर्माण और उसे अमली जामा पहनाने का कार्य प्रशासन की केन्द्र शाखा को करना पड़ता है तो वहां कोई भी दबाव समूह राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण, शक्तिशाली और सुसंगठित स्थान प्राप्त कर सकता है। जिस देश में शक्तियों का केन्द्रीयकरण होता है, उन एकात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों के दबाव समूहों की राजनीति का केन्द्र राजधानी होती है। इसके विपरीत संघात्मक शासन प्रणाली वाले देशों में दबाव समूह प्रादेशिक स्तर पर अत्रिधक सक्रिय रहते हैं। केन्द्र तक तो कम ही दबाव समूह पहुंच पाते हैं। दबाव समूहों को यह भी पता होता है कि कौन सी संरचना निर्णय लेने में सक्षम है। इसलिए वे विधायिका या कार्यपालिका की तरफ ही झुकते हैं। संसदीय शासनप्रणालियों में तो दबाव समूह विधायिका या कार्यपालिका की समितियों तक को भी अपनीपहुंच में ले लेते हैं। जिस देश में विधायिका या कार्यपालिका नौकरशाही पर अधिक आश्रित रहती है तो ये दबाव समूह अपना डेरा नौकरशाही के ही इर्द-गिर्द डाल लेते हैं। उदारवादी लोकतन्त्रों में तो शक्ति-विकेन्द्रीयकरण के दबाव समूहों की गतिविधियां अधिक तीव्र हो जाती हैं। सर्वसत्ताधिकारवादी शासन-व्यवस्थाओं में दबाव समूह प्रायः सुप्त अवस्था में रहते हैं, क्योंकि यहां पर इन्हें पैर पसारने की अनुमति नहीं होती। इसी कारण अमेरिका और ब्रिटेन में अध्यक्षात्मक व संसदीय शासन प्रणालियों की निर्णयकारी संरचनाओं में पाए जाने वाले अन्तर के कारण दबाव समूहों की प्रकृति में भी अन्तर आ जाता है।

- **दल पद्धति की संरचना व स्वरूप-** दबाव समूहों की राजनीति पर दल-व्यवस्था का भी गहरा प्रभाव पड़ता हैं एक दल पद्धति वाले देशों में दबाव समूह अपना प्रभाव नहीं जमा पाते, क्योंकि इनका प्रभाव क्षेत्र तो बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों मेंही अधिक विकसित होता है। सर्वाधिकारवादी देशों में एकदलीय व्यवस्था के कारण ही दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। लोकतन्त्र से अलग प्रकार की सभी शासन व्यवस्थाओं में केवल उसी दबाव समूह को रहने की आज्ञा दी जा सकती है जो सत्तारूढ़ दल का समर्थन करता है। दो दलीय व्यवस्था वाले देशों में भी दबाव समूह को बहुदलीय शासन प्रणाली वाले देशों की तरह स्वतन्त्र ढंग से कार्य करने दिया जाता है। यहां पर वे किसी राजनीतिक दल के छिपे हुए समर्थन के अधीन कार्य करते हैं या राजनीतिक तटस्थता का ढोंग करके सत्तारूढ़ दल से अपना सम्बन्ध बनाए रहते हैं। लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली वाली बहुदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत ये लुका-छुपी का खेल खेलते हैं। कभी ये किसी दल के साथ रहते हैं तो कभी किसी। इसी तरह दल संरचना का स्वरूप भी दबाव समूहों का नियामक होता है। दल संरचना की कमजोरियां, अनुशासन का अभाव और दलों के बीच विचारधारा सम्बन्धी स्पष्ट अन्तर का होना भी दबाव समूहों की प्रभावशीलता का कारण बन जाता है। इसी कारण अमेरिका में दबाव समूह अधिक सक्रिय है। प्रतिनिधि सभा के चुनावों में अमेरिकी कांग्रेस के प्रतनिधि स्थानीय हितों के दबावों में रहती है। लेकिन ब्रिटेन में कठोर दलीय अनुशासन के कारण विधायकों पर दबाव समूहों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ने पाता है। बहुदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत दलीय अनुशासन का अभाव होने के कारण दबाव समूहों की विधायकों पर पकड़ मजबूत होती है।
- **सरकार की नीतियां व गतिविधियां-** दबाव समूहों की क्रियाशीलता सरकार की नीतियों पर ही आधारित होता है। जिस देश में सरकार कल्याणकारी नीतियां अपनाती है और सभी वर्गों को शासन में उचित प्रतिनिधित्व देती है तो वहां पर दबाव समूह आसानी से अपनी घुसपैठ कर जाते हैं। यदि सरकार ऐसी नीतियों व गतिविधियों का संचालन करना शुरु कर दे कि लोकतन्त्रीय आस्थाएं ही धूमिल होनें लग जाएं, वहां पर दबाव समूहों के पैर नहीं टिक सकते। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में यह बात सरकार ही निश्चित करती है कि किसे क्या देना है, किसे प्रतिबन्धित करना है या किसे अधिक सुविधायें देनी हैं ? इसी तरह दबाव समूहों की कार्यप्रणाली भी सरकार की नीतियों पर ही आधारित होती है। 1947 के समय में और आज के समय में सरकार की नीतियों में आए बदलाव के कारण ही आज दबाव समूह भारत में फल-फूल

रहे हैं। आज सरकारें लोक कल्याणकारी नीतियों पर अधिक ध्यान देती है, इसलिए दबाव समूह उदारवादी लोकतन्त्रों में अपनीगतिविधियों को बड़े पैमाने पर संचालित करके अपने हितों को प्राप्त करने में सक्षम है। सरकार की दबाव समूहों के प्रति अभिवृति या रवैया सरकार का दबाव समूहों की प्रति सोच भी दबाव समूहों की प्रभावशीलता की नियामक मानी जाती है। उदार लोकतन्त्रों में समूह व्यवस्था को राजनीतिक व्यवस्था का स्वाभाविक अंग माना जाता है। इसी कारण वहां पर दबाव समूहों की भरमार होती है। सर्वसत्ताधिकारवादी व्यवस्थाओं में सरकारों का रवैया दबाव समूहों के प्रति कठोर होता है। वहां पर केवल वही दबाव समूह पनप सकता है तो सत्तारूढ़ सरकार की नीतियों का समर्थक बना रहे। सरकार विरोधी समूहों को सर्वाधिकारवादी सरकारें किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं कर सकती। लोकतन्त्र शासन प्रणाली ही एकमात्र ऐसी शासन प्रणाली है जो दबाव समूहों की गतिविधियों को झेल सकती है। इसी कारण निरंकुश और लोकतंत्रीय सरकारों का दबाव समूहों के प्रति पाया जाने वाला रवैया दबाव समूहों द्वारा सरकार को प्रभावित करने वाले साधनों में भी भिन्नता ला देता है।

- **राजनीतिक संचारण-**दबाव समूह की प्रभावशीलता का निर्धारण इस बात से भी होता है कि राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संचारण का कितना निषेध है तथा कितनी छूट है। कोई राजनीतिक व्यवस्था तो दबाव समूहों की सक्रियता के प्रति सहनशील होती है तो कोई उसे आंशिक तौर पर ही स्वीकार करती है या उनकी सक्रियता को सहन ही नहीं करती। भारतीय शासन व्यवस्था राजनीतिक संचारण की छूट देती है। इसी कारण भारत में असंख्यक दबाव समूह व हित समूह उभरे हैं। कुछ देशों में दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, इसी कारण वहां पर राजनीतिक संचारण की छूट इनको प्राप्त नहीं है। चीन तथा जर्मनी में राजनीतिक संचारण की सीमित व्यवस्था होने के कारण वहां पर दबाव समूह अविकसित प्रकृति के हैं। राजनीतिक व्यवस्था की समूह की मांगों को सहन करने की क्षमता प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों की गतिविधियां व मांगें अलग-अलग प्रकार की होती हैं। सभी राजनीतिक व्यवस्थाएं दबाव समूहों की मांगों को पूरा करने में असमर्थ होती हैं। ऐसे में अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए दबाव समूह सरकार पर अनुचित दबाव डालने का प्रयास अवश्य करते हैं। उनकी गतिविधियों से परेशान होकर सरकार उन पर प्रतिबन्ध लगा देती है। 1975 के बाद भारत में अनेक दबाव समूह इस प्रतिबन्ध की श्रेणी में आ गए हैं, क्योंकि ये अपनी मांगें मनवाने के लिए अधिक हिंसक साधनों का प्रयोग

करने लगे हैं। सरकार दबाव समूहों की गतिविधियों को वहीं पर स्वतन्त्र छोड़ सकती है, जहां उनकी मांगें राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के अनुरूप हों।

7.4.8.दबाव समूहों की प्रभावकारिता के कारण (Reasons for the effectiveness of pressure groups)

एक्सटीन का मानना है कि दबाव समूहों के स्वयं के लक्षण भी उनकी प्रभावकारिता के नियामक होते हैं। दबाव समूहों की आर्थिक स्थिति, उनका आकार, सदस्यों की लग्न व कर्मठता, संगठन की ठोसता, संगठन की सामाजिक प्रतिष्ठता आदि कारक भी दबाव समूहों की राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावकारिता का कारण होते हैं। आधुनिक जीवन में आर्थिक शक्ति का बहुत महत्व है। आर्थिक शक्ति ही निर्णय-निर्माताओं को प्रभावित कर सकती है। जो दबाव समूह राजनीतिक दलों को अधिक चन्दे देता है, योग्य सदस्यों को भर्ती करता है, वही प्रशासनिक मशीनरी को अपने बारे में सोचने को विवश कर सकता है। दबाव समूह की सामाजिक प्रतिष्ठा भी अनुकूल जनमत तैयार करने में उसका सहयोग करती है और सरकारी पदाधिकारियों पर प्रभाव भी डालती है। जो दबाव समूह अपने लग्नशील सदस्यों के माध्यम से चुनावी कार्यक्रम में अपनीमहत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम होता है, वही सरकार के नीति-निर्माण को प्रभावित करने वाली शक्ति बन जाता है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि सरकार की नीति-निर्णय प्रक्रिया की संरचनाएं, दल पद्धति का स्वरूप, सरकार की नीतियां, सरकार की दबाव समूह के प्रति अभिवृति, राजनीतिक संचारण, राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता, दबाव समूहों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति व राजनीतिक संस्कृति आदि तथ्व दबाव समूहों की राजनीतिक व्यवस्था में प्रभावकारिता के निर्धारक हो सकते हैं। राजनीतिक व्यवस्थाओं की प्रकृति में अन्तर आने के कारण दबाव समूहों की प्रभावकारिता में भी अन्तर आना स्वाभाविक ही है, क्योंकि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव समूह अपने हितों के सम्वर्द्धन के समान तरीके नहीं अपना सकते। संसदीय व्यवस्थाओं में तो दबाव समूहों की प्रभावकारिता अधिक से अधिक विकेन्द्रित होती है, जबकि अध्यक्षात्मक में यह केन्द्रित होती है। सर्वसत्ताधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव समूहों की प्रभावकारिता सीमित व संकुचित होती है, जबकि लोकतन्त्रीय व्यवस्थाओं में यह अधिक व्यापक और विकेन्द्रित होती है। विकासशील देशों में तो सरकार की नीति-निर्णय प्रक्रिया की संरचना, दल पद्धति का स्वरूप तथा राजनीतिक संचारण के प्रतिमान अनिश्चित होने के कारण दबाव समूह के निर्धारक भी अस्पष्ट है।

7.4.9.दबाव समूहों के कार्य व भूमिका (Functions and roles of pressure groups)

आज प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहों का विशेष स्थान है। सभी लोकतन्त्रीय देशों में तो इसका महत्व और अधिक है। पहले तो दबाव समूहों को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। आज दबाव समूह को प्रत्येक राजनीतिक समाज, राजनीतिक क्रियाशीलता के लिए एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करने लगा है। आज नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर इनका प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि इन्हें अदृश्य साम्राज्य कहा जाने लगा है। सरकार की विधायी कार्यों पर इनके बढ़ते प्रभाव के कारण इन्हें विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल भी कहा जाता है। अपने हितों के सम्वर्द्धन के लिए इनका राजनीतिक दलों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है। आज अमेरिका, भारत, इंग्लैण्ड, स्विस, फ्रांस आदि देशों में ये समूह किसी न किसी रूप में राजनीतिक गतिशीलता में अपनीमहत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। किसी राजनीतिक व्यवस्था में इनकी भूमिका इन कारणों से महत्वपूर्ण हो सकती है:-

- **लोकतन्त्रीय प्रक्रिया की अभिव्यक्ति**-प्रजातन्त्रीय शासन प्रणालियां ही दबाव समूहों के पोषण के लिए अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करती हैं। इन देशों में दबाव समूह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जनमत का अधिक सहारा लेते हैं। यहां पर जनमत तैयार करने के लिए वे विचार-गोष्ठियों, पत्र-पत्रिकाओं, सभाओं आदि का पूरा सहारा लेते हैं। प्रजातन्त्र में अपनीबात मनवाने के लिए यह जरूरी होता है कि जनमत को साथ लेकर चला जाए। इसलिए प्रजातन्त्र में दबाव समूहों द्वारा मजबूत जनमत को तैयार करना लोकतन्त्रीय प्रक्रिया की ही अभिव्यक्ति है। जनमत को शिक्षित करके आंकड़े एकत्रित करके, कानून निर्माताओं के पास पहुंचाकर वे अपने लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकारदबाव समूह लोकतन्त्रीय प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने का कार्य करते हैं।
- **सरकार की निरंकुशता पर रोक**-आधुनिक युग में शक्तियों का झुकाव केन्द्र की तरफ ज्यादा बढ़ रहा है। आज आर्थिक विकास और सुरक्षा की आवश्यकता ने शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के विचार को जन्म दिया है। ऐसे में यह संभावना बढ़ जाती है कि सरकार अपनीशक्तियों का निरंकुश प्रयोग भी कर सकती है। परन्तु दबाव समूह किसी न किसी रूप में हर समय सरकारी तन्त्र पर नजर रखते हैं। अपने हितों के संरक्षण की आड़ में सरकार की निरंकुशता से आज जनता की रक्षा भी करते हैं। जिस देश में अधिकारी-तन्त्र पर दबाव समूहों की दृष्टि हो, वह कभी निरंकुश नहीं बन सकता।

- **नीति-निर्माण में सहायक-** लोकतन्त्रीय देशों में तो दबाव समूह शासन-तन्त्र के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटते रहते हैं। चाहे कार्यपालिका हो या विधायिका, शासन-तन्त्र के अंग के रूप में उनकी सदा यह जानने की इच्छा रहती है कि लोंगों की आवश्यकताएं क्या हैं ? इन आवश्यकताओं का ज्ञान दबाव समूहों को ही अधिक होता है। इस बारे में सभी आवश्यक सूचनाएं व आंकड़े दबाव समूह ही सरकार को उपलब्ध कराते हैं। वर्ने ने लिखा है-"समूह ही व्यक्ति-ज्ञान के क्षेत्र में विशेष है जो कानून के निर्माण और क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है।" इस प्रकार सरकार गैर-सरकारी स्रोत के रूप में दबाव समूहों से नीति-सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएं प्राप्त कर लेती हैं। इससे विवेकपूर्ण नीति व कानून निर्माण करना संभव हो जाता है। यद्यपि दबाव समूहों द्वारा एकत्रित सूचनाएं व आंकड़े उनके स्वयं के हितों से अधिक सरोकार रखते हैं, लेकिन नीति निर्माण में जो महत्व उन आंकड़ों का होता है, वह अन्य स्रोतो से एकत्रित किए गए आंकड़ों का नहीं हो सकता। अतः दबाव समूह सरकार को नीति-सम्बन्धी आवश्यक कच्ची सामग्री उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
- **शासन-तन्त्र को प्रभावित करना-**दबाव समूह लोकतान्त्रिक देशों में तो इतने संगठित हो जाते हैं कि वे सरकारी-तन्त्र को प्रभावित करने की क्षमता भी रखते है। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विधायिका, कार्यपालिका तथा नौकरशाही तन्त्र कोउसार्वजनिक नीति में परिवर्तन लाने के लिए दबाव डालते हैं। बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों में ये राजनीतिक दलों के साथ सांठ-गांठ करके अपने हितों के लिए सरकार पर दबाव बनाए रखते हैं। द्विदलीय प्रणाली वाले देशों में ये मुख्य कार्यपालिका के आस-पास या विधायिका के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाते रहते हैं। अमेरिका में इनकी पहुंच राष्ट्रपति तक भी होती है। भारत में दबाव समूह अपने हितों की प्राप्ति के लिए राजनीतिक दलों या विधायकों के माध्यम से हर नीति-निर्णय को प्रभावित करने की चेष्टा करते रहते हैं। अपने हितों के लिए ये न्यायपालिका तक की भी शरण ले लेते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य ही अपने हितों के लिए शासन-तन्त्र को अपने प्रभाव में रखना है।
- **समाज के विभिन्न वर्गों के हितों में सामंजस्य-** प्रत्येक समाज में किसान, श्रमिक, व्यापारी, मजदूर, जातीय समुदाय, धार्मिक समुदाय, विद्यार्थी, स्त्रियों आदि के अपने अपने हित होते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए ये समूह आपस में प्रतियोगिता करते रहते हैं। प्रत्येक समूह एक दूसरे पर नियन्त्रक का कार्य करता है और अपने से विपरीत समूह को इतना शक्तिशाली नहीं होने देता कि वह निजी-स्वार्थों का केन्द्र ही बन

जाए। इस प्रतियोगी-व्यवस्था में समाज में संतुलनकारी प्रवृत्तियां पनपने लगती हैं और समाज के सभी वर्गों के हितों में सामंजस्य बना रहता है। दबाव समूहों की उपस्थिति समाज में संतुलन के साथ-साथ प्रशासन और समाज में भी संतुलन कायम कर देती है। इससे समाज विघटनकारी शक्तियों से निपटने में सक्षम हो जाता हैं।

- **जनता व सरकार में कड़ी का काम करना-** दबाव समूह जनता और सरकार को जोड़ने वाली कड़ी है। जनता की मांगों को समूहीकरण के रूप में दबाव समूह ही सरकार तक पहुंचाते हैं। नीति-निर्माण करते समय दबाव समूहों द्वारा उपलब्ध सूचनाओं पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। इस तरह दबाव समूह जनता व सरकार को जोड़ने का कार्य भी करते हैं।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि दबाव समूह सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। आधुनिक समाज में उनके बढ़ते प्रभाव को देखकर कहा जा सकता है कि दबाव समूह ही वास्तविक राजनीतिक दल है, जो सरकार और जनता को जोड़ने का कार्य करते हैं। लोगों को राजनीतिक शिक्षा देना, जनमत को तैयार करना, सार्वजनिक नीति को प्रभावित करना, सरकार को जनता की मांगें समूहीकरण के रूप में पेश करना आज राजनीतिक दलों की बजाय दबाव समूहों के ही कार्य हो गए हैं। इसी कारण आज कहा जाने लगा है कि दबाव समूह शासकों को बनाने वाले हो गए हैं। आज अमेरिका, भारत, ब्रिटेन, स्विट्जरलैण्ड, फ्रांस, पूर्वी जर्मनी, पौलैंड आदि देशों में कम या अधिक मात्रा में दबाव समूह कार्यरत हैं। अमेरिका में तो इनका विशेष प्रभाव है। वहां पर ये समूह जितने संगठित तरीके से कार्य कर रहे हैं, अन्यउदेश में नहीं। इसी कारण अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने इन समूहों की शक्ति की ओर संकेत करते हुए लिखा है-"संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार एक ऐसा शिशु है जो विशेष हितों की देख-रेख में पला है।" इस प्रकार प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

7.4.10.दबाव समूहों की आलोचना (Criticism of pressure groups)- यद्यपि दबाव समूह प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने, सरकार की निरंकुशता को रोकने, जनता और सरकार में कड़ी का काम करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और प्रत्येक राजनीतिक समाज इन्हें आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार भी करने लगा है, लेकिन फिर भी इनकी भूमिका की आलोचना की जाती है। आलोचकों का मत है कि दबाव समूह विशिष्ट हित को लेकर ही सरकार के पास जाते हैं। उनका सामान्य हित से कोई लेना देना

नहीं होता। कई बार दबाव समूह अहिंसक साधनों का प्रयोग करके राष्ट्रीय सम्पत्ति को हानि पहुंचाते हैं और समाज की एकता व शांति को भंग करने से भी नहीं चूकते। विधायकों को अनैतिक साधनों से प्रभावित करके वे राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए तो वे न्यायपालिका जैसे पवित्र संगठन को भी नहीं छोड़ते। अपने स्वार्थों के लिए वे साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग निर्बाध रूप से करते हैं। अपने अनैतिक कारनामों द्वारा वे समाज में अनैतिकता का प्रसार कर देते हैं। उनकी बढ़ती भूमिका ने राजनीतिक दलों तक की भूमिका व महत्व को भी सीमित कर दिया है। इसलिए समय की यह मांग है कि दबाव समूहों की निरंकुशता की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाए अन्यथा ये समाज और सरकार दोनों के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न कर देंगे

7.5.स्वयं प्रगति जाँच (Check your progress)

(अ). स्वतन्त्रता के बाद 1967 तक केन्द्र में कौनसी पार्टी की सरकार रहीं।

(आ).कार्ल फ्रेडरिक ने दबाव समूहों को किन श्रेणियों में बाँटा है ?

(इ)."दबाव समूह ऐसे संगठित या असंगठित व्यक्तियों का संकलन है जो दबाव के दांव-पेचों का प्रयोग करता है"यह परिभाषा किस विद्वान की है?

(ई).दलों की संख्या के आधार पर दलीय-व्यवस्थाओं को कितने भागों में बांटा गया है ?

(उ). ब्लोंडेल ने दबाव समूहों का वर्गीकरण की आधार पर किया है ?

7.6.सारांश (Summary)

राजनीतिक दल (Political party)लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं। यह दल चुनावों में उम्मीदवार उतारते हैं और उन्हें निर्वाचित करवा कर दल के कार्यक्रम लागू करवाने क प्रयास करते हैं। राजनैतिक दलों के सिद्धान्त या लक्ष्य प्रायः लिखित दस्तावेज के रूप में होता है। विभिन्न देशों में राजनीतिक दलों की अलग-अलग स्थिति व व्यवस्था है। कुछ देशों में कोई भी राजनीतिक दल नहीं होता। कहीं एक ही दल होता है। कहीं मुख्यतः दो दल होते हैं। किन्तु बहुत से देशों में दो से अधिक दल होते हैं। लोकतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में

राजनैतिक दलों का स्थान केन्द्रीय अवधारणा के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लोकतांत्रिक समाजों में राजनीतिक दल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने और सरकारी नीतियों को प्रभावित करने की अनुमति देते हैं। वे ऐसे व्यक्तियों से बने होते हैं जो समान विचारधाराओं और लक्ष्यों को साझा करते हैं और राजनीतिक प्रक्रिया के माध्यम से उन्हें प्राप्त करने के लिए मिलकर काम करते हैं। राजनीतिक दल चुनावों के लिए उम्मीदवारों को मैदान में उतारने, जनता के बीच अपनी विचारधाराओं और नीतियों को बढ़ावा देने और अंततः राजनीतिक शक्ति हासिल करने और सरकारी निर्णय लेने को प्रभावित करने के लिए चुनाव जीतने के लिए जिम्मेदार होते हैं सरल शब्दों में दबाव समूह लोगों का एक समूह है जो अपने सदस्यों के हितों को प्राप्त करने के लिए सरकार के निर्णय लेने को प्रभावित करता है। हालाँकि कुछ विद्वान दबाव समूह के लिए हित समूह का भी उपयोग करते हैं, लेकिन राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित किए बिना किसी भी हित समूह को दबाव नहीं कहा जा सकता है। हित समूह जब प्रभावशीलता की शक्ति प्राप्त कर लेता है, तभी वह दबाव समूह का रूप लेता है। वह प्रभावशीलता समूह के हितों को प्राप्त करने में मदद करती है।

7.7.सूचक शब्द (Key Words)

- **वैचारिक समूह-** ये समूह भौतिक फायदे के लिए नहीं कुछ वैचारिक फायदे को बढ़ावा देने के लिए जाने जाते हैं ।
- **हितकर-**वह जो हित करता या चाहता हो ।
- **राजनीतिक दल-**राजनीतिक दल (च्वसपजपबंस चंतजल) लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं।
- **एकदलीय प्रणाली-**ऐसी राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें शासन का सूत्र एक ही राजनीतिक दल के हाथों में रहे।
- **द्वि-दलीय प्रणाली-** द्वि-दलीय राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शासन का सूत्र दो दलों के हाथ में रहता है
- **बहुदलीय प्रणाली-**राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शासन का दो से अधिक राजनीतिक दो दलों के हाथ में रहता है

7.8.स्वयं समीक्षा हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

- दबाव समूह की परिभाषा को स्पष्ट कीजिए व लोकतंत्र में इनकी भूमिका को लिखें।
- दबाव समूह के महत्व का वर्णन कीजिए
- दबाव समूहों के कार्य का का वर्णन कीजिए ।
- हितकर समूह ,दबाव समूह व राजनैतिक दल में अंतर स्पष्ट कीजिए।
- राजनैतिक दलकी परिभाषा को स्पष्ट कीजिए व लोकतंत्र में इनकी भूमिका को का वर्णन कीजिए ।।
- राजनैतिक दल के महत्व का वर्णन कीजिए
- राजनैतिक दल के कार्य का का वर्णन कीजिए ।

7.9. उत्तर-स्वयं प्रगति जाँच (Answers to check your progress)

(अ). कांग्रेस पार्टी की.

(आ).दो श्रेणियों में एक सामान्य और दूसरी विशिष्ट दबाव समूहों में बांटा है

(इ).मैकाइवर की

(ई).तीन भागों में बांटा गया है-एकदलीय प्रणाली (Single Party System) ,द्विलीय प्रणाली (Bi&Party System),बहु-दलीय प्रणाली (Multi&Party System)

(उ). प्रेरक तत्वों के आधार पर

7.10. सन्दर्भ ग्रन्थ/ निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings

- तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा- ओम प्रकाश गाबा ,मयूर पेपर बैक्स , नोएडा ।
- तुलनात्मक शासन एवं राजनीति - डॉ . बीरकेश्वर प्रसाद सिंह ,ज्ञानदा प्रकाशन (पी .एण्ड डी .) 24 , दरियागंज , अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ - सी.बी . गेना , विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि. अंसारी रोड , दिल्ली ।
- तुलनात्मक राजनीति - जे.सी .जौहरी ,स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा.लि. , दिल्ली ।

- ब्रिटिश संविधान - महादेव प्रसाद शर्मा, किताब महल इलाहाबाद, दिल्ली ।

NOTES

NOTES

NOTES